प्रिया-प्रकाश

(अर्थात्)

कविप्रिया

(सटीक)

लेखक तथा प्रकाशक

ला० भगवानदीन

मुद्रक—

शिवरामसिंह मालिक.

नेशनल प्रेस, बनारस कैण्ट।

पहली बार 1000	काशी, संवत् १९८२ वि०	मूल्य २) मजिल्द २।)

समर्पण

केशव,

लीजिये 'केशवकौमुदी' की तरह यह 'प्रियाप्रकाश' भी आपही को समर्पित है। यह टीका अच्छी हो या बुरी, है आपही के प्रसाद से पाई हुई बुद्धि का विकास। अतः इसके उचित अधिकारी भी आप ही हैं। स्वीकार करके इस दीन को कृतार्थ कीजिये।

'दीन'

वक्तव्य

जिस प्रेमभाव से रसिक साहित्यसेवियों ने हमारी लिखी केशवकौमुदी (रामचंद्रिका की टीका) को अपनाया है, उसी प्रेम भाव ने हमें यह 'प्रियाप्रकाश' लिखने तथा प्रकाशित करने को उत्साहित किया है। एक ऐसा समय था कि इस ग्रन्थ को पढ़े बिना कोई साहित्यमर्मज्ञ कहलाता ही न था, फिर ऐसा समय आया कि लोग इसका पढ़ना पढ़ाना ही भूल गये। अब फिर ऐसा समय आ रहा है कि कालेजों में इसका पठन पाठन ज़रूरी समझा जायगा। परंतु इसकी भाषा, इसके भाव, तथा इसके कुछ शब्दार्थ समझने में नव्यभावभरित प्रोफेसरों को नवीन कठिनाई सी जान पड़ती है। हमें केशव का यह ग्रंथ बहुत प्रिय है। हम चाहते हैं कि इसे सब रसिकजन पढ़ें। इसी से हमने यह टीका लिखी है। इसपर दो टीकाएं पुरानी भी हैं। एक सरदार कवि की, दूसरी हरिचरणदास की। परंतु वे ऐसी लिखी गई हैं कि उनका समझना मूल से भी अधिक दुरूह है। हमने यह टीका लिखते समय इन दोनों टीकाओं से सहायता ली है, और दोनों टीकाकारों के ऋणी हैं। परंतु सब स्थलों पर हम उनके अर्थों से सहमत नहीं हो सके। कहीं कहीं तो बड़ा अन्तर पड़ गया है। अस्तु, हमने अपनी योग्यता भर में कुछ उठा नहीं रखा, टीका अच्छी हो या बुरी आप के सामने है।

'बिहारीबोधिनी' तथा 'केशवकौमुदी' की तरह हमने इसमें भी कुछ छंदों की टीका नहीं लिखी और केवल " भावार्थ

सरल है" लिख कर छोड़ दिया है। इसका प्रथम कारण तो यह है कि वे छंद हमें सरल जँचे हैं, और सरल छंदों की टीका लिखकर ग्रंथका विस्तार बढ़ाना हमें अभीष्ट न था। दूसरा कारण यह है कि जो मनुष्य उन सरल छंदों का अर्थ स्वयं नहीं कर सकता वह इस ग्रंथ के पढ़ने का अधिकारी नहीं, उसे पहले अन्य सरल ग्रंथ पढ़ने चाहिये, जब कुछ योग्यता हो जाय तब इसे पढ़े।

लोग पूछ बैठते हैं कि केशव ने यह ग्रंथ किस ग्रंथ के आधार पर लिखा है। इसकी छानबीन करते समय हमें यह पता चला है कि इसके प्रथम आठ प्रभाव तो केशव ने निज कल्पना से लिखे हैं अथवा ऐसे ग्रंथ के आधार पर रचे हैं जिसका संस्कृत साहित्य में अब अभाव सा है। नवें प्रभाव से पंद्रहवें प्रभाव तक की रचना में केशव ने अधिकतर दंडीकृत 'काव्यादर्श' से, तथा जहां तहां राजानक रुय्यक कृत 'अलंकार सूत्र' से सहायता ली है। आक्षेप, उपमा और यमक का वर्णन तो ज्यों का त्यों दंडी का ही लिया है। सोलहवाँ प्रभाव लिखने में कुछ तो निज कल्पना से, कुछ विविधि ग्रंथों से मसाला लिया है।

केशव ने, इस ग्रंथ में, निज आश्रयदाता राजा इन्द्रजीत, राजारामसिंह तथा उनकी दरबारी बेश्याओं प्रवीणराय, तानतरंग इत्यादि को छोड़, नीचे लिखे लोगों के नाम भी अपनी कबिता द्वारा अमर कर दिये हैं:—

१—पतिराम सोनार (देखो प्रभाव ९ छंद नं० २९, प्रभाव १२ छंद नं० १३, १९)

२—राना अमर सिंह (देखो प्रभाव ११ छंद ३०, ३१, ३२, ३३)

३—कामसेना (देखो प्रभाव ११ छंद नं० ३५)
४—राजा चंद्रसेन (देखो प्रभाव ११ छंद नं० ३८)
५—चंद (राजा बीरबलका दर्बान)—(देखो प्रभाव १३ छंद ३७)
६—विट्ठलनाथ गोस्वामी (देखो प्रभाव १६ छंद नं० १९)

कई एक प्रतियों में १४वें प्रभाव के अंत में नायिका का नखशिख वर्णन भी सम्मिलित पाया जाता है, परंतु हम उतने खंड को इस ग्रंथ का अंश नही मानते, अतः हमने उसे छोड़ दिया है।

सोलहवें प्रभाव के अंतिम २५ छंदों का अर्थ नहीं लिखा गया। कारण यह है कि हम ऐसी रचनाओं को अब सामयिक नहीं समझते। इसी से उनके अर्थ समझाने की हमने कोशिश नहीं की। पाठक चाहें तो ऐसा भी मान सकते हैं कि हम उनका अर्थ नहीं कर सके।

यदि केशव की कृपा बनी रही तो अगले वर्ष केशवकृत 'रसिकप्रिया' की टीका भी पाठकों के सम्मुख उपस्थित करेंगे।

जो सज्जन टीका की भूलें बतलावेंगे, उनके निकट हम कृतज्ञ होंगे और अगले संस्करण में सुधार करेंगे। अतः साहित्य मर्मज्ञ पाठकों से निवेदन है कि वे इस टीका को सुधारक दृष्टि से अवलोकन करके हमें कृतार्थ करें।

गंगा दशहरा
संवत १९८२
काशी

विनीत
भगवानदीन

विषय सूची

शुद्धिपत्र

पेज	लाइन	अशुद्धि	शुद्धि
१३	१२	नयरँग	नवरंग
२१	१४	शुम	शुभ
४२	१०	रटम	रटत
५४	२२	वृद्धि	वृद्ध
५६	१०	बूषभ	वृषभ
५८	१०	स्वर	स्वरको
६३	१२	बिलसि	विलास
७३	१२	जगमुख	गजमुख
७४	१६	अशेश	अशेष
७७	१	हार	हरि
७९	९	(१)	(ग)
८४	१	परिवषे	परिवेष
१३४	१२	सुख	मुख
१४१	१५	नचितयो	नाचितैयो
१४७	१९	मधुपन	मधुपन

पेज	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१५३	९	छेड़ि	छोड़ि
१५५	५	कायके	गायके
१६८	११	बाँध	बाँध
१७४	१७	हदप	हृदय
२२६	१३	धिक	धिक
२८९	११	तीथर	तीरथ
२९०	१६	अभिज्ञ	अनभिज्ञ
३१९	४	अपहिले	आपहिते
३३०	२०	यहि	यह
३८४	२१	सुततरवर	सुरतरवर
३९०	७	वाह्यरंग …हैं	अंग रंग राते रंग अंतस सुसेन हैं

प्रिया-प्रकाश

कला—१

अर्थात्

केशवदास कृत

कविप्रिया

(सटीक)

श्रीहरिः

पहला प्रभाव

(राजवंश वर्णन)

(श्रीगणेश वन्दना)

मूल—गजमुख सनमुख होत ही विघन बिमुख ह्वै जात।

ज्यों पग परत प्रयाग मग पाप पहार बिलात ॥ १ ॥

शब्दार्थ—गजमुख = श्रीगणेशजी। सनमुख = अनुकूल, कृपालु। बिमुख ह्वै जात = बिना मुख के हो जाते हैं (नष्ट हो जाते है)

भावार्थ—(मैं श्रीगणेश जी को नमस्कार करता हूं, क्योंकि) श्रीगणेश जी के अनुकूल होते ही समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं, जैसे प्रयागअस्थान में प्रथम पग पड़ते ही पापों के पहाड़ विलीन हो जाते है।

(विशेष)—हाथी अपने दांतों से पहाड़ों की टोरें खोद कर गिरा देते हैं, अतः 'गजमुख' शब्द के साथ 'पाप पहाड़' का रूपक बड़ा मज़ा दे रहा है।

मूल-बानी जू के बरन जुग सुबरनकन परमान।

सुकवि ! सुमुख कुरुखेत परि होत सुमेर समान ॥ २ ॥

शब्दार्थ—बानी = (बाणी) भाषा, जबान। बरन जुग = दो प्रकार के अक्षर अर्थात् लघु गुरु (ह्रस्व दीर्घ)

(नोट)-हिन्दी भाषा भरके समस्त वर्ण दो ही प्रकार के होते हैं, एक ह्रस्व दूसरे दीर्घ। इन्हीं दो प्रकार के वर्णों के प्रस्तार से छंद शास्त्र में करोड़ों प्रकार के छंद बनते हैं और समस्त ग्रन्थ इन्हीं का समूह हैं।

परमान=(प्रमाण) सचमुच, वास्तव में। सुकवि=संबोधन में हैं। सुमुख*=गणेश जी। कुरुखेत=कुरुक्षेत्र।

भावार्थ—हिन्दी भाषा के दो अक्षर (अर्थात्) ह्रस्व और दीर्घ वास्तव में सुवर्ण कण हैं। हे सुकवि! गणेश रूपी कुरुक्षेत्र में पड़कर वेही सुवर्णकणरूपी दो अक्षर पर्वत समान हो जाते हैं (अर्थात् श्रीगणेश जी को स्मरण करके जो कवि कविता करगा वह भाषा के लघु गुरु अक्षरों से बहुत बड़ा काम ले सकता है)

(विशेष)—ऐसा प्रसिद्ध है कि कुरुक्षेत्र के चक्रतीर्थ में डाला हुआ सोना आगामी जन्म में अनेक गुण होकर प्राप्त होताहै। अतः थोड़े से लघुगुरु वर्णों द्वारा जो कवि श्रीगणेश की वंदना करैगा अर्थात् गणेशरूपी कुरुक्षेत्रमें फेंकेगा। वह गणेश जी की कृपा से बहुत बड़े काव्य ग्रन्थ लिख सकेगा। इस कारण मैं श्री गणेश की वंदना करता हूं।

[नोट]—इस दोहे में कोई कोइ वाणी (सरस्वती) की वन्दना समझते हैं। हमें तो अक्षरार्थ से स्पष्ट ही श्रीगणेश जी की वन्दना जान पड़ती है।

[गणेशदन्त प्रभा वर्णन]

मूल—सत्व सत्वगुण को कि सत्य ही की सत्ता सुभ,
सिद्धि की प्रसिद्धि की सुबुद्धि-वृद्धि मानिये।

---

* सुमुखश्चैकदंतश्च कपिलो गजकर्णकः।

ज्ञान ही की गरिमा कि माहिमा विवेक की कि
दरसन हीं को दरसन उर आनिये ।
पुन्य को प्रकाश बेद बिद्या को बिलास किधौं,
जस को निवास केसोदास जग जानिये ।
मदन कदन सुत बदन रदन किधौं
बिघन बिनासन की बिधि पहिचानिये ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—सत्व = सार । सत्वगुण = सतोगुण । सत्ता = वजूद, मूलकारण । की = किधौं । गरिमा = गरुवाई । महिमा = बड़ाई । दरसन = दर्शन शास्त्र । दरसन = रूप । प्रकाश = उजेला । बिलास = शोभा । निवास = स्थान । मदन कदन = शिव । बदन = मुख । रदन = दाँत । बिधि = तरकीब, क्रिया ।

भावार्थ—(श्री गणेश जी के दाँत की प्रशंसा में कवि कहता है कि) यह सतोगुण का सार है, या साक्षात् सत्य ही का मूल कारण है, या सिद्धियों की शोहरत है, या इसे बुद्धि की बढ़ती मानें । अथवा यह ज्ञान की गरुवाई है, या विवेककी बड़ाई है, या फिलासफी के रूप के साक्षात् दर्शन ही हैं ऐसाही हृदय में समझ लें । अथवा यह पुण्य का काश है, या बेद विद्या की श भा है, या इस संसार के यश का नि ासस्थान ही समझें । अथवा शिव ुत्र (गणेश) के मुख का दांत है या विघ्नों के नाश करने की युक्ति है ।

[ग्रन्थ प्रणयन काल]

मूल—प्रगट पंचमी को भयो कविप्रिया अवतार ।
सोरह सै अट्ठावनो फागुन सुदि बुधवार ॥

भावार्थ—मिती फागुन सुदी ५ बुधवार संवत् १६५८ को कविप्रिया ग्रन्थ का आरंभ किया गया।

मूल—नृपकुल बरनौं प्रथम ही अरु कवि केशव वंश।

प्रगट करी जिन कवि प्रिया कविता को अवतस ॥५॥

शब्दार्थ—अवतंस = शिरोभूषण, मुकुट।

(नृपवंश वर्णन)

नोट—इस प्रसंग की टीका अनावश्यक जँचती है, केवल कठिन शब्दार्थ देंगे।

मूल—ब्रह्मादिक की बिनय तें हरन सकल भुविभार।

सूरज बंस कर्यौ प्रगट रामचंद्र अवतार ॥ ६ ॥

तिनके कुल कालिकालरिपु कहि केशव रणधीर।

गहरवार विख्यात जग प्रगट भये नृप बीर ॥ ७ ॥

भावार्थ—सूर्य वंशजात गहरवार कुल में 'बीरसिंह' नामक एक राजा हुए (जो अवध में रहते थे)

मूल—'करण' नृपति तिनके भये धरनी धरम प्रकास।

जीति सबै जगती कर्यौ बाराणसी निवास ॥ ८ ॥

प्रगट करण तीरथ भयो जगमें जिनके नाम।

तिनके 'अरजुनपाल' नृप भये महोनी ग्राम ॥ ९ ॥

भावार्थ—बीरसिंह के पुत्र 'करण पाल' हुए। इन्होंने काशी में रहना पसंद किया और अपने नाम से करण तीर्थ स्थापित किया जिसे अब 'करणघंटा' कहते हैं। इनके पुत्र 'अर्जुन पाल' हुए जिन्होंने झांसी के निकट 'महोनी' गाँव में रहना पसन्द किया।

मूल—गढ़कुँड़ार तिनके भये, राजा 'साहन पाल'।
'सहजइन्द्र' तिनके भये, कह केशव रिपुकाल ॥ १० ॥

भावार्थ—अर्जुनपाल के पुत्र राजा सहनपाल' ने ओरछा के निकट 'गढ़कुँड़ार' नामक स्थान में राजधानी जमाई। इनके पुत्र सहजेन्द्रपाल हुए।

मूल—राजा ''नौनिकदे' भये, तिनके पूरणसाज।
नौनिकदे के सुत भये, पृथु ज्यों 'पृथिवीराज' ॥११॥
'रामसिंह' राजा भये तिनके सूर समान।
'राजचंद्र' तिनके भये राजा चंद्र प्रमान ॥ १२ ॥
राय 'मेदिनीमल' भये, तिनके केशवदास।
अरि मद मर्दन मेदिनी कीन्हो धर्म प्रकाश ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—मेदिनी = पृथ्वी।

मूल—राजा 'अर्जुनदे' भये तिनके अर्जुन रूप।
श्री नारायण को सखा कहैं सकल भवभूप ॥ १४ ॥
महादान षोड़स दिये जीती जग-दिसि चारि।
चारौ बेद अठारहौ सुने पुराण विचारि ॥ १५ ॥
रिपुखंडन तिनके भये राजा श्री 'मलखान'।
युद्ध जुरे न मुरे कहूं जानत सकल जहान ॥ १६ ॥
नृप प्रतापरुद्र सु भये तिनके जनु रणरुद्र।
दयादान को कल्पतरु गुननिधि शीलसमुद्र ॥ १७ ॥
नगर ओरछो जिन रचो, जगमें जागति कृचि।

कृष्णदत्त मिश्रहिं दई जिन पुराण की वृत्ति ॥ १८ ॥
भरतखंड मंडन भये तिनके भारतिचंद।
देस रसातल जात जिन फेरयों ज्यों हरिचंद ॥ १६ ॥
शेरशाह असलेम के उर साली समसेर।
एक चतुर्भुजही नयो ताको सिर तेहि बेर ॥ २० ॥

भावार्थ—राजा भारतीचंद ने शेरशाह असलेम के आक्रमणों से बुन्देलखंड की रक्षा की थी। ओरछा में चतुर्भुज नारायण का मंदिर था। उनके सिवाय किसी को सिर नहीं झुकाते थे (नोट) यह शेरशाह असलेम उसी शेरशाह सूर का पुत्र था जिसने हुमायूं शाह को भारत से भगा दिया था।

मूल—उपाजि न पायो पुत्र तिहि गयो सु प्रभु सुरलोक।
सोदर मधुकर साह तब भूप भये भुवलोक ॥ २१ ॥
जिनके राज रसा बसे केशव कुशल किसान।
सिंधु दिशा नहिं वार ही पार बजाय निसान ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—रसा = पृथ्वी। सिंधु = बुन्देलखण्ड और ग्वालियर राज्य की सीमाओं को पृथक करने वाली एक नदी। सिंधु......निसान = मधुकरशाह ने सिंधु नदी की ओर केवल नदी के इस ओर ही नहीं वरन् उसपार (ग्वालियर राज्यमें) भी अपनी विजय का डंका बजाया।

वार पार = नदी के किनारे जब कोई खड़ा हो तो उसके लिये वह तट 'वार' है, और उस तरफ का तट 'पार' कहलाएगा।

मूल—तिनपर चढ़ि आये जु रिपु केशव गये ते हारि ।
जिन पर चढ़ि आपुन गये आये तिन्हैं सँहारि ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—आपुन = आप (स्वयं मधुकरशाह)

मूल—सबलशाह अकबर अवनि जीतिलई दिसि चारि ।
मधुकरसाह नरेश गढ़ तिनके लीन्हे मारि ॥ २४ ॥
खान गनै सुलतान को राजा रावत वादि ।
हारे मधुकरसाह सों आपुन साह मुरादि ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—वह मधुकरसाह सुलतान अकबर को एक साधारण खान (सरदार) समझता था । राजा रावत वादि = राजा रावत को तो कुछ भी न समझता था ।

मूल—साध्यो स्वारथ साथही परमारथ सों नेह ।
गयो सु प्रभु बैकुंठ मग ब्रह्मरंध्र तजि देह ॥ २६ ॥
तिनके दूलहराम सुत लहुरे होरिलराव ।
जनखंडन कुलमंडनौं पूरन पुहुमि प्रभाव ॥ २७ ॥
रणरूरो दूलसिंह पुनि, रतनसेन सुत-ईश ।
बांध्यो आपु जलालदीं बानो जाके शीश ॥ २८ ॥
इन्द्रजीत रणजीत पुनि शत्रुजीत बलबीर ।
बिरसिंह देव प्रसिद्ध पुनि, हरसिंह भो रणधीर ॥ २९ ॥
मधुकर शाह नरेश के, इतने भये कुमार ।
रामशाह राजा भये, तिनमें बुद्धि उदार ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—ब्रह्मरंध्र मग = तालू फट कर प्राण वायु का निक-

लना। पुहुमि = पृथ्वी। सुत-ईश = ईशसुत कार्तिकेय सूरसेनप। जलालदीं = जलालुद्दीन अकबर शाह। बानो = बिरुद, बीरता की प्रशंसा। (नोट)—कुंवर रतन सेन ने १६ वर्ष की अवस्था में एक बार अकबर की फ़ौज को पराजित किया था। केशव दास जी ने इन्हीं की बीरता के वर्णन में 'रतनबावनी' नाम का ग्रंथ लिखा था जिसमें ५२ कवित्त हैं, पर यह ग्रंथ अप्राप्य है।

मूल—घर बाहर जहई तहीं, केशव देश बिदेश।
सब कोऊ यहई कहै, जीत्यो राम नरेश॥ ३१॥
रामसाह सों सूरता, धर्म न पूजै आन।
जाहि सराहत सर्वदा, अकबर सो सुलतान॥ ३२॥
कर जोरे ठाढ़े जहां, आठौ दिशि के ईश।
ताहि तहां बैठक दई, अकबर सो अवनीश॥ ३३॥
जाके दर्शन को गये, उघरे देव किवार।
उपजी दीपति दीप की, देखत एकहि बार॥ ३४॥

भावार्थ—कहा जाता है कि रामसाह जी बद्रीनाथ जी के दर्शन को गये थे। तब इनके लिये मंदिर का द्वार स्वयं खुल गया था और दीपक भी स्वयं जल उठा था।

मूल—ता राजा को राज अब, राजत जगती माहँ।
राजा राना राव सब, सोवत जाकी छाहँ॥ ३५॥
तिनके सुत ग्यारह भये, जेठे साह सँग्राम।
दच्छिन दच्छिन राजसों, जिन जीत्यो संग्राम॥ ३६॥
भरतखंडभूषण भये, तिनके भारतिसाहि।

भरत भगीरथ पारथहि उनमानत सब ताहि ॥ ३७ ॥
सुत सोदर नृप राम के यद्यपि बहु परिवार ।
तदपि सबै इंद्रजीत सिर राज काज को भार ॥ ३८ ॥
कल्प वृक्ष सो दानि दिन सागर सो गंभीर ।
केशव सूरो सूर सौ अर्जुन सो रणधीर ॥ ३९ ॥
ताहि कछोवा कमल सो गढ़ दीन्हों नृप राम ।
विधि ज्यों साधत बैठि तहं केशव बाम अबाम ॥ ४० ॥

भावार्थ—राजा रामसिंह चंदेरी चले गये । ओरछा का राज्य अपने भाई इन्द्रजीत के सिपुर्द कर गये। कछोवा नामक गढ़ में इन्द्रजीत जी रहा करते थे। इन्हीं के दरबार में केशव दास जी रहा करते थे।

बाम = शत्रु । अबाम = मित्र ।

मूल—कर्‌यो अखारो राज कै शासन सब संगीत ।
ताको देखत इन्द्र ज्यों इन्द्रजीत रणजीत ॥ ४१ ॥

भाव—इन्द्रजीत ने समस्त राज्य पर सुन्दर शासन जमा कर संगीत का अखाड़ा जमाया, और इन्द्र की तरह संगीत में ही मस्त रहा करते थे।

बीरसिंह—(अवध)
करणपास—(काशी)
अर्जुनपाल—(महोनी)
सहनपाल—(गढ़कुँड़ार)
सहजेन्द्र
नौनिक देव
पृथ्वीराज
रामसिंह
राजचन्द्र
मेदिनीमल
अर्जुनदेव
मलखान सिंह
रुद्रप्रताप—(ओरछा)
भारतीचंद
(भाई थे)—मधुकरशाह
(राजवंश वृक्ष)
इन्द्रजीत
शत्रुजीत
बिरसिंहदेव
इरसिंहदेव
इन्हीं के दरबार में केशवदास थे
रामसाह
(वा)
दूलहराम
रतनपुरी को चले गये
संग्रामसिंह—गढ़गाँव में रहे
भारतीशाह
होरिलराव
(वा)
भूपालराय
जनखंडन
रतनसेन
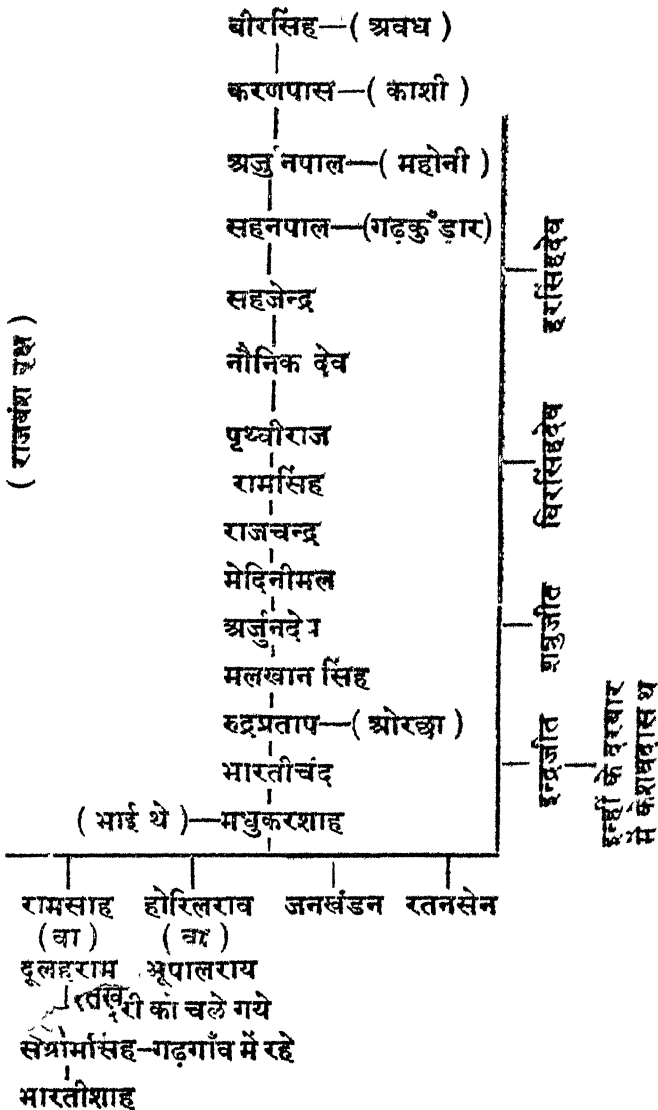
मूल—बालवयक्रम बाल सब, रूप शील गुण वृद्ध ।
यदपि भन्यो अवरोध षट पातुर परम प्रसिद्ध ॥४२॥

शब्दार्थ—बालवयक्रम = बाला, नवयुवती । अवरोध = अंतःपुर ।

भावार्थ—यद्यपि इन्द्रजीत का अंतःपुर (महल) रूपवती, शीलवती और बड़ी गुणवती बाला नवयुवतियों से भरा हुआ था, तथापि उनमें छः वेश्यायें बहुत प्रसिद्ध थीं, जिनके नाम ये हैं:-

मूल—रायप्रवीन प्रवीन अति, नवरँगराय सुवेश ।
अति विचित्रनयना निपुन, लोचन ललित सुदेश ॥ ४३ ॥
सोहति सागर राग की, तानतरंग तरंग ।
रंगराय रँगवलित गति रँगमूरति अँग अंग ॥ ४४ ॥

षट पातुरों के नाम—१—प्रवीनराय, २—नवरँगराय, ३—विचित्रनयना, ४—तानतरंग, ५—रंगराय, ६—रंगमूर्ति ।

मूल—तंत्री तुबुरु सारिका, सुद्ध सुरन सों लीन ।
देव सभा सी देखिये, रायप्रवीन प्रवीन ॥ ४५ ॥

तंत्री = (१) सिद्धान्तविज्ञ बृहस्पति (२) जिनमें तार लगे हैं ।
तुंबुरु = (१) तुंबुरु नामक गंधर्व (२) तूंबा है जिसमें ।
सारिका = (१) इसी नाम की अप्सरा (२) घोरिया, सुंदरिया ।
सुर = (१) देवता (२) सातो सुर (स, रि, ग, म, प, ध, नि)
प्रवीन = अच्छी बीणा ।

भावार्थ—रायप्रवीन की अति सुन्दर बीणा देवसभा सी है, क्योंकि जैसे देवसभा तंत्री (बृहस्पति) तुंबुरु (गंधर्व) सारिका नाम्नी अप्सरा तथा सतोगुणी देवताओं से संयुक्त रहती है, वैसेही रायप्रवीन की बीणा भी तार, तूंबा, सारिका

(घोरिया) और शुद्ध सुरों से युक्त है।

(विशेष)—इस छंद में श्लेष से पुष्ट उपमालंकार है। इसको केशव जी ने 'नियमोपमा' लिखा है—(देखो प्रभाव १४ छंद नं० २१, २२) यही अलंकार आगे के अनेक छंदों में है।

मूल—सत्या रायप्रबीन युत, सुरत रु सुरतरु गेह।
इन्द्रजीत तासों बधे, केशवदास सनेह ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—सत्या = सत्यभामा। सुरत = प्रेम। रु = और। सुरतरु = कल्पवृक्ष। (२) सुरों का वृक्ष अर्थात् बीणा। इन्द्रजीत (१) राजा इन्द्रजीत (२) श्रीकृष्ण।

भावार्थ—प्रवीणराय (पातुर) सत्यभामा समान है, क्योंकि जैसे सत्यभामा में कृष्णप्रति सुंदर प्रेम था वैसे ही रायप्रवीण में भी निज पति प्रति सुदर प्रेम है और जैसे सत्यभामा के घर में पारिजात वृक्ष था वैसे ही इसके घर में भी सुरों का वृक्ष अर्थात् जिससे सातो सुर निकलते हैं ऐसी बीणा है। और जैसे सत्यभामा पर श्रीकृष्ण जी अनुरक्त थे वैसे ही राजा इन्द्रजीत भी इससे बँधे हैं अर्थात् अनुरक्त हैं। अतः केशवदास कहते हैं कि राय प्रबीण सत्यभामा सी है।

[विशेष]—किसी समय सत्यभामा के कहने से कृष्ण जी इन्द्र को जीत कर स्वर्ग से पारिजात वृक्ष लाये थे और उसे सत्यभामा के आंगन में स्थापित किया था।

मूल—नरी किन्नरी आसुरी, सुरी रहत सिरनाय।
नवरस नवधा भक्ति, स्यों राजति नवरँगराय ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—नरी = नरपत्नी। सुरी = सुर पत्नी। नवरस—नवीन प्रेम। स्यों = सहित। नवधा भक्ति = (१) श्रवण (२)

कीर्तन (३) स्मरण (४) चरण सेवन (५) अर्चन (६) बंदन (७) दास्य (८) सख्य और (९) आत्म निवेदन।

भावार्थ—नवरंगराय पातुरी नित्य नवीन प्रेम नवधा भक्ति सहित ऐसी शोभती है कि उसे देखकर नरपत्नियां तथा किन्नर पत्नियां और असुर पत्नियां माथा नवालेती हैं अर्थात् लज्जित होती हैं।

हाव भाव संभावना, दोला सम सुखदाय।
पियमन देति झुलाय गति, नवरँग नवरँगराय ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—हाव=संयोग समय में नेत्र, कर, कटाक्ष द्वारा की हुई कृत्रिम चेष्टायें। भाव=प्रेम, हास्य, रिस, खुशी इत्यादि मनोवेग। संभावना=कृत्य, क्रिया। दोला=झूला। गति= नृत्य का ढंग। नपरँग=नवीन ढंग का।

भावार्थ—नवरँगयराय पातुरी नृत्य कला में ऐसी चतुरा है कि हावों तथा भावों की कृत्रिम चेष्टाओं को करके अपने प्रियतम (इन्द्रजीत) के मन को आन्दोलित कर देती है अतः वह झूला के समान सुखदायक है। रिस, तर्जना, वा भर्त्सना के हाव प्रगट करके प्रियतम के मन को दूर हटाती है, फिर तुरंत ही प्रेम प्रीति और विश्वास के भावों को प्रगट करके पुनः उसके मन को अपनी ओर आकर्षित करती है यही काम झूला का है।

मूल—भैरव युत गौरी सँयुत, सुरतरंगिनी लेखि।
चंद्रकला सी सोभिजै, नयनविचित्रा देखि ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—भैरव=(१) राग विशेष जो प्रातःकाल गाया

जाता है (२) शिव। गौरी=(१) राग विशेष जो संध्या को गाया जाता है (२) पार्वती। सुरतरंगिनी=(१) सातो सुरों की नदी, जिसमें सातो सुर भरे हों, जो सातो सुरों में गा सकती हो (२) गंगा।

[भावार्थ]—देखो, नयनविचित्रा चंद्रकला सी शोभती है, क्योंकि जैसे चंद्रकला शिव, पार्वती और गंगा से युक्त है वैसे ही नयनविचित्रा भी भैरव और गौरी रागों से युक्त है तथा सुरों की तो सरिता ही है।

मूल-नयन बयन रतिसयन सम, नयनविचित्रा नाम।
जयनशील पति मयन मन, सदा करति विश्राम ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—रतिसयन=रति समय की चेष्टायें। जयनशील=जीतने वाली।

भावार्थ—नयनविचित्रा नाम्नी पातुरी के नेत्र और बचन सुरति समय की चेष्टाओं के समान हैं अर्थात् साधारण समय में भी यदि कोई उसके नेत्रों को देखे वा उसके बचन सुने तो उसे सुरति समय की चेष्टाओं का सा मज़ा आजाय। और वह अपने मदन समान पति के मन को जीतने वाली है और उसके मनही में सदा विश्राम करती है अर्थात् सदैव पति के मन में बसती है।

मूल-नागरि सागर राग की, सोहत तानतरंग।
पति पूरन शशि दरस दिन, बाढ़त तान तरंग ॥ ५१ ॥

भावार्थ—तानतरंग नाम्नी पातुर बड़ी चतुरा और रागों की सागर है अर्थात् सब राग रागिनियां गा सकती हैं। जिस

दिन वह अपने पूर्णशशिरूपी पति के दर्शन करती है उस दिन उसके हृदय में तानों की लहरें बढ़ती हैं।

मूल—तानैं तानतरंग की, तनु तनु बेधत प्रान।
कला कुसुमसर-सरन की अति अजान तनत्रान ॥५२

शब्दार्थ—तनु = सूक्ष्म। कुसुमसर = काम। अति अजान = अज्ञान अर्थात् बालक वा विक्षिप्त का सा अज्ञान। तनत्रान = बखतर।

भावार्थ—तानतरंग की तानें प्राणियों के प्राणों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भागों में घुस जाती हैं। उन तानों में काम के बाणों की शक्ति है, उनसे बचने के लिये केवल अति अज्ञान ही बखतर हो सकता है अर्थात् अज्ञानी ही उन तानों के प्रभाव से बच सकता है अन्यथा उनसे बचाव नहीं।

मूल—रंगराय कर आंगुरीं, सकल गुणन की मूरि।
लागत मूक मृदंग सुख, शब्द होत भरपूरि ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—मूक = गूंगा, अबोल। भरपूरि = सब प्रकार के।

भावार्थ—रंगराय पातुर के हाथ की ऊँगलियाँ सर्व गुणों की मूल है। वे उँगलियां जब गूंगे मृदंग के मुख से छू जाती हैं तब वह मृदंग सब प्रकार के शब्द बोलने लगती है।

मूल—रँगराय कर, मुरजमुख, रँगमूरति पद चारु।
मनो पढ़्यो है साथही, सब संगीत बिचारु ॥ ५४ ॥

भावार्थ—रंगराय के हाथ ने, मृदंग के मुख ने और रंगमूरति के सुन्दर पैर ने मानो संगीत की समस्त विद्या साथ ही

साथ एकही गुरु से पढ़ी है (जब रंगराय मृदंग बजाती है, तब रंगमूरति उसी के ताल के अनुसार नाचती है)

मूल-अंग जिते संगीत के, गावत गुणी अनंत।
रँगमूरति अँग अंग प्रति, राजत मूरतिवंत ॥ ५५ ॥

भावार्थ—संगीत शास्त्र के जितने अंग हैं और जिन्हें असंख्य गुणी जन गाते हैं वे सब रंगमूरति के अंगों में मूर्तिमान हैं (अर्थात् रंगमूरति संगीत में अत्यंत प्रवीण है)।

मूल-नाचति गावति पढ़ति सब, सबै बजावति बीन।
तिनमें करति कवित्त इक, राय प्रबीन प्रवीन ॥ ५६ ॥

भावार्थ—सरल ही है।

मूल-रायप्रवीन प्रबीन सों, परवीनन मन सुःख।
अपरबीन केशव कहा, पर बीनिन को दुःख ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ— प्रबीन=प्रकृष्ट बीणा, अति उत्तम बीणा। परबीनन=प्रवीण लोग। अपरबीन=अप्रवीण, नादान। पर=विरोधी, हरीफ, शत्रु। बीननि=बीणाओं।

भावार्थ—रायप्रबीन की उत्तम बीणा से प्रबीण जनों के मन को सुख प्राप्त होता है। केशवदास कहते हैं कि अप्रवीण चेतन जनों की तो बात मैं नहीं कह सकता कि उनपर क्या प्रभाव पड़ता है, परयह निश्चित है कि विरोधियों की (जड़) बीणाओं तक को दुःख होता है (कि ऐसी सुघर बजाने वाली के हाथ से बजाये जाने का सौभाग्य हमें न प्राप्त हुआ) तात्पर्य यह कि प्रवीनराय बीणा बजाने में अति प्रवीण है।

(विशेष)—प्रवीणराय पातुरी काव्यकला में केशव की शिष्या थी, अतः निज शिष्या का नाम अमर करने के लिये केशव जी निम्न लिखित दोहों में उसका विशेष उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अपने एक सोनार मित्र का भी उल्लेख किया है। देखो प्रभाव ९ छंद २६।

यह कवि-प्रिया ग्रंथ प्रवीणराय को पढ़ाने के लिये ही केशव ने रचा था, जैसा कि वे स्वयं आगे के दोहा नं० ६१ में कहते हैं।

मूल—रतना कर लालित सदा, परमानंदहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि, रायप्रवीन ॥५८॥

शब्दार्थ—रतनाकर=(१) समुद्र (२) रत्नों का समूह। परमानन्द=(१) ईश्वर नारायण (२) अत्यन्त आनन्द। कमल=(१) कमल पुष्प (२) हाथ का एक आभूषण जो कलाई पर पहना जाता है।

भावार्थ—यह राय प्रवीण है कि लक्ष्मी है, क्योंकि लक्ष्मी रत्नाकर द्वारा लालित हुई है तो यह भी रत्न समूह से सदा लालित रहती है (रत्नजटित आभूषण पहने रहती है) और लक्ष्मी परमानन्द (नारायण) की सेवा में लीन रहती है तो यह भी अत्यन्त आनन्द में सदा निमग्न रहती है, और लक्ष्मी के हाथ में निर्मल सुन्दर कमल रहता है तो यह भी हाथ में सुन्दर कमल (कमल नामक आभूषण) रखती है।

मूल—रायप्रबीन कि शारदा, सुचि रुचि रंजित अंग।
बीणापुस्तक धारिणी, राजहंस सुत संग ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ—शुचि=(१) निर्मल, स्वच्छ, सफेद (२) शृंगार रस

रुचि = कांति । राजहंससुत = (१) राजहंस का पुत्र अर्थात् राजहंस । (२) 'हंससुत राज' अर्थात् सूर्यवंशजात राजा । राजा इन्द्रजीत जी गहरवार वंशजात थे और गहरवार वंश सूर्यवंश की एक शाखामात्र है । देखो दोहा नं० ६, ७ ।

भावार्थ—यह प्रवीणराय है कि शारदा है, क्योंकि शारदा का अंग स्वेत कांति से रंजित है और इसका अंग भी शृंगार की कांति से रंजित है । शारदा बीणा और पुस्तक लिये रहती है और यह भी बीणा और पुस्तक (क्योंकि केशव से काव्य ग्रंथ पढ़ा करती थी) लिये रहती है, शारदा के साथ राजहंस रहता है और यह भी हंसजात (सूर्यवंशी) राजा के साथ रहती है ।

मूल—बृषभ बाहिनी अंग उर, बासुकि लसत प्रवान ।
शिव सँग सोहै सर्वदा, शिवा कि रायप्रवीन ॥ ६० ॥

शब्दार्थ—बृषभबाहिनी = बैल पर सवार (२) धर्म को वहन करने वाली । बासुकि = (१) बासुकी नाग (२) सुगन्धित पुष्पमाला । प्रवीन = (१) चतुरा (२) उत्तम बीणा । शिव = (१) महादेव (२) सुन्दररूप । शिवा = पार्वती ।

भावार्थ—यह पार्वती हैं या प्रवीनराय, क्योंकि पार्वती शिव का अंग होने से बृषभवाहिनी हैं, उनके उर में बासुकी नाग पड़ा रहता है और प्रवीण भी है तथा सर्वदा शिव के संग रहती हैं, इसी प्रकार प्रवीणराय भी अपने अंग पर धर्मको वहन करती हैं अर्थात् वेश्या होने पर भी वेश्यावृत्ति छोड़ केवल एक राजा ही से संबंध रखती है अतः पतिव्रता है, उर पर

फूलों की माला धारण करती है और उत्तम वीणा भी रखती है तथा सर्वदा सुन्दररूप युक्त शोभा देती है।

मूल—सविता जू कविता दई, ताकहँ परम प्रकास।

ताके काज कविप्रिया, कीन्ही केशव दास ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—सविता = भगवान, नारायण। ताकहँ = उस प्रवीण राय को। ताके काज = उस प्रवीण राय के वास्ते।

भावार्थ—उस प्रवीणराय को ईश्वर ने परम प्रकाशमती काव्यकरण प्रतिभा दी है। उसी की शिक्षा के लिये केशव दास ने यह 'कविप्रिया' नामक ग्रंथ बनाया।

पहला प्रभाव समाप्त।

दूसरा प्रभाव

(कविबंश वर्णन)

(अर्थ सरल है, अतः टीका लिखना आवश्यक नहीं समझा गया)

मूल-ब्रह्माजूके चित्ततें प्रगट भये सनकादि।
उपजे तिनके चित्त ते सब सनौढ़िया आदि ॥ १ ॥
परशुराम भृगुनंद तब उत्तम बिप्र बिचारि।
दये बहत्तर ग्राम तिन तिनके पायँ पखारि ॥ २ ॥
जग पावन बैकुंठपति रामचंद्र यह नाम।
मथुरा मंडल में दये तिन्हैं सात सौ ग्राम ॥ ३ ॥
सोमबंश यदुकुल कलस त्रिभुवन पाल नरेश।
फेरि दये कलिकाल पुर तेई तिन्हैं सुदेश ॥ ४ ॥
कुंभवार उद्देसकुल प्रगटे तिनके बंस।
तिनके देवानंद सुत उपजे कुल अवतंस ॥ ५ ॥
तिनके सुत जयदेव जग थापे पृथिवीराज।
तिनके दिनकर सुकुलसुत प्रगटे पंडितराज ॥ ६ ॥
दिल्लीपति अल्लाउदीं कीन्हीं कृपा अपार।
तीरथ गया समेत जिन अकर करे बहुबार ॥ ७ ॥
गया गदाधर सुत भये तिनके आनँदकंद।
जयानन्द तिनके भये विद्यायुत जगबंद ॥ ८ ॥

भये त्रिविक्रम मिश्र तब तिनके पंडितराय ।
गोपाचलगढ़ दुर्गपति तिनके पूजे पाय ॥ ६ ॥
भाव शर्म तिनके भये जिनकै बुद्धि अपार ।
भये शिरोमणि मिश्र तब षट दर्शन अवतार ॥१०॥
मानसिंह सों रोष करि जिन जीती दिसि चारि ।
ग्राम बीस तिनको दये राना पाँव पखारि ॥११॥
तिनके पुत्र प्रसिद्ध जग कीन्हे हरि हरिनाथ ।
तोमरपति तजि और सों भूलि न ओड़्यौ हाथ ॥१२॥
पुत्र भये हरिनाथ के कृष्णदत्त शुभ वेष ।
सभा शाह संग्राम की जीती गढ़ी अशेष ॥ १३ ॥
तिनको वृत्ति पुराण की दींन्ही राजा रुद्र ।
तिनके काशीनाथ सुत सोभे बुद्धि समुद्र ॥ १४ ॥
जिनको मधुकरसाह नृप बहुत कर्‌यो सनमान ।
तिनके सुत बलभद्र शुभ प्रगटे बुद्धि निधान ॥ १५ ॥
बालहितें मधुसाह नृप जिनपै सुनै पुरान ।
तिनके सोदर द्वै भये केशवदास कल्यान ॥ १६ ॥
भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुलके दास ।
भाषा कवि भो मंदमति तेहि कुल केशवदास ॥ १७ ॥
इन्द्रजीत तासों कह्यौ माँगन मध्य प्रयाग ।
मांग्यो सब दिन एकरस कीजै कृपा सभाग ॥ १८ ॥
सोंही कह्यौ जु बीरबर मांगि जु मनमें होय ।

मांग्यो तब दरबार में मोहि न रोकै कोय ॥ १६ ॥
गुरु करि मान्यो इन्द्राजित तनमन कृपा विचारि ।
ग्राम दये इकबीस तब ताके पायँ पखारि ॥ २० ॥
इन्द्रजीत के हेत पुनि राजा राम सुजान ।
मान्यो मंत्री मित्र कै केशवदास प्रमान ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—इन्द्रजीत के हेत=इन्द्रजीत के हितुवा राजा रामसाह जी ।

दूसरा प्रभाव समाप्त

(कबिबंश वृक्ष)

कुंभवार
देवानंद
जयदेव—(प्रसन्नराघव नाटक के कर्ता)
दिनकर
गयागदाधर
जयानंद
त्रिबिक्रम
भाऊराम–(भाव प्रकाश नामक वैद्यकका ग्रंथरचा)
शिरोमणि
हरिनाथ
कृष्णदत्त
काशीनाथ–(शीघ्रबोध नामक ज्योतिष का ग्रंथरचा)
बलभद्र
नखशिखरचा
केशवदास
कबिप्रियाके कर्ता
कल्याणदास

तीसरा प्रभाव

[काव्य-दूषण वर्णन]

मूल—समझैं बाला बालकहु, वर्णन पंथ अगाध
कविप्रिया केशव करी, छमियो कबि अपराध ॥ १ ॥

भावार्थ—केशव ने यह कविप्रिया नामक ग्रंथ इस लिये बनाया है कि स्त्रियां और बालक भी कविता की अगाध रीति समझें। सो यह एक प्रकार का अपराध है। अतः कवियों से निवेदन है कि आप लोग मेरे इस अपराध को क्षमा करें।

(विशेष)—जो बात केवल धुरंधर कवियों के समझने की वस्तु है, उसे इतनी सरल कर देना कि उसे स्त्रियां और बालक भी समझ सकें, वास्तव में अपराध है। इसके लिये केशव जी कवियों से क्षमा मांगते हैं। अब उस सरल बात को (टीका करके) और सरल कर देना तो महा अपराध ठहरेगा। अतः 'दीन' जन भी कहता है :—

टीका कै कै सरल किय, कविता पंथ अगाध।
टीकाकर जन 'दीन' को, छमियो कवि अपराध ॥

मूल—अलंकार कवितान के सुनि सुनि विविध विचार।
कबिप्रिया केशव करी, कबिता को सिंगार ॥ २ ॥

भावार्थ—सरल है।

मूल—सगुन पदारथ अर्थ युत, सुबरनमय सुभ साज ।
कंठमाल ज्यों कविप्रिया कंठ करो कविराज ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—सगुन=(१) कबिता के गुणों सहित (२) डोरा सहित । पदारथ=जवाहरात, मणिमाणिक । सुबरन=(१) सोना (२) शुभवर्ण । शुभसाज=अच्छी तरह बनायी हुई । कंठमाल=कंठी । कंठ करो=(कंठ में पहन लो (२) (ज़बानी याद कर लो)

भावार्थ—यह कबिप्रिया ग्रंथ कंठी के तुल्य है । हे कबिराज गण इसे कंठ में पहन लो (ज़बानी याद कर लो) इसमें काव्यगुणही ओज माधुर्य और प्रसाद का डोरा है, काव्यार्थ ही मणिमाणिक हैं और शुभवर्ण ही सुवर्णमय गुरिया हैं और अच्छी तरह से सजाई गई है (अच्छी तरतीब से सोने की गुरियाँ और जवाहरात इसमें गुहे गये हैं)

मूल—चरण धरत चिंता करत, नींद न भावत शोर ।
सुबरण को सोधत फिरत, कबि व्यभिचारी चोर ॥४॥

शब्दार्थ—चरण=(१) पांव (२) छंद का एक पद । सुबरण=(१) सुंदर वर्ण (२) सुन्दर रंगवाली नायिका (३) सोना । सोधत फिरत=खोजा करता है ।

नोट—इस दोहे का अर्थ तीन जनों (कबि, व्यभिचारी और चोर) के पक्ष में लगेगा ।

भावार्थ—१—(कबि पक्ष)—कबि छंद के एक एक चरण गढ़ते समय खूब चिंतवन करता है और नींद तथा शोर अच्छे

नहीं लगते, और शुभवर्ण (श्रुतिमधुर वर्ण अथवा रस के अनुकूल वर्ण) को ढूंढता रहता है।

२—(व्यभिचारी पक्ष)—व्यभिचारी जन खूब सोच विचार कर चाल चलता है, अन्य जन सोते रहें और शोर न हो ऐसी ही स्थिति उसे भाती है (उसके कार्य के अनुकूल पड़ती है) और सुन्दर रंग वाली (चंपक वर्णी वा सुवर्णांगी नायिका) नायिका को खोजता रहता है।

३—(चोर पक्ष)—खूब सोच समझ कर पैर रखता है (दबे पावों चलता है जिससे कोई पैर की आहट न सुनले) उसे अन्यजनों की नींद (निद्रा) तो भाती है पर शोर गुल नहीं भाता। और सुवर्ण (सोना, धन) ही खोजा करता है।

(**विशेष**)—बड़ा सुन्दर श्लेष अलंकार है (देखो प्रभाव ११ छंद नं० २९)

मूल—राजत रच न दोष युत कविता बनिता मित्र।
बुंदक हाला परत ज्यों गंगाघट अपवित्र॥ ५॥

भावार्थ—कविता, स्त्री, और मित्र ये तीनों स्वल्प दोष से भी शोभा नहीं पाते। जैसे एक बूंद मदिरा से घड़ाभर गंगा-जल अपवित्र हो जाता है, वैसे ही अल्प दोष से ये तीनों निन्दनीय हो जाते हैं।

मूल—बिप्र न नेगी कीजिये मूढ़ न कीजै मित्त।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये दूषण सहित कबित्त॥ ६॥

शब्दार्थ—नेगी = धन सम्पत्ति का प्रबंधकर्ता।

भावार्थ—ब्राह्मण को धन सम्पत्ति का प्रबंधक न करो, मूढ़

को मित्र मत बनाओ, कृतघ्नी स्वामी की सेवा न करो (उसका दर्बार छोड़ दो) और सदोष कविता न रचो अर्थात् इतने कार्य विफल वा निन्दनीय हैं।

(दोष नाम)

मूल—अंध बधिर अरु पंगु तजि नग्न मृतक मतिशुद्ध ।

भावार्थ—हे मतिशुद्ध ! (बुद्धिमान कविगण) पांच प्रकार की कविता त्याज्य है जिनके नाम अंध, बधिर, पंगु, नग्न और मृतक हैं।

(दोष लक्षण)

अंध विरोधी पंथ को, बधिर सु शब्द विरुद्ध ॥ ७ ॥

छंद विरोधी पंगु गनि, नग्न जु भूषण हीन ।

मृतक कहावै अर्थ बिनु, केशव सुनहु प्रबीन ॥ ८ ॥

भावार्थ—

(१) कवियो की बाँधी हुई रीति से विरुद्ध कहना 'अंध' दोष है।

(२) परस्पर विरुद्ध शब्दों का प्रयोग करना 'बधिर' नामक दोष है।

(३) छंद शास्त्र के विरुद्ध छंद रचना करना 'पंगु' नामक दोष है।

(४) अलंकार रहित छंद रचना 'नग्न' नामक दोष कहलाता है।

(५) और हे प्रवीनराय ! केशव कहते हैं कि निरर्थक शब्दों के प्रयोग से कविता में 'मृतक' नामक दोष आता है।

१—(पंथ विरोधी 'अंध' नामक दोष का उदाहरण)

मूल—सवैया—

कोमल कंज से फूलि रहे कुच देखत ही पति चंद बिमोहै।
बानर से चल चारु विलोचन कोये रचे रुचि रोचन कोहै॥
माखन सो मधुरो अधरामृत केशव को उपमा कहुँ टोहै।
ठाढी है कामिनि दामिनिसी मृगभामिनि सी गजगामिनि सोहै॥८॥

भावार्थ—सरल ही है।

(**विवेचन**)—कवि प्रथानुसार 'कुच' को कठोर और संपुटित कमलकलीवत् कहा जाता है। यहां प्रस्फुटित कमलवत् और कोमल कहना पंथ बिरोध है। कमल के संबंध से 'पति' को चन्द कहना पंथ विरोध है, सूर्य कहना उचित था। 'लोचन' चंचल कहे जाते हैं, पर बानर की उपमा पंथ विरोधी है। आंख के कोयों का लाल होना कहा जाता है पर रोचन (रोरी) सम नहीं। अधर को माखन (श्वेत) की उपमा पंथ विरोध है, बिंबा सम कहना चाहिये था। मृग भामिनि (मृगी) सम खड़ी है, यह कहना भी पंथ विरोध है। ऐसे ही दोषों को 'अंध' दोष कहते हैं। अंध इस लिये कि इससे प्रगट होता है कि कहनेवाले ने कविपंथ को नहीं देखा, जैसे अंधा सुपंथ को नहीं देख सकता।

२—(शब्द विरोधी बधिर दोष का उदाहरण)

मूल—(सवैया)—

सिद्ध सिरोमणि शंकर सृष्टि सँहारत साधु समूह भरी है।
सुन्दर मूरति आतम-भूत की जारि घरीक में छार करी है॥

शुभ्र विरूप त्रिलोचन सों मति केशवदास के ध्यान अरी है।
बंदत देव अदेव सबै मुनि गोत्रसुता अरधंग धरी है ॥ १० ॥

शब्दार्थ—आतमभूत = कामदेव । बिरूप = विशेष सुंदर रूप । अरी है = अड़ी है । गोत्रसुता = पार्वती ।

भावार्थ—स्पष्ट और सरल है ।

[**विवेचन**]—सिद्ध शिरोमणि और शंकर शब्द कहके साधु समूह भरी सृष्टि 'संहारत' हैं, ऐसा कहना न चाहिये था। इन शब्दों के साथ 'पालत' वा 'रक्षत' शब्द का प्रयोग उचित था। संहार करने के लिये रुद्र, उग्र, भैरव इत्यादि शब्द चाहिये, 'शंकर' तो कल्याणप्रद को कहते हैं। आतम भूत (आत्मभू, काम) का अर्थ 'पुत्र' भी होता है, अतः यहां इस शब्द का प्रयोग अनुचित है. 'मार' वा 'विषमबाण' इत्यादि शब्द होना चाहिये था। त्रिलोचन के लिये विरूप शब्द अनुचित जँचता है। 'अरी' का अर्थ शत्रु भी होता है, अतः अनुचित है। 'गोत्र सुता' (पर्वत की पुत्री) का अर्थ सगोत्रवाली कन्या भी भासता है, अतः इसका भी प्रयोग अनुचित जँचता है, 'गिरीशसुता' होता तो अच्छा होता।

इसी प्रकार अनुपयुक्त शब्दों के प्रयोग से 'बधिर' नामक दोष होता है। 'बधिर' इस कारण कहा कि इस प्रकार के प्रयोगों से जान पड़ता है कि कहनेवाले ने शिष्ट और शिक्षित समाज में रहकर शब्दों का यथोचित प्रयोग तक नहीं सुना।

मूल—तौलत तुल्य रहै न ज्यों कनक तुला तिल आधु ।
त्योंही छंदो भंग को सुनि न सकै श्रुति साधु ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसे सोना तोलने का कांटा (तराजू) केवल आधे तिल के भारभेद से बराबर नहीं रह सकता—आधे तिलके बोझ से भी पलरा झुक जायगा—वैसेही कबिता सुनने में सधे हुए कान छन्दोभंग दोष को सुन नहीं सकते—अर्थात् कविता सुननेवाले सुपटु कानों को तनक भी छंदोभंग खटकेगा।

३—[छंदबिरोधी पंगुदोष का उदाहरण]

मूल—धीरज मोचन लोचन लोल विलोकि कै लोककी लीकति छूटी।
फूटिगये श्रुतिज्ञान के केशव आंखि अनेक विवेक की फूटी ॥
छोंड़िदई शरता सबकाम मनोरथके रथकीगति खूटी।
त्यों न करै करतार उबारक ज्यों चितई वह बारबधूटी ॥१२॥

शब्दार्थ—लोल = चंचल । लीक = राह । शरता = बाण चलाना, तीरंदाज़ी। खूटी = बाधित हुई, रुक गई। उबारक = और एक बार। बार बधूटी = वेश्या।

भावार्थ—धीर छोड़ाने वाले उन चंचल नेत्रों को देखकर मुझसे लोकाचार की राह अत्यंत छूट गई। ज्ञान के कान और विवेक के अनेक नेत्र भी फूट गये [ज्ञान विवेक जाता रहा] उन नेत्रों से लज्जित होकर काम ने तीरंदाजी छोड़दी और मनोरथ के रथ की गति रुक गई [मन की गति से भी वे नेत्र अधिक चंचल हैं) अतः जैसे एक बार वह बारबधूटी मेरी ओर चितई है अब करतार और ऐसा अवसर न आनंदे तो अच्छा है।

(विवेचन)—यह छंद मत्तगयंद सवैया है। इसके प्रत्येक चरणमें ७ भगण और दो गुरु होते हैं। इस छंद का शुद्ध नियम यही है

पर विचार करने से इस छन्द के प्रथम चरण में पांचवां और छठा गण, तथा दूसरे चरण में तीसरा और सांतवां गण 'भगण' न होकर 'रगण' हैं। अतः छन्द का नियम भंग होता है। पुनः प्रथम चरण में शब्द 'लीकति छूटी' = 'लीक अति छूटी' और चौथे चरण में 'करतार उबारक' = 'करतार और बारक' अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। ऐसा करना भी छन्द नियम को भंग करने के बराबर है। अतः इस छंद में छन्दो-भंग दोष है।

नोट—केशव ने इसे दोष माना तो, पर हिन्दी साहित्य संसार में मुशकिल ही से कोई मत्तगयंद सवैया ऐसा मिलेगा जिसमें यह दोष न हो। हां अलबत्ते अन्य वर्णिक छन्द जैसे मालिनी, मंदाक्रान्ता, द्रुतविलंबित, शार्दूल विक्रीड़ित इत्यादि में यह दोष बहुत खटकता है।

मत्तगयंद सवैया अपने शुद्धरूप में देखिये :—

भासत गंग न तो सम आन कहूं जग में मम पाप हरैया।
बैठि रहे मनु देव सबै तजि तोपर तारन भारहिं मैया॥
या कलि में इक तूहि सदा जनकी भवपार लगावति नैया।
है तु अरी! जग केहरि सी अघ मत्तगयंदहिं नास करैया॥

४—[अलंकारहीन नग्न दोष का उदाहरण]

मूल—तोरि तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यों न रहौंगी।
पान खवाय सुधाधर पान कै पाय गहे तस हौं न गहौंगी॥
केशव चूक सबै सहिहौ मुख चूमि चले यह पै न सहौंगी।
कै मुख चूमन दे फिरि मोहिं कि आपनि धायसों जायकहौंगी॥१३॥

शब्दार्थ—तनी = कंचुकी की तनी । टकटोरि = टटोलकर । सुधाऽधर = अधर सुधा । चूक = भूल, गलती । पै = लेकिन । धाय = दूध पिलाने वाली ।

भावार्थ—सरल ही है ।

(विवेचन)—इस छन्द में यद्यपि पहले और दूसरे चरण में हेतु तथा चतुर्थ चरण में विकल्प अलंकार है, तथापि व्यंग्य चमत्कृति सूचक न होने के कारण वे नगण्य हैं, अतः यह कविता प्राचीन मतसे अलंकार हीन मानी जायगी । ऐसेही काव्य में नग्न दोष माना जाता है । केशव ने इसे दोष माना है, पर अब लोग इसको दोष नहीं मानते, वरन् गुण मानते हैं । समयका उलट फेर तो है ।

५—[अर्थहीन मृतक दोष का उदाहरण]

मूल-काल कमाल करील चुरील तिसाल विसालनि चाल चली है ।
हाल बिहालति ताल तमाल प्रबाल कमाल कबाल लली है ॥
लोल विलोल कपोल अमोल कचोल कमोल कलोल कलीहै ।
बोलति बोल कपोलनि टोल तिगोल निगोल कलोल गलीहै॥१४॥

(विवेचन)—इस मत्तगयंद में नियम से सात भगण और दो गुरु तो अवश्य हैं, पर सबही शब्द निरर्थक हैं । अतः इसमें मृतक दोष है ।

नोट—अब आगे केशवजी कुछ दोष और बतलाते हैं ।

मूल—अगन न कीजै हीनरस, अरु केशव यतिभंग ।
व्यर्थ अपारथ हीनक्रम, कबिकुल तजौ प्रसंग ॥१५॥

भावार्थ—१-अगण । २-हीनरस । ३—यतिभंग । ४-व्यर्थ । ५-अपार्थ । ६-हीनक्रम, ये दोष और भी बचाना चाहिये ।

मूल—वर्ण प्रयोग न कर्णकटु सुनहु सकल कविराज ।
सबै अर्थ पुनरुक्ति के छाँड़हु सिगरे साज ॥ १६ ॥
भावार्थ—७-कर्णकटु और ८-पुनरुक्ति दोष भी न आने पावें।
मूल—देश विरोध न बरनिये, काल बिरोध निहारि ।
लोक न्याय आगमन के, तजौ विरोध विचारि ॥ १७ ॥
भावार्थ—९-देश विरोध । १० काल विरोध । ११ लोक विरोध १२-न्याय विरोध और १३-आगम (शास्त्र) विरोध भी विचार पूर्वक त्याज्य हैं ।
(नोट) तेरह दोष ये हैं और पाँच ऊपर कह आये, सब मिलाकर १८ दोष हुए । इन्हें कविगण बचावें तो अच्छा है ।
अब इन तेरह में से एक एक का विवेचन अलग अलग करते हैं।

१—(गण अगण वर्णन)

मूल—केशव गन शुभ सर्वदा, अगन अशुभ उर आनि ।
चारि चारि विधि चारु मति, गन अरु अगन बखानि ॥१८॥
शब्दार्थ—गन = सुगण । अगन = कुगण ।
भावार्थ—८-गण होते हैं, जिनमें चार शुभ और चार अशुभ हैं ।
मूल—मगन नगन पुनि भगन अरु, यगन सदा शुभ जानि ।
जगन रगन अरु सगन पुनि, तगनहिं अशुभ बखानि ॥१९॥
भावार्थ—मगण, नगण, भगण, यगण, ये चार शुभ गण कहलाते है । जगण, रगण, सगण, और तगण ये चार गण अशुभ माने जाते हैं ।
मूल—मगन त्रिगुरु युत त्रिलघु मय, केशव नगन प्रमान ।
भगन आदि गुरु आदि लघु, यगन बखानि सुजान ॥२०॥

भावार्थ—तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं। तीनों अक्षर गुरु हों वह 'मगण' है, तीनों अक्षर लघु हों उसे नगण जानो, आदि का अक्षर गुरु हो तदनंतर दो लघु हों उसे भगण कहो और आदि का अक्षर लघु तदनंतर दो गुरु हों उसे यगण मानो।

मूल—जगन मध्य गुरु जानिये, रगन मध्य लघु होये।
सगन अंत गुरु, अंत लघु, तगन कहैं सब कोय ॥ २१ ॥

भावार्थ—तीन अक्षरों के समूह में मध्य में गुरु हो उसे जगण, मध्य में लघु हो उसे रगण जानो, तथा तीन अक्षरों के समूह में अंत में गुरु हो उसे सगण और अंत में लघु हो उसे तगण समझो।

मूल—आठो गण के देवता, अरु गुण दोष विचार।
छन्दोग्रंथनि में कह्यौ, तिन को बहु विस्तार ॥२२॥

भावार्थ—सरल ही है।

(गण देवता वर्णन)

मूल—मही देवता मगन की, नाग नगन को देखि !
जल जिय जानौ यगन को, चंद भगन को लेखि ॥२३॥

शब्दार्थ—मही = पृथ्वी। नाग = शेषनाग।

मूल—सूरज जानौ जगन को, रगन शिखी मय मानि।
बायु समझिये सगन को, तगन अकाश बखानि ॥२४॥

शब्दार्थ—शिखी = अग्नि।

(गण जाति वर्णन)

मूल—मगन नगन को मित्र गनि, भगन यगन को दास।
उदासीन ज त जानिये, र स रिपु केशवदास ॥ २५ ॥

भावार्थ—मगन और नगन की मित्र संज्ञा है। भगण और यगण को दास कहते हैं। ज त अर्थात् जगण और तगण को उदासीन कहते हैं। और र स अर्थात् रगण और सगण को शत्रु कहते हैं।

(देवतानुसार गण-फल वर्णन)

मूल—भूमि भूरि सुख देय, नीर नित आनँदकारी।
आगि अंग दिन दहै, सूर सुख सोखै भारी॥
केशव अफल अकाश, वायु किल देश उदासै।
मंगल चंद अनेक, नाग बहु बुद्धि प्रकासै॥
यहि विधि कवित्त फल जानिये, कर्त्ता अरु जाहित करै।
तजि तजि प्रबन्ध सब दोष, गण सदा शुभाशुभ फल धरै॥२६॥

शब्दार्थ—भूरि = बहुत। किल = निश्चय। कर्ता = काव्यकर्त्ता। जाहित = जिसके लिये।

भावार्थ—भूमि (मगण) बहुत सुख देय। नीर (यगण) आनंदकारी है। आगि (रगण) प्रतिदिन अंग जलावै। सूर्य (जगण) सुख को सोखै। आकाश (तगण) निराट निष्फल। वायु (सगण) देश से उच्चाटन करे। चंद्र (भगण) मंगलदायक है। नाग (नगण) बुद्धि प्रकाशक है।
अतः शुभ तथा अशुभ गण विचार कर कविता करे। ये फल काव्यकर्त्ता और जिसके लिये कविता लिखी जाय दोनों के लिये है।

(नोट) यह विचार केवल नरकाव्य के लिये है। देवकाव्य के लिये नहीं, वह तो सदा ही शुभ है। और यह भी कि गणविचार केवल मात्रिक छंदों में ही करना चाहिये।

मूल—जो कहुँ आदि कविन्त के, अगण होय बड़भाग।
तातें द्विगण बिचार चित कीन्हों वासुकि नाग ॥२७॥

भावार्थ—हे बड़भाग ! यदि कहीं आवश्यकता वश अगण रखना ही पड़े, तो उसके दोष को निवारण करने के वास्ते वासुकि नाग ने द्विगण बिचार की प्रथा चलाई। वह प्रथा यों हैं।

मूल—मित्र तें जु होय मित्र बाढ़ै बहु रिद्धि सिद्धि,
मित्र तें जु दास त्रास युद्ध तें न जानिये।
मित्र तें उदास गन होत गात दुख देत,
मित्र तें जु शत्रु होय मित्रबंधु हानिये।
दास तें जु मित्रगण काज सिद्धि केशोदास,
दास तें जु दास बस जीव सब मानिये।
दास तें उदास होत धन नास आस पास,
दास तें जु शत्रु मित्र शत्रु सो बखानिये ॥२८॥
जानिये उदास तें जु मित्रगन तुच्छ फल,
प्रगट उदास तें जु दास प्रभुताइये।
होय जो उदास तें उदास तो न फलाफल,
जो उदास ही तें शत्रु तो न सुख पाइये।
शत्रु तें जु मित्रगन ताहि सो अफल गन,
शत्रु तें जु दास आशु बनिता नसाइये।
शत्रु तें उदास कुलनाश होय केशोदास,
शत्रु तें जु शत्रु-नाश नायक को गाइये ॥२९॥

भावार्थ—नीचे लिखा कोष्ट देखकर समझिये:—

गणयोग	फल
मित्र + मित्र	सिद्धि
मित्र + दास	विजय
मित्र + उदासीन	गोत्र दुखदाई
मित्र + शत्रु	बंधु हानि
दास + मित्र	कार्यसिद्धि
दास + दास	सर्वजीव वश
दास + उदासीन	धन नाश
दाश + शत्रु	पराजय,मित्र भी शत्रुहो
उदासीन + मित्र	अल्प फल
उदासीन + दास	प्रभुता प्राप्ति
उदासीन + उदासीन	बिफल
उदासीन + शत्रु	सुख न मिलै
शत्रु + मित्र	विफल
शत्रु + दास	नारिनाश
शत्रु + उदासीन	कुलनाश
शत्रु + शत्रु	नायकनाश

मूल—राधा राधारमन के, मन पठयो है साथ।
उद्धव ह्यां तुम कौनसों, कहो योग की गाथ ॥३०॥
कहौं कहा तुम पाहुने, प्राणनाथ के मित्र।
फिर पीछे पछिताहुगे, ऊधो समुझौ चित्त ॥३१॥

दोहा दुहूं उदाहरण, आठौ आठौ पाय।
केशव गन अरु अगनके, समझौ बुद्धि सुभाय ॥३२॥

भावार्थ—ऊपर के दोनों दोहों में ८ चरण हैं। आठो चरणों में गणागण के आठ उदाहरण हैं, उन्हें समझिये—जैसेः—

१—राधारा धारम = म + भ = मित्र + दास, फल विजय।
२—मन पठयो है = न + य = मित्र + दास, फल विजय।
३—उद्धव ह्यांतुम = भ + भ = दास + दास, फल सर्वजीववश।
४-कहोयोग कीगा = य + य = दास + दास, फल सर्वजीववश।

ये चारो गणयोग शुभ हैं

५-कहौं कहातुम = ज + भ = उदासीन + दास, फल अल्प।
६-प्राणनाथकेमि = र + य = उदासीन + दास, फल अल्प।
७-फिर पीछे पछि = स + भ = शत्रु + दास, फल नारिनाश।
८-ऊधो समुझौ चि = त + य = शत्रु + दास, फलनारिनाश।

ये चारो गणयोग अशुभ हैं। इसी प्रकार और भी समझलो।

नोट—चूंकि छठें और आठवें उदाहरण में 'मि' और 'चि' देखने में लघु हैं पर गण विचार से गुरु माने गये हैं। नवीन पाठक को यह शंका हो सकती है कि ऐसा क्यों हुआ। इसके समाधान के लिये केशव नियम बतलाते हैं कि—

मूल—संयोगी को आदि युत, बिंदु जु दीरघ होय।
सोई गुरु लघु और सब कहै सयाने लोय ॥ ३३ ॥

भावार्थ—संयुक्ताक्षर के पहले वाला अक्षर, और अनुस्वार तथा विसर्ग वाला, तथा जो स्वयं ही दीर्घ हो, ये अक्षर गुरु माने जायेंगे। जैसे = मित्त और चित्त शब्द में 'मि' और 'चि' गंगा शब्द का गं, दुःख का 'दुः' और गंगा का 'गा' भी, ये सब पिंगलानुसार गुरु माने जायेंगे।

मूल—दीरघ हू लघु करि पढ़े, सुख हो मुख जेहि ठौर।
सोऊ लघु करि लेखिये, केशव कवि सिरमौर ॥३४॥

भावार्थ—दीर्घ अक्षर को जहां लघु करके पढ़ने से मुख को सुख हो, वहां उस दीर्घ को भी लघु ही समझना चाहिये। केशव कहते हैं, हे कवि शिरोमणि यह बात याद रखिये। जैसेः-

मूल-पहले सुखदै सबही को सखी हरिही हितकै जुहरी मतिमीठी।
दूजे लै जीवनमूरि अक्रूर गयो अँग अँग लगाय अँगीठी ॥
अब धौं केहि कारन केशव ये उठिधाये हैं ऊधव झूठी बसीठी।
माथुर लोगन के सँगकी यह बैठक तोहिं अजौं न उबीठी॥३५॥

शब्दार्थ—मतिमीठी = अच्छी बुद्धि। उबीठी = अरुचिकर हुई।

भावार्थ—सरल ही है।

(विवेचन)—यह उपजाति सवैया है। इसके पहले और तीसरे चरणों में २५ अक्षर हैं तथा दूसरे और चौथे चरणों में केवल २३ हैं। इसके पहले चरण का 'को' दूसरे के जे, लै, अक्रूर का अ, और तीसरे चरण के ये, हैं और ठी, अक्षर गुरु लिखे हैं, पर इनका उच्चारण आसानी से लघु की तरह होता है (और पिंगल के अनुसार होना भी ऐसा ही चाहिये) अतः ये अक्षर लघु ही माने जायेंगे।

मूल—संयोगी की आदि को कहुँ गुरु बरण बिचारि।
केशवदास प्रकाश बल, लघु करि ताहि निहारि ॥३६॥

भावार्थ—संयुक्ताक्षर के पहले वाले वर्ण को गुरु वर्ण मानने का बिचार छंद नम्बर ३३ में लिख आये हैं। अब उसका अपवाद लिखते हैं कि कहीं कहीं ज्ञानबल से उसे भी लघु ही देखना चाहिये।

(आगे उसके उदाहरण देते हैं)

मूल—अमल जुन्हाई चन्द्रमुखि ठाढ़ी भई अन्हाय ।
सौतिन के मुख कमल ज्यौं देखि गये मुरझाय ॥३७॥

भावार्थ—सरलही है ।

(विवेचन)—इस दोहे में 'न्ह' संयुक्त अक्षर हैं, अतः छंद ३३ के अनुसार उसके पहले के अक्षर 'जु' और 'अ' गुरु माने जाने चाहिये । पर ये अक्षर यहां गुरु हैं नहीं । लघु ही हैं ।

नोट—केशव ने इसका समझना प्रकाशबल (ज्ञानबल) पर छोड़ा है, पर हमारा अनुभव प्रत्यक्ष नियम बताता है कि जहां 'न' और 'ह' संयुक्त होकर 'न्ह' के रूपसे आवै वहाँ उसके पहले का अक्षर गुरु न होकर लघु ही होगा—जैसे—कन्हाई, जुन्हाई, अन्हाई इत्यादि में, और जब 'ल' और 'ह' संयुक्त होकर 'ल्ह' रूप से आवें तब भी कहीं ऐसा होगा कहीं न भी होगा,—जैसे—कुल्हाड़ी,में 'कु' लघु ही है पर कुल्हड़, और कल्ह में 'कु' और 'क' गुरु माने जाते हैं । यहाँ तक गन अगन दोष का निर्णय हुआ । आगे दोहा नं० १५ में कथित हीनरसादि दोषों का विवरण देते हैं ।

२—(हीनरस दोष का वर्णन)

मूल—बरनत केशवदास रस, जहाँ विरस ह्वै जाय ।
ता कबित्त सों हीनरस, कहत सबै कविराय ॥३८॥

भावार्थ—जहाँ कहीं किसी रस का वर्णन करते करते कोई बात उस रस के विरुद्ध कह डाली जाय, उसे हीनरस दोष कहते हैं, जैसेः—

मूल—दै दधि, दीनो उधार हो केशव, दानी कहा जब मोल ले खैहैं।
दीन्हें बिना तो गई जु गई, न गई न गई घर ही फिर जैहैं।
गो हित बैरु कियो, हित हो कब, बैरु किये बरु नीके ही रैहैं।
बैर कै गोरस बेचहुगी, अहो बेच्यो न बेच्यो तो ढारि न दैहैं।२६

नोट—इसमें कृष्ण और गोपी का सवाल जवाब है, अर्थ यों है।
भावार्थ—कृष्ण—हम को दही दो।
गोपी—उधार तो हम दे चुकी, (उधार न दूँगी, नगद दाम देकर ले सकते हो)
कृष्ण—तो हम दानी कैसे जो मोल लेकर खायें—हम जगात में लेते हैं। अगर न देगी तो मथुरै जा चुकी बिना दिये हम आगे न जाने न देंगे।
गोपी—मै मथुरै गई तो क्या न गई तो क्या, लो घर लौटी जाती हूं।
कृष्ण—ऐसा करने से तो आज से हमारा तेरा प्रेम गया और तू ने हमसे मानो बैर कर लिया।
गोपी—मुझसे तुमसे प्रेम था कब, तुम से बैर कर के आराम ही से रहूंगी।
कृष्ण—हम से बैर करके तू गोरस बेच सकैगी?
गोपी—न बेच सकूंगी तो नहीं सही, ढार तो न दूँगी अर्थात् न विक सकैगा तो खुद खाऊँगी पर तुम्हें देना तो लुढ़का देने के बराबर है—व्यर्थ है—अतः तुम्हें न न दूँगी।

(विवेचन)—इस कवित्त में यद्यपि कृष्ण और गोपी आलंबन विभाव से प्रतीत होते हैं, पर अनुभाव और संचारी न

होने से इसमें शृङ्गार रस प्रतिपादित नहीं हो सकता। कोई रस तभी प्रतिपादित होता है जब रस के चारो अंग स्पष्ट भासित होते हों। अतः यह हीनरस दोष हुआ।

३—(यतिभंग दोष)

मूल—और चरण के बरण जहँ, और चरण सों लीन।
सो यतिभंग कवित्त कहि केशवदास प्रवीन ॥ ४० ॥

भावार्थ—जहाँ किसी चरण के कुछ अक्षर उसके आगे वाले चरण में गने जायें, जैसेः—

मूल—हरहरि केशव मदन मो हन घनश्याम सुजान।
ज्यों ब्रजवासी द्वारका. नाथ रटन दिन मान ॥४१॥

(विवेचन)—'मदन मोहन' एक शब्द है, पर यहाँ 'मदनमो' पहले चरण, में और 'हन' दूसरे चरण में है। इसी प्रकार 'द्वारका-नाथ शब्द के दो टुकड़े होकर दोनों चरणों में हैं, यही यति भंग दोष है।

४—('व्यर्थ' दोष)

मूल—एक कवित्त प्रबन्ध में, अर्थ विरोध जु होय।
पूरब पर अनमिल सदा, व्यर्थ कहैं सब कोय ॥४२॥

भावार्थ—जहाँ एक ही छंद में पूर्वापर विरोध हो। जैसे :—

मूल—सब शत्रु सँहारहु जीव न मारहु साजि योधा उमराव।
बहु वसुमति लीजै, मो मति कीजै, लीजै आपन दाँव।
कोउ न रिपु तेरो सब जग हेरो तुम कहियत अतिसाधु।
कछु देहु मँगावहु भूख भगावहु हौ तुम धनी अगाधु ॥४३॥

(विवेचन)—इस छंद में 'शत्रु संहारो' पर 'जीव न मारो' विरोधी भाव हैं। पहले 'शत्रु संहारे' कह कर फिर 'कोउ न रिपु तेरो' कहना विरोध है। 'अगाध धनी' कहना और 'कछु' माँगना विरोध है। उससे तो बहुत सा माँगना चाहिये। यही व्यर्थ दोष है।

५-(अपार्थ दोष)

मूल—अर्थ न जाको समुझिये, ताहि अपारथ जान।
मतवारो उनमत्त शिशु, के से बचन बखान ॥४४॥

भावार्थ—जिस छंद का कोई सुसंगत अर्थ न निकलै, जैसेः—

मूल—पिये लेत नर सिंधु कहँ है अति सज्वर देह।
ऐरावत हरि भावतो, दरथ्यो गरजत मेह ॥ ४५ ॥

(विवेचन)—इस दोहे का कोई सुसंगत अर्थ समझ में नहीं आता केवल उन्मत्त वा नादान बच्चे की सी बड जान पड़ती है। यही अपार्थ दोष कहलाता है।

६—(क्रमहीन दोष)

मूल—क्रमही गुणन बखानि कै गुणी गनै क्रमहीन।
सो कहिये क्रमहीन जग, केशवदास प्रवीन ॥४६॥

भावार्थ—कुछ व्यक्तियों के गुणों का क्रमसे वर्णन किया जाय, पुनः गुणियों का नाम लेते समय क्रम भंग हो जाय, जैसेः—

मूल—जगकी रचना कहि कौन करी।
किहि राखन की जिय पैज धरी ॥

अति कोपि कै कौन सँहार करै।
हरि जू हर जू विधि बुद्धि ररै ॥४७॥

शब्दार्थ—पैज = प्रतिज्ञा। ररै = रटै।

(विवेचन)—इस छंद में प्रथम तीन चरणों में क्रम से ब्रह्मा विष्णु और हर (महादेव) के गुण कहे, पर नाम बताते समय चौथे चरण में उनके नामों का क्रम भंग कर दिया। चौथा चरण यों होना चाहिये था—"बिधि जू हरिजू, हर बुद्धि ररै।" यही क्रमहीन दोष कहलाता है।

७—(कर्णकटु दोष)

मूल—कहत न नीको लागई, सो कहिये कटुकर्ण।
केशवदास कवित्त में, भूलि न ताको बर्ण ॥४८॥

भावार्थ—जहां किसी शब्द का प्रयोग सुनने समझने में अच्छा न जँचै, अनुचित जान पड़ै। जैसे :—

मूल—बारन बन्यो वनाव तन, सुबरन बली विशाल।
चढ़िये राज मँगाय कै, मानो राजत काल ॥४९॥

शब्दार्थ—बारन = हाथी। सुबरन = सुन्दर रंगवाला।

भावार्थ—हे राजन्! उस हाथी को मँगाकर सवार हूजिये जिसके तनका सुन्दर बनाव है, जो सुन्दर रंगवाला, बलवान और बहुत बडा है और काल समान शोभित है।

(विवेचन)-इसमें 'मानो राजत काल' यह कथन अनुचित जँचता है, सुनते ही बुरा मालूम होता है। यही 'कर्णकटु' दोष है।

८—(पुनरुक्ति दोष)

मूल—एकबार कहिये कछु, बहुरि जु कहिये सोय।
अर्थ होय कै शब्द अब, सुनि पुनरुक्ति सुहोय ॥ ५० ॥

भावार्थ—एकही शब्द वा अर्थ को कई बार कहना। जैसेः—

मूल—मघवा घन आरूढ़, इन्द्र आजु अति सोहियो।
ब्रज पर कोप्यो मूढ़, मेघ दसौ दिस देखिये ॥ ५१ ॥

(विवेचन)—इसमें मघवा और इन्द्र, घन और मेघ मे अर्थ पुनरुक्ति है।

(दोष निवारण)

मूल—दोष नहीं पुनरुक्ति को, एक कहत कविराज।
छांड़ि अर्थ पुनरुक्ति को, शब्द कहौ यहि साज ॥५२॥

भावार्थ—यदि एकही शब्द कई बार आवे, पर उससे अर्थ-पुनरुक्ति न होती हो तो उसे दोष नहीं मानने। जैसे :—

मूल—लोचन पैने शरन तें, है कछु तो कहँ सुद्धि।
तन बेध्यो, बेध्यो सुमन, बेधी मनकी बुद्धि ॥ ५३ ॥

(विवेचन)—इसमें 'बेधन' क्रिया का तीन बार प्रयोग है, पर हरबार अन्य अन्य संज्ञा के साथ उसका अन्वय है, अतः अर्थपुनरुक्ति नहीं है, अतः यह दोष नहीं है।

९—(देश विरोध दोष)

मूल—मलयानिल मन हरत हठि, सुखद नर्मदाकूल।
सुबन सघन घनसारमय, तरुवर तरल सुफूल ॥५४॥

(विवेचन)—नर्मदाकूल में मलयानिल का होना और उसी सघन वनमें कपूर का होना देश विरुद्ध है। मलयगिरि मैसूर में है और कपूर कदलीबन में होता है जो बंगाल में है।

(पुनः)

मूल—मरु सुदेश मोहन महा, देखहु सकल सभाग।

अमल कमल कुल कलित जहँ, पूरण सलिल तड़ाग ॥५५॥

(विवेचन)—मरु देश में कमलयुत जलपूर्ण तड़ाग का बर्णन देश विरोध है।

१०—(काल विरोध)

मूल—प्रफुलित नव नीरज रजनि, बासर कुमुद बिशाल।

कोकिल शरद, मयूर मधु, बरषा मुदित मराल ॥५६॥

(विवेचन)—कमल का रात्रि में फूलना, कुमुद का दिनमें फूलना, शरद में कोकिल, बसंत में मोर, तथा वर्षा में हंस का मुदित होना बर्णन करना काल विरोध है।

११—(लोक विरोध)

मूल—स्थायी बीर सिंगार के, करुणा घृणा प्रमान।

तारा अरु मंदोदरी, कहत सतीन समान ॥ ५७ ॥

(विवेचन)—यह बात प्रमाणित है कि बीर रस के स्थायी के समय करुणा का वर्णन तथा सिंगार के समय घृणा का वर्णन लोक विरुद्ध है, यानी करुणा के समय बीर रस गायब हो जाता है और घृणा के समय सिंगार रस काफूर हो जाता है। इसी प्रकार तारा और मंदोदरी को सती स्त्रियों के समान वर्णन करना लोक विरुद्ध है।

१२—(नीति विरोध)

मूल—पूजौ तीनो बर्ण जग, करि विप्रन सों भेद।

१३—(आगम विरोध)

पुनि लीबो उपबीत हम, पढ़ि लीजै सब बेद ॥५८॥

(विवेचन)—ऐसा कहना कि "विप्रों को छोड़कर अन्य तीनों वर्णों को पूजो" यह नीति विरोध है। और ऐसा कहना कि "पहले वेद पढ़ लें तब यज्ञोपवीत लेंगे" यह शास्त्र विरोध है।

मूल—यहिविधि औरहु जानियो, कविकुल सकल विरोध।
केशव कहे कछूक अब, मूढ़नि के अविरोध ॥६०॥

शब्दार्थ—मूढ़नि के अविरोध=जो मूढ़ों के लिये भी अविरोध हैं अर्थात् जिन्हें मूढ़लोग भी स्वीकार कर लेंगे।

मूल—केशव नीरस विरस अरु, दुःसंधान विधानु।
पातर दुष्टादिकन को, रसिकप्रिया तें जानु ॥ ६१ ॥

भावार्थ—इस तीसरे प्रभाव में कहे हुए १८ दोषों के अलावा कुछ रसदोष जैसे नीरस, विरस, दुःसंधान इत्यादि और भी हैं। उनको रसिकप्रिया ग्रंथ से समझ लेना चाहिये।

(नोट)—रसिकप्रिया के १६ वें अर्थात अंतिम प्रभाव में इनका वर्णन है।

चौथा प्रभाव

(कबि भेद बर्णन)

मूल—केशव तीनहु लोक में, त्रिविध कविन के राय।
मति पुनि तीन प्रकार की, बरनत सब सुख पाय ॥१॥
उत्तम मध्यम अधम कवि, उत्तम हरि रसलीन।
मध्यम मानत मानुषनि, दोषनि अधम प्रवीन ॥२॥

भावार्थ—तीन प्रकार के कवि होते हैं। उत्तम कवि केवल हरि के यश कहते हैं-जैसे बाल्मीकि, तुलसीदास, सूरदास इत्यादि, मध्यम कबि मानव चरित्र वर्णन करते हैं—जैसे चन्द बरदाई भूषण, सूदन और लालकबि इत्यादि, तथा अधम कबि केवल परनिंदात्मक कबिता (भँडौआ) करते हैं, जैसे बेणी प्रवीन।

(पुनः यथा)

मूल—हैं अति उत्तम ते पुरुषारथ जे परमारथ के पथ सोहैं।
केशबदास अनुत्तम ते नर संतत स्वारथ संयुत जो हैं ॥
स्वारथ हू परमारथ भोग न मध्यम लोगनि के मन मोहैं।
भारत पारथमित्र कह्यौ परमारथ स्वारथ हीन ते को हैं ॥३॥

शब्दार्थ—मध्यम = अतिनीच। पारथमित्र = श्रीकृष्ण।

भावार्थ—वे लोग अति उत्तम हैं और वही सच्चे पुरुषार्थ वाले कबि हैं जो परमार्थ पथ पर चलते हैं अर्थात् केवल हरिगुण कहते सुनते हैं। और अनुत्तम (अर्थात् दूसरे दर्जे के) कबि वे हैं जो सदैव स्वार्थ साधन में लगे रहते हैं (अर्थात्

प्रशंसायुक्त मानव चरित्र कहते हैं और उनसे धन प्राप्त करके चैन उड़ाते हैं) और अतिनीच कवि वे हैं जो भँड़ौआ कविता करके लोगों का केवल मनोरंजन तो करते हैं, पर जिस से न तो धन प्राप्ति होती है न परलोक ही बनता है। ऐसे ही कवियों के लिये महाभारत में श्रीकृष्ण जी ने कहा है कि जो कवि स्वार्थ और परमार्थ रहित कविता करते हैं उन्हें क्या कहें अर्थात् उन्हें कवि कहना चाहिये या नहीं।

(कविरीति वर्णन)

मूल—साँची बात न बरनहीं, झूँठी बरननि बानि।

एकनि बरनैं नियम कै, कवि मत त्रिविध बखानि।

नोट—इस दोहे के पूर्वार्द्ध में लाटानुप्रास है, अतः दो प्रकार से अन्वय होगा।

(१) सांची बातन जूठी बरनहीं (२)—झूंठी बातन सांची बरनहीं।

भावार्थ—कवियों के वर्णन की यह बानि है कि (१) कतिपय सच्ची बातों को झूंठी कह कर बर्णन करते हैं, तथा (२) कतिपय झूंठी बातों को सत्यवत् करके वर्णन करते हैं, तथा (३) कुछ बातों को नियम बद्ध करके वर्णन करते हैं। इस प्रकार कवियों की वर्णन शैली तीन विधि की है।

नोट—आचार्य भिखारीदास जी ने भी इस विषय में यों कहा है:—

सांची बातन युक्ति बल झूठी कहत बनाय।

झूठी बातन को प्रगट सांच देत ठहराय॥

लच्छी राम कवि ने कहा है:—

कतहुँ सत्य को झूठ करि बरनत बारहिं बार ।

कतहुँ झूंट को कहत हैं, परम सत्य निरधार ॥

१—(सत्य को झूठ कहना)

मूल—केशवदास प्रकाश बहु चंदन के फल फूल ।

कृष्ण पक्ष की जोन्ह ज्यों, शुक्ल पक्ष तम तूल ॥ ५ ॥

भावार्थ—केशव कहते हैं कि चंदन वृक्ष में प्रत्यक्ष बहुत से फल फूल होते हैं, पर कवि लोग चंदन वृक्ष में फूलों का न होना ही वर्णन करते हैं। इसी तरह कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष में तम और प्रकाश बराबर ही होता है, पर कवि लोग कृष्ण पक्ष की अपेक्षा शुक्ल पक्ष की अधिक प्रशंसा करते हैं।

नोट—श्रीतुलसीदास जी ने कहा हैं:—

"सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह ।"

२—(झूठ को सत्य मान कर वर्णन करना)

मूल—जहँ जहँ वर्णत सिंधु सब, तहँ तहँ रतननि लेखि ।

सूछम सरवर हू कहैं, केशव हंस बिशेषि ॥ ६ ॥

भावार्थ—प्रत्येक समुद्र में रत्न नहीं होते, पर कवि जहाँ समुद्र का वर्णन करेगा वहाँ उसमें रत्नों का होना वर्णन करेगा। हंस केवल मान सरोवर में रहते हैं, पर कवि छोटे सरोवर में भी हंसों और कमलों का होना वर्णन करेगा। यही झूठ को सत्य कहना है।

(पुनः)

मूल—लेन कहैं भरि मूठि तम, सूजनि सियनि बनाय ।

अंजुलि भरि पीवन कहैं, चंद्र चंद्रिका पाय ॥ ७ ॥

भावार्थ—(रावण का दूत जो राम सेना देखने गुप्त रूप से गया था, लौट कर रावण से कहता है कि वहाँ इतने अधिक और ऐसे वीर बानर हैं कि) सूजी से अच्छी तरह सी कर (गेंद सा बनाकर) रात्रि के अंधकार का अपनी मुट्ठी में कर लेने की बार्ता करते हैं और रात्रि की चाँदनी को अंजुली में भर कर पी लेने की बार्ता करते हैं (ऐसे साहसी हैं)-अर्थात् रात्रि को मिटा देना चाहते हैं—व्यंग यह कि न रात्रि रहैगी न निश्चर रहैंगे।

(विवेचन)—इससे राम सेना की प्रशंसा सूचित होती है। अर्थ समझ कर चित्त प्रसन्न हो जाता है, पर बात सब झूठी है। न तो अंधकार सिया जा सकता है, न मुट्ठी में भरा जा सकता है, न चाँदनी पी ली जा सकती है। यही झूठ का सत्यवत् वर्णन है।

मूल—सब के कहत उदाहरण, बाढ़ै ग्रंथ अपार।
कछू कछू ताते कह्यौ, कवि कुल चतुर विचार ॥ ८ ॥

भावार्थ—केशव कहते हैं कि कौन कौन सी सत्य बातों को झूठी और कौन कौन सी झूठी बातों को सत्य करके कवि लोग वर्णन करते हैं, यदि इन सब बातों के उदाहरण मैं लिखूं तो ग्रन्थ बहुत बढ़ जाय। अतः कुछ थोड़ेही से मैंने कहे हैं। चतुर कविगण स्वयं विचार कर लेंगे।

(पुनः तम के संबंध में झूठ का सत्य वर्णन)

मूल—कंटक न अटकै न फाटत चरण चपि,
बात ते न जात उड़ि अंग न उघारिये।

नेकहू न भीजत मुसलधार वरषत,
कीच न रचत रंच चित्त में बिचारिये ।
केशोदास सावकास परम प्रकासन,
उसारिये पसारिये न पिय पै बिसारिये ।
चलिये जू ओढ़ि पट तम ही को गाढ़ो तन,
पातरो पिछौरा सेत पाट को उतारिये ॥ ६ ॥

विशेष—कोई दूती किसी नायिका को कृष्ण पक्ष में अभिसार कराना चाहती है अतः कहती है किः—

भावार्थ—यह पतली सफेद रेशमी चादर उतार दो और अंधकार की काली चादर ओढ़ कर चलो, क्योंकि यह अंधकारमय चादर ऐसी है कि न तो यह काँटों में उलझती है, न पैर से चप कर फटती है, न यह वायु से उड़ती है, जिससे अंग खुल जाय, न मुसलाधार वर्षा से भीगती है। न कीचड़ से खराब होती है, इस बात को चित्त से विचार कर देख लो। यद्यपि यह चादर बहुत लम्बी चौड़ी है, पर न तो यह कभी उसलती पुसलती है, न इसे प्रियतम के पास भूल आने का भय है, अतः रेशमी पतली सफेद चादर को उतार कर रख दो और गाढ़े अंधकार की चादर ओढ़ कर चलो।

(विवेचन)—अंधकार की चादर एक झूठी वस्तु है, पर कवि युक्ति से उसे सत्य वस्तु का सा रूपक देता है। युक्ति मनोहर भी है।

(चंद्रिका के संबंध में झूठ का सत्य वर्णन)

मूल—भूषण सकल घनसार ही के घनस्याम,
 कुसुम कलित केस रही छबि छाई सी।
 मोतिन की सरि सिर कंठ कंठमाल हार,
 बाकी रूप ज्योति जात हेरत हिराई सी।
 चंदन चढ़ाये चारु सुंदर सरीर सब,
 राखी सुभ सोभा सब बसन बसाई सी।
 शारदा सी देखियत देखो जाय केशोराय,
 ठाढ़ी वह कुँवरि जुन्हाई में अन्हाई सी ॥ १० ॥

शब्दार्थ—घनसार = कपूर। सरि = लर। जुन्हाई = चांदनी।

(विशेष)—राधिका जी चांदनी रात में सुसज्जित होकर संकेतस्थल में कृष्णजी की बाट जोह रही हैं। कोई दूती जाकर कृष्ण से कहती है कि:—

भावार्थ—हे घनश्याम! वह प्यारी कपूर ही के सब भूषण पहने हैं, बाल सफेद पुष्पों से सँवारे हैं जिससे छबि छा रही है, सिर पर की मुक्तालर और कंठ के कंठा और हार इत्यादि उसके रूप की ज्योति में खो से गये हैं। सर्वाङ्ग में सफेद चंदन का लेप है, जिस से शोभा भी है और सब कपड़े महक रहे हैं। हे केशवराय! जाकर देखो तो वह तो चंद्र चांदनी में अन्हाई हुई सी शारदा सी बनी ठनी खड़ी तुम्हारी राह देख रही है।

(विवेचन)—कपूर के आभूषण और चांदनी में स्नान करना बिल्कुल झूठ बातें हैं पर कवि कहता है, और मीलित अलंकार

द्वारा राधिका की रूपज्योति का ऐसा सुन्दर वर्णन करता है कि सुन समझकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। यही झूठ का सत्यवत वर्णन है।

३—(कवि के नियमबद्ध वर्णन)

मूल—बर्णत चंदन मलय ही, हिमगिरि ही भुजपात।
बर्णत देवन चरण तें, सिर तें मानुष गात ॥ ११ ॥

भावार्थ—कविलोग चंदन का अस्तित्व मलयागिरि पर और भोजपत्र का हिमालय पर ही कहता है (चाहे ये वस्तुएं अन्यत्र भी मिलें) इसी प्रकार कवि देवों के रूप का वर्णन चरणों से आरंभ करता है, और मानव रूप का वर्णन सिर से। यही कवि नियम है।

मूल—अति लज्जा युत कुल वधू गणिका गानि निर्लज्ज।
कुलटानि सों कोविद कहत, अंग अलज्ज सलज्ज ॥ १२॥

भावार्थ—कुलांगना को लज्जावती, गणिका को निर्लज्जा वर्णन करेंगे, और कुलटा का वर्णन प्रसंगानुसार सलज्ज और निर्लज्ज दूनों प्रकार से करेंगे। यही कवि नियम है।

मूल—बरनत नारी नरत ते, लाज चौगुनी चित्त।
भूख द्विगुन साहस छगुन, काम आठगुन मित्त ॥१३॥
कोकिल को कल बोलिवो, बरनत है मधुमास।
बर्षाही हरषित कहैं, केकी केशव दास ॥ १४ ॥
दनुजन सों दिति सुतन सों, असुरै कहत वखानि।
ईश शीश शशि बृद्धि की, बरनत बालक बानि ॥ १५ ॥

महादेव के मस्तक पर चंद्र को (सनातनी होने पर भी) 'बालविधु' ही कहैंगे ।

सहज सिंगारत सुंदरी, जदपि सिंगार अपार ।
तदपि बखानत सकल कबि, सोरहई सिंगार ॥ १६ ॥

(सोलह सिंगारों के नाम)

मूल—प्रथम सकल सुचि, मज्जन, अमलबास,
जावक, सुदेश केशपासनि सुधारिबो ।
अंगराग, भूषण विविध, मुख बास राग,
कज्जल कलित, लोल लोचन निहारिबो ।
बोलनि हँसनि चित चातुरी चलनि चारु,
पल पल प्रति पतिव्रत परिपारिबो ।
केशोदास सबिलास करहु कुँवरि राधे,
यहि विधि सोरह सिंगारन सिंगारिबो ॥ १७ ॥

(व्याख्या)—(१) सकलसुचि = शौच, दंतधावन, उबटनादि करना । (२)मज्जन = स्नान । (३)अमल बास = स्वच्छ बस्त्र धारण करना । (४) जावक = पैरों में महावर भराना । (५) केशपाश सुधारिबो = बाल सँवारना । अंगराग = अंगों में विविधि रंगों से कुछ चिन्ह बनाना । इसके अंतर्गत पांच सिंगार हैं (६) मांग में सिंदूर भरना (७) भाल पर खौर (८) गाल और चिबुक पर तिल बनाना (९) उरस्थल पर केशर मलना (१०) हाथों में मेंहदी लगाना । भूषण = ज़ेवर । ये दो प्रकार के होते हैं । (११) पुष्पभूषण (१२) सुबर्ण भूषण । (१३)

मुख वास = एला लवंगादि चर्वन। मुखराग—मुँह को रँगना। यह दो प्रकार से होता है (१४) दाँतों को मिस्सी के रंगना। (१५) होठों को तांबूल से रँगना (१६) नेत्रों में कज्जल देना। (नोट)—बोलनि, चलनि, हँसनि, हेरनि इत्यादि सिंगार नहीं हैं। ये हाव हैं जो सिंगार को चोखा कर देते हैं।

भावार्थ—सरलही

(विवेचन)—इनसे अधिक और भी अनेक प्रकार के सिंगार हो सकते हैं तो भी कवि लोग नियम बद्ध होकर इन सोलह का ही वर्णन करते हैं।

मूल—महा पुरुष को प्रगट ही, बरणत बृषभ समान।
दीप, थंभ, गिरि, गज, कलस, सागर, सिंह प्रमान।१८।

भावार्थ—किसी महा पुरुष को बृषभ, दीपक, स्तंभ, गिरि, गज, कलस, (मणि, मुकुट, अवतंस और) सागर तथा सिंह करके वर्णन करने का कबि नियम है, जैसे :—

मूल—गुणमणि बैरागर, धीरज को सागर,
उजागर धवल धरि धर्मधुर धाये जू।
खलतरु तोरिबे को राजै गजराज सम,
अरि गजराजन को सिंह सम गाये जू।
बामिन को बामदेव, कामिनि को कामदेव,
रण जयथंभ रामदेव मन भाये जू।
काशीश कुल कलस, जंबूदीप दीप केशो-
दास को कलपतरु इन्द्रजीत आये जू॥१६॥

शब्दार्थ—बैरागर = खानि । धवल = बैल । बामी = जो अपने धर्मपर न चले, पापी । बामदेव = महादेव ।

भावार्थ—सरल ही है ।

(बिवेचन)—इस छंद में उल्लेख अलंकार द्वारा राजा इन्द्रजीत को खानि, सागर, बैल, गज, सिंह, महादेव, काम, थंभ कलस, दीपक और कल्पवृक्ष कहा गया है । यह भी कवि नियम है ।

मूल—वृषभ कंध स्वर मेघ सम, भुज धुज अहि परमान ।
उर सम शिला कपाट अँग, और तियान समान ॥२०॥

(बिवेचन)—पुरुषों के कंधा वृषभकंध सम, स्वर मेघस्वर (वा सागर, सिंह और दुंदुभीस्वर) सम, भुज ध्वजा वा सर्प सम, उर शिला वा कपाट सम कहना कवि नियम है, और अन्य अंगों का स्त्रियों के अंगों के समान ही वर्णन होता है । यह भी कबि नियम है—जैसे :—

मूल—मेघ ज्यों गंभीर वाणी सुनत सखा शिखीन,
सुख, अरि हृदय जवासे ज्यों जरत हैं ।
जाके भुजदंड भुवलोक के अभय ध्वज,
देखि देखि दुर्जन भुजंग ज्यों डरत हैं ।
तोरिबे को गढ़तरु होत हैं शिला सरूप,
राखिबे को द्वारन किंवारे ज्यों अरत हैं ।
भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै युग युग,
केशोदास जाके राज राज सो करत है ॥ २१ ॥

भावार्थ—मेघ की सी गंभीर वाणी सुनकर सखारूपी मोर सुखी होते हैं और शत्रुहृदयरूपी जवासे जलते हैं। जिसके भुजदंड इस भूमि के लिये अभयप्रदा ध्वजा हैं, और जिन भुजारूपी सर्पों को देख कर दुर्जन लोग डरते हैं। वेही भुजा गढ़रूपी वृक्षों को तोड़ने के लिये शिलावत होते हैं, और गढ़ों के द्वारों की रक्षा के लिये जो भुजा किवाड़े समान अड़ जाते हैं। जिस इन्द्रजीत की ऐसी बाहें हैं, वह इस पृथ्वी का इन्द्र युग युग राज करै जिसके राज में केशवदास राजा सा बना आनंद करता है।

(विवेचन)—इस छंद में इन्द्रजीत के स्वर मेघस्वर सम, भुजाओं को ध्वजा और सर्प सम, तथा उरस्थल को शिला और कपाट सम वर्णन किया है। ऐसा ही कवि नियम है। इसी को निमयबद्ध वर्णन करना कहते हैं।

चौथा प्रभाव समाप्त

पांचवाँ प्रभाव

(काव्यालंकार वर्णन)

मूल—जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
भूषण विनु न विराजई, कविता बनिता मित्त ॥

शब्दार्थ—सुजाति = (१) अच्छी जाति वाली (२) अच्छे वंश वाली ।
सुलक्षणी = (१) सुन्दर लक्षणावाली (२) अच्छे लक्षण वाली ।
सुबरन (१) सुन्दर अक्षर वाली (२) सुन्दर रंग वाली ।
सरस = (१) जिसमें रस हो (२) जिसमें प्रेम हो ।
सुवृत्त = (१) अच्छे छंद वाली (२) सुभाषिणी ।

नोट—कविता की तीन जातियाँ हैं—ध्वनि, गुणीभूत व्यंग और अवर वा चित्र, जिसमें ध्वनि उत्तम, गुणीभूत्त व्यंग मध्यम, और अवर अधम मानी जाती है । इस दोहे का अर्थ कविता और वनिता दो पक्ष में लगेगा ।

भावार्थ—(कविता पक्ष का)—यद्यपि कविता ध्वनिमय हो, सुस्पष्ट लक्षणायुक्त हो, रसानुकूल सुन्दरवर्ण भी उसमें हों, रस की पूर्ण सामग्री भी उसमें हो, तथा सुन्दर छंद में कही गई हो, पर बिना अलंकार के शोभित नहीं होती ।

(वनिता पक्ष का) यद्यपि बनिता अच्छे वंश की हो, सामुद्रिक के अनुसार शुभ लक्षणों वाली हो, शरीर का रंग भी अच्छा हो, (काली कलूटी न हो) रसीली हो, तथा मधुर भाषिणी भी हो परंतु हे मित्र ! भूषणादि रहित होने से वह भी शोभित नहीं होती ।

शब्दार्थ—हरिहय = इन्द्र। जोन्ह = चाँदनी। जरा = जरावस्था। मंदार = कल्पवृक्ष। हरगिरि = कैलास। सौध = चूना से पोता महल। घनसार = कपूर।

भावार्थ—ऊपर लिखी वस्तुओं का रंग कविलोग सफेद मानते हैं।

मूल—बल, बक, हीरा, केवरो, कौड़ी, करका, कांस।
कुंद, कांचली, कमल, हिम, सिकता, भस्म, कपास॥ ६॥

शब्दार्थ—बल = बलदेव जी। करका = ओला, हिमोपल कमल = पुंडरीक। सिकता = बालू।

मूल—खाँड़, हाड़, निर्झर, चँवर, चँदन, हंस, मुरार।
छत्र, सत्ययुग, दूध, दधि, संख, सिंह, उड़मार॥७॥

शब्दार्थ—खाँड़ = शक्कर। निर्झर = झरना। मुरार = कमल की जड़, भसीड़। उड़मार = (उड़माल) तारागण।

मूल—शेष, सुक्रति, शुचि, सत्वगुण, संतन के मन, हास।
सीप, चून, भोंड़र, फटिक, खटिका, फेन, प्रकास॥८॥

शब्दार्थ—सुक्रति = पुण्य। शुचि = पवित्रता। भोंड़र = अबरक। फटिक = स्फटिक या फिटकरी। खटिका = खरिया, छुही।

मूल—शुक्र, सुदर्शन, सुरसरित, वारण बाजि समेत।
नारद, पारद, अमलजल, शारदादि सब सेत॥ ६

शब्दार्थ—शुक्र = शुक्रग्रह। सुदर्शन = सुदर्शन चक्र। सुरसरित = गंगा। ('सुर' शब्द का अन्वय वारण और बाजि के साथ भी जानो) सुरवारण = ऐरावत। सुरबाजि = उच्चैः श्रवा। पारद = पारा।

(नोट)—ये ऊपर लिखी वस्तुएं सफेद रंग की मानी गई हैं। अब आगे कविता द्वारा कुछ और सफेद वस्तुओं के नाम बताते हैं।

मूल—कीन्हे छत्र छितिपति, केशोदास गणपति,
दसन, बसन बसुमति कन्यौ चारु है।
बिधि कीन्हो आसन शरासन असमसर,
आसन को कीन्हो पाकशासन तुषारु है॥
हरि करी सेज हरि प्रिया करो नाक मोती,
हर कन्यौ तिलक हराहू कियो हारु है।
राजा दशरथसुत सुनौ राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को सिगाँरु है॥ १०॥

शब्दार्थ—वसुमती = पृथ्वी। असमसर = काम। पाकशासन = इन्द्र। तुषार = सफेद घोड़ा (उच्चैःश्रवा)। हरिप्रिया = लक्ष्मी। हरा = पार्वती।

भावार्थ—हे राम जी आप की कीर्ति सारे संसार का सिंगार (भूषण) हो रही है, क्योंकि राजाओं ने उसी से अपने अपने छत्र बनाये हैं, गणेश ने उसे ही अपना दांत बनाया है, पृथ्वी ने उसे अपना वस्त्र बनाया है (पृथ्वी 'सागरांबरा' कहलाती है), ब्रह्मा ने उसे अपना आसन (पुंडरीक) बनाया है, काम ने उसी से अपना धनुष बनाया है, इन्द्र ने चढ़ने के लिए उसे अपना घोड़ा बनाया है, नारायण ने उसे अपनी सेज (शेषनाग) किया है और लक्ष्मी ने उसी कीर्ति को अपने नाक का मोती बनाया है, शंकर ने उसे अपना तिलक (चंद्रमा)

और पार्वती ने उसे ही अपना हार (मुक्ताहार) बना रखा है।
(विवेचन)—कीर्ति वा यश का रंग सफेद न माना जाता तो ऐसी मनोहर कविता न बन सकती। पहले कही हुई स्वेत वस्तुओं के अलावा चार स्वेत वस्तुओं के नाम प्रसंगवश और अधिक मालूम हो गये-१-गणपति दसन, (२) सागर (३) काम का धनुष (४) मोती।

(पुनः)

मूल--देहदुति हलधर कीन्हीं, निशिकर कर,
जगकर वाणी बर, बिमल बिचारु है।
मुनिगण मन मानि, द्विजन जनेऊ जानि,
संख संखपानि पानि सुखद अपारु है॥
केशोदास सो बिलासि बिलसै बिलासिनीन,
सुखमुख मृदुहास, उदय उदारु है।
राजा दसरथ सुत सुनो राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को सिंगारु है॥११॥

शब्दार्थ—जगकर = ब्रह्मा। विलास = आनन्दमय क्रीड़ा। विलासिनी = स्त्री। सुखमुख = सहज,स्वाभाविक। उदय = बढ़ती। उदार = दानीजन।

भावार्थ—पुनः उसी यश का वर्णन करते हैं कि बलदेव जी ने उसी यश को अपने तन की दुति बनालिया है, चन्द्रमा ने उसे किरण रूप से धारण किया है, ब्रह्मा जी ने वाणी और विमल विचार रूप से, मुनियों ने मन रूप से, ब्राह्मणों ने जनेऊ रूप से धारण किया है, और नारायण के हाथ में वही शंख हो

कर अपार सुख देता है। स्त्रियों में वही यश विलास होकर और सहज मृदु हास होकर शोभित होता है, और उदार जनों की बढ़ती भी वही यश ही है। अतः हे राम जी तुम्हारा यश सारे संसार का सिंगार हो रहा है।

(विवेचन)—इसमें भी चार नई सफेद वस्तुओं के नाम मालूम हुए।

१—बिमल विचार। २-जनेऊ। ३- स्त्रियों की आनन्द क्रीड़ा। और ४-उदार जन का उदय।

मूल-नारायण कीन्ही मानि उर अवदात गानि,
कमला की बाणी भनि,शोभा शुभ सारु है।
केशव सुरभि केश, शारदा सुदेश बेश,
नारद को उपदेश, विशद विचारु है॥
शौनक ऋषी विशेषि शीरष शिखानि लेखि,
गंगा की तरंग देखि, विमल बिहारु है।
राजा दशरथ सुत सुनौ राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को सिंगारु है॥ १२॥

शब्दार्थ—अवदात=चौड़ा, उदार। सुरभि=चमरी गाय। शीरष=(शीर्ष) सिर। शिखा=चोटी।

भावार्थ—हे राम जी ! तुम्हारा सुयश सारे संसार का सिंगार होरहा है। श्रीनारायण ने उसे ही अपने उदार हृदय की मणि बनाया है, कमला की बाणी और शोभा तथा शुभ का सार पदार्थ वही यश है। केशव कहते हैं कि चमरी गाय ने अपने बाल (जिनसे चँवर बनती है) शारदा ने अपना सुन्दर भेस,

उसी से बनाया है। नारद के उपदेश और उनके उत्तम बिचार उसी यश से बने हैं। शौनकादि ऋषियों की चोटियां और गंगा की लहरें, और (जीवों का) अदूषित बिहार (पाप रहित विलास) ये सब उसी यश से बने हैं।

(विवेचन)—इसमें आठ नई सफेद वस्तुओं के नाम ज्ञात हुए:—
१—नारायण का वक्षस्थल। १—लक्ष्मी की वाणी। ३—शोभा। ४—शुभता। ५—नारद का उपदेश और ६—उनके विचार। ७—ऋषियों की चोटियां। ८—निष्पाप बिहार, इत्यादि।

(नोट)—जरावस्था का रंग सफेद मानकर अब केशव जी उसका सुन्दर मनोरंजक वर्णन यों करते हैं:—

(जरावर्णन)

मूल—विलोकि सिरोरुह सेत समेत,
तनूरुह केशव यों गुण गायो।
उठे किधौं आयु की औधि के अंकुर,
शूल कि सुःख समूल नसायो॥
लिख्यौ किधौं रूप के पानी पराजय,
रूप को भूप, कुरूप लिखायो।
जरा सरपंजर जीव जर्‍यौ, कि
जुरा जर-कंबर सो पहिरायो॥ १३॥

शब्दार्थ—सिरोरुह=सिर के बाल। तनुरुह=शरीर पर के रोएँ। आयु की औधि=जीवन की अवधि अर्थात् मृत्यु। रूपे के पानी=चाँदी के पानी से। रूप को भूप=यौवन। कुरूप=जरावस्था की कुरूपता। जर्‍यौ=जड़ दिया है। जुरा=(ज्वरा) मृत्युकाल। जर-कंबर=जरी का दुशाला।

भावार्थ—जरावस्था में शरीर के रोयों सहित सिर के बालों को सफेद देखकर केशव ने इस प्रकार उसके गुणों का वर्णन किया कि ये सिर के बाल और रोयें हैं, या मृत्युकाल (जो अब अति निकट है) के अंकुर हैं, या ये शारीरिक शूल हैं जिन्हों ने समूल सुख को नष्ट कर दिया है। या जरावस्था की कुरूपता ने यौवनावस्था से चाँदी के पानी से पराजय पत्र लिखाया है। ये रोयें उसी के अक्षर हैं, या जरा ने जीव को शरपंजर से घेर दिया है, या मृत्यु ने जीव को ज़रदोज़ी का दुशाला ओढ़ाया है।

मूल—अभिराम, सचिक्कन स्याम, सुगंध के धाम हुते जे सुभायक के
प्रतिकूल भये दृगशूल सबै, किधौं शाल सिंगार के घायक के॥
निज दूत अभूत जरा के किधौ अफताली जुरा जनु लायक के।
सितकेश हिये यहि बेश लसे जनु शायक अंतक नायक के॥ १४॥

शब्दार्थ—अभिराम = मनोरञ्जक। हुते = थे। सुभायक के = स्वाभाविक ही, सहज ही। शाल = सरहथ नामक हथियार जिससे मछली का शिकार किया जाता है। इसका रूप बरछी के समान होता है, पर भालें तीन या चार होती हैं। मछली को इससे बिद्ध करते हैं। सिंगार के घायक = शोभा नाशक कोई व्यक्ति। निज = खास। अभूत = अद्भुत। अफताली = वह अफसर जो किसी बड़े राजा की यात्रा में पहले से आगे के मुकामोंमें जाकर उस राजा के ठहरने वा आराम का प्रबंध करता है। जुरा = (ज्वरा) मृत्यु। लायक के = बड़ी योग्यता वाला, बड़ा क़ाबिल। अंतकनायक = यमराज।

भावार्थ—जो बाल सहज ही बड़े सुन्दर, चिकने, काले और सुगंध के धाम थे अब ये उलटे नेत्रों को दुख देने वाले हो गये (पहले उन्हें देख कर नेत्र सुखी होते थे)। वे बाल हैं या सिंगार को नाश करने वाले किसी शिकारी के सरहथ(शाल) हैं अथवा जरा के अद्भुत दूत है, या मृत्यु के लायक पेशगो अफसर हैं। वक्षस्थल पर के सफेद बाल ऐसे लसते हैं मानो यमराज के वाण हैं।

मूल—लसैं सितलोम सरीर सबै कि जरा जस रूपे के पानी लिखायो।
सुरूप को देश उदास की कीलनि कीलित कै कि कुरूप नसायो ॥
जरैं किधौं केशव ब्याधिन की किधौं आधि केअंकुरअंतनपायो ।
जरा सर पंजर जीव जऱ्यो कि जुरा जरकंबर सो पहिरायो॥ १५॥

शब्दार्थ—उदास = उजाड़ना (लोहे की कीलें मंत्रित करके जहां तहां गाँव में गाड देने से वह गाँव उजड़ जाता है। इस प्रयोग को तंत्र शास्त्र में 'कालन' कहते हैं)। कीलित कै = कीलें गाड़कर। आधि = मानसिक व्यथायें (यथा चिंता, शोक, पश्चात्ताप इत्यादि)। अंत न पायो = जो असंख्य हैं।

भावार्थ—ये शरीर भर में सफेद बाल है कि जरावस्था ने अपना सुयश चांदी की स्याही से लिखाया है उसके अक्षर हैं। या कुरूप ने उद्घासन मंत्र से कीलित कीलें गाड़कर स्वरूप के देश को उजाड़ कर नष्ट कर दिया है। या ये व्याधियों की जड़ें हैं, अथवा मानसिक व्यथाओं के असंख्य अंकुर हैं। या जरा ने जीव को शरपंजर करके घेर रखा है या मृत्यु ने जीव को ज़रदोज़ी दुशाला ओढ़ाया है।

(नोट)—यहां तक सफेद वस्तुओं का ज्ञान कराया गया जिनके

द्वारा काव्यमें अनेक सुन्दर उक्तियां कही जाती हैं। अब पीत वस्तुओं का ज्ञान कराते हैं।

२—(पीत वर्णन)

मूल—हरिबाहन, बिधि, हरजटा, हरा, हरद, हरताल।
चंपक, दीपक, वीररस, सुरगुरु, मधु, सुरपाल॥ १६॥

शब्दार्थ—हरिवाहन = गरुड़। हरा = पार्वती। हरद = हल्दी। सुरगुरु = बृहस्पति। मधु = महुवापुष्प, वा बसंत ऋतु।

मूल—सुरगिरि, भू, गोरोचना, गंधक, गोधनमूत।
चक्रवाक, मनशिल, सदा, द्वापर, वानरपूत॥ १७॥

शब्दार्थ—सुरगिरि = सुमेरु पर्वत। गोधनमूत = गोमूत्र। द्वापर = द्वापरयुग। बानरपूत = बानर का बच्चा।

मूल—कमलकोश, केशवबसन, केशर, कनक, सभाग।
सारोमुख, चपला, दिवस, पीतर, पीत, पराग॥ १८॥

शब्दार्थ—कमलकोश = कमल का बीज कोश, केशवबसन = पीताम्बर। सभाग = (संशोधन में है) हे सभाग। सारोमुख = मैना का मुख। पराग = पुष्परज।

नोट—ये ऊपर गिनाई हुई चीजें पीली मानी जाती हैं। चूंकि 'पार्वती' का रंग पीला माना है, अतः नीचे लिखी कविता में इसी विचार ने कैसी सुन्दर बात पैदा कर दी है।

मूल-मंगल ही जु करी रजनी विधि, याही ते मंगली नाम धन्योहै।
दीपति दामिनि देह सँवारि, उड़ाय दई धन जाय बन्यो है॥
रोचन को रचि केतकि चंपक फूल में अंग सुवास भन्यो है।
गौरी गोराई के मैलहि लैकरि हाटक तें करहाट कन्यो है॥१६॥

शब्दार्थ—मंगल = (पार्वती का एक नाम 'मंगला' भी है अतः) मंगलकारी गुण, मांगल्यगुण। रजनी, मंगली = हलदी। दीपति = दीप्ति, कांति। घन जाय बरो है = जिस से बादल जला जाता है। रोचन = गोरोचन। गौरी = पार्वती। हाटक = सोना। करहाट = कमल पुष्प के बीच की छतरी जिसमें कमल बीज पैदा होते हैं। कमल का बीज कोश।

भावार्थ—पार्वती जी के मांगल्यगुण से ब्रह्मा ने हलदी बनाई, ईसी से उसका नाम 'मंगली' रखाया। उनकी कांति से दामिनी बनाई, पर उसे चंचला समझ कर आकाश की ओर उड़ा दिया, उसी से अब तक बादल जले जाते हैं। उनकी अंगवास से गोरोचन बनाकर कुछ सुगंध केतकी और चंपक में भी भर दी है। तदनंतर गौरी जी की गोराई का मैल लेकर सोने से लगाकर करहाट तक जितनी अन्य पीली वस्तुएं हैं बनाई हैं।

३—(कारे वर्णन)

मूल—विंध्य, वृक्ष, आकाश, असि, अर्जुन, खंजन, सांप।
नीलकंठ को कंठ, शनि, ब्यास, बिसासी, पाप ॥ २० ॥

शब्दार्थ—विंध्य = विंध्याचल पर्वत। असि = तलवार। अर्जुन = पांडव अर्जुन। नीलकंठ = (१) महादेव, (२) मोर। ब्यास = व्यासमुनि। बिसासी = विश्वासघाती।

मूल—राकस, अगर, लँगूरमुख, राहु, छांह, मद, रोर।
रामचंद्र, घन, द्रौपदी, सिंधु, असुर, तम, चोर ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—मद = नशा अर्थात् मादकता (मादक वस्तु नहीं)। रोर = दरिद्र। सिंधु = समुद्र की मूर्ति (जल नहीं)

मूल—जंबू, जमुना, तैल, तिल, खलमन, सरसिज, चीर।
भील, करी, बन, नरक, मसि, मृगमद, कज्जलनीर ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—जंबू = जामुन फल। सरसिज = नीलकमल। चीर = चीड़ नामक वस्त्र जो नील में रंगा होता है जिसे नीच जाति की स्त्रियाँ पहनती हैं। करी = (करि) हाथी। मसि = स्याही, अथवा मूछों का नवागम जिसे 'मसिभीजना' कहते है। मृगमद = कस्तूरी। कज्जलनीर = कजरारी आँख का आँसू।

मूल—मधुप, निशा, सिंगाररस, काली, कृत्या, कोल।
अपयश, रीछ, कलंक, कलि, लोचन तारे लोल ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—काली = कालिकादेवी। कृत्या = मंत्राभिचार से मारण के लिये जो शक्ति उत्पन्न होती है (जिसे आजकल 'मूठ' कहते हैं) कोल = (१) सूअर (२) एक जाति विशेष जो जंगली है। कलि = कलियुग। लोचनतारे = आँख की पुतली।

मूल—मारग अगिनि, किसान, नर, लोभ, छोभ, दुख, मोह।
बिरह, यशोदा, गोपिका, कोकिल, महिषी लोह ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—मारग अगिनि = जिस रास्ते से अग्नि चलती है बुझ जाने पर वह काला हो जाता है। किसान = खेतिहर, काश्तकार [किसान की स्त्री नहीं]। छोभ = क्रोध। यशोदा = नंद पत्नी। गोपिका = ग्वालिन (गोप नहीं)। महिषी = भैंस।

मूल—कांच, कीच, कच, काम, मल, केकी, काक, कुरूप।
कलह, छुद्र, छल आदि दै कारे कृष्ण सरूप ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—कच = बाल। कुरूप = कुत्सितरूप। आदि दै = इस के कहने का तात्पर्य यह है कि कलह, छल इत्यादि के समान

जो अन्य बुरे मानसिक भाव हैं, उनका भी काला ही रंग समझ लो। कृष्णसरूप = कृष्ण जी का रूप भी काला जानो
नोट—ऊपर गिनाई वस्तुओं का रंग काला है। इन्हीं में से कुछ काली वस्तुओं का सहारा लेकर केशव जी नीचे लिखी सुन्दर उक्तियाँ कहते हैं।

मूल—बैरिन के बहु भांति देखतही लागि जाति,
कालिमा कमलमुख सब जग जानी है।
जतन अनेक करि यदपि जनम भरि,
धोवत हू छूटति न केशव बखानी है।
निज दल जागै जोति, परदल दूनी होति,
अचला चलति यह अकह कहानी है।
पूरन प्रताप दीप अंजन की राजै रेख,
राजै श्री रामचन्द्र पानि न कृपानी है ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—कालिमा = कारिख। परदल दूनी होति = शत्रुदल में उसकी जोति (रणभूमि में पड़े हुए रत्नाभूषणों के प्रतिबिंब से) दूनी होती है। अचला चलति = समस्त पृथ्वी निवासी शत्रु विचलित हो जाते हैं। अकह = अकथनीय। पानि = हाथ। कृपानी = (कृपाण) तलवार।

भावार्थ—समस्त जग में यह बात प्रसिद्ध है कि राम जी की तलवार ऐसी है कि उसे देखते ही शत्रुओं के मुख कमलों में ऐसी कारिख लग जाती है कि जीवन भर अनेक यत्नों से धोने पर भी नहीं छूटती। अपने दल में जितनी उसकी जोति जगमगाती है उससे दुगुनी शत्रु दल में हो जाती है। उसके भय से समस्त पृथ्वी निवासी शत्रु विचलित हो जाते हैं,

उसके प्रताप की कथा अकथनीय है। राम जी के हाथ में जो तलवार है वह तलवार नहीं वरन् पूर्ण प्रताप रूपी दीपक की कज्जल रेखा है।

नोट—तलवार का रंग काला माना गया है, इसी से ऐसी उक्ति बन पड़ी।

(पुनः)

मूल—हंसनि के अवतंस रचे रंच कींच करि,
सुधा सों सुधारे मठ कांच के कलस सों।
गंगा जू के अंग संग यमुना तरंग बल-
देव को बदन रच्यो वारुणी के रस सों॥
केशव कपाली कंठकूल कालकूट जैसे,
अमल कमल आलि सोहै ससि सस सों।
राजा रामचद्र जू के त्रास बस भारे भूप,
भूमि छोड़ि भागे फिरैं ऐसै अपजस सों॥ २७॥

शब्दार्थ—अवतंस = शिरोभूषण, पर यहां पर सिर ही का अर्थ है। रचे = रँगे है। सुधासों सुधारे मठ = चूने से पुते हुए' अति उज्वल। रच्यो = रँगा हुआ। वारुणी के रस = नशा। कंठकूल = कंठ में। अमल कमल = पुंडरीक। सोहै = (व्यंग से) अशोभित होता है। सस = मृग (चन्द्र कलंक)। ऐसै = व्यर्थ, बिना युद्ध किये ही। भूमि = अपनी राज्यभूमि, निज निज देश।

भावार्थ—राजा रामचन्द्र जी की त्रास से बड़े बड़े राजा निज देश तजकर भागे फिरते हैं उनका यह भागना अकारण है, लड़ाई नहीं हुई, केवल उन्होंने यह सोच लिया है कि हम राम के सामने ठहरेंगे नहीं, रण से भागना ही पड़ेगा,

तब हमारा अपयश होगा और हम लोग अपयश से वैसे ही कलंकित होंगे जैसे सिर पर कीचड़ लगाये हुए हंस, वा कांच के कलस वाला स्वच्छ सफेद देवालय, वा यमुना तरंग युक्त गंगा, वा वारुणी के नशे से युक्त बलदेव जी का चेहरा, वा विष युक्त शंकर का गला, वा काले भौंरे से युक्त सफेद कमल वा मृगांक से चन्द्रमा।

(नोट)—कीच, कांच, यमुना, नशा, विष भौंर और मृगांक को काला मानने से यह मनोहर उक्ति कैसी चमत्कारिक हो गई है।

४—(अरुण वर्णन।)

मूल—इन्द्रगोप, खद्योत, कुज, केसरि, कुसुम बिशेषि।
मादिरा, जगमुख, बाल रबि, ताँबो, तक्षक लाखि॥२८॥

शब्दार्थ—इंद्रगोप = बीरबहूटी। कुज = मंगलग्रह। कुसुम विशेष = कोई खास लाल फूल। गजमुख = गणेश। तक्षक = तक्षक नामक सर्प।

मूल—रसना, अधर, द्दगंत, पल, कुक्कुटशिखा समान।
माणिक, सारससीस, शुक, बानर बदन प्रमान॥ २९॥

शब्दार्थ—द्दगंत = आखों के कोने। पल = मांस। शुक बानर बदन = शुक बदन और बानर बदन (मुख)।

मूल—कोकिल, चाख, चकोर, पिक, पारावत नख नैन।
चुंच चरण कलहंस के, पकी कुंदुरू ऐन॥३०॥

शब्दार्थ—चाख = नीलकंठ। पिक = (पिकांग) पपीहा। पारावत = कबूतर (इन पक्षियों के नख और नैन)। चंच = चोंच।

मूल—जपा कुसुम, दाड़िम कुसुम, किंशुक, कंज, अशोक।
पावक, पल्लव, बीटिका, रंग रुचिर सब लोक ॥३१॥

शब्दार्थ—जपा = गुड़हर। किंशुक = पलास पुष्प। बीटिका = बीड़ी (पान की)

मूल—रातोचंदन, रौद्ररस, क्षत्रिय धर्म, मँजीठ।
अरुण महावर रुधिर, नख, गेरू संध्या, ईठ ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—अरुण = सूर्य के सारथी। ईठ = (संबोधन में) हे मित्र।

(नोट) ये ऊपर गिनाई हुई वस्तुएं लाल रंग की मानी गई हैं।

मूल—फूले पलास बिलासथली बहु,
केशवदास हुलासहु न थोरे।
शेष अशेष मुखानल की जनु,
ज्वाल विशाल चली दिव ओरे॥
किंशुकश्री शुकतुंडन की रुचि राचे रसातल में चित चोरे।
चुंचनि चापि चहूं दिसि डोलत चारु चकोर अँगारन भोरे। ३३

शब्दार्थ—अशेश = सब! दिव = (द्युः) आकाश। किंशुकश्री = पलास के पुष्प। रसातल = पृथ्वीतल। चुंच = चोंच। भोरे = धोखे में।

भावार्थ—बिलासस्थल में (उस बन में जहां बिलासस्थान है) पलास खूब फूले हैं जिन्हे देख कर बहुत हुलास पैदा होता है। और ऐसा जान पड़ता है मानो शेष जी के समस्त मुखों की विशाल ज्वालाएँ आकाश की ओर जा रही हैं। पलासपुष्प शुकचोंच के समान रंगदार हैं। और इस पृथ्वीतल में सब

के चित्त को चोराते हैं। और उनको अंगार समझ कर चकोर गण उन्हें चोंच में दबा कर चारो ओर घूमते फिरते हैं।

५—(धूम्र वर्णन)

मूल—काककंठ, खर, मूषिका, गृहगोधा, भनि भूरि।
करभ, कपोतनि आदि दै धूम, धूमरी, धूरि ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—काककंठ=कौवे की गर्दन। खर=गदहा। मूषिका=मुसटी (छोटा मूस—चूहिया) गृहगोधा=छिपकली। करभ=ऊंट। धूमरी=धूमरी गाय। धूरि=धूल, रज।

मूल—राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जलहू थल छाई।
मानो प्रताप हुतासन धूम सु केशव दास अकास नऽमाई।
मेटि कै पंच प्रभूत किधौं विधि रेनुमयी नवरीति चलाई।
दुःख निवेदन को भवभार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई।

शब्दार्थ—हुतासन=(हुताशन) अग्नि। नऽमाई=न अमाई=अटती नहीं। पंच प्रभूत=पंचतत्व।

भावार्थ—श्रीराम की चतुरंगिनी सेना के पैरों से खुदकर धूरि उड़ी और जल तथा थल पर छा गई। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो रामजीके प्रतापाग्नि का धुवाँ है जो उठकर आकाशमें नहीं समा सकता। अथवा ऐसा जान पड़ता था कि मानो ब्रह्मा पांचो तत्वों को मिटा कर रेणुमय नवीन सृष्टि रचना चाहते हैं, या संसारभार का दुःख सुनाने के लिये पृथ्वी स्वयं सुरलोक को जा रही है।

६—(नील वर्णन)

मूल—दूब, बाँस, कुवलय, नलिन, अनिल, व्योम तृण बाल।
मरकतमणि, हयसूरके, नीलवर्ण सैवाल ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—कुवलय = नीलकमल। नलिन = नीली कुमुदनी। अनिल = वायु। बाल = केश। सैवाल = सिवार।

मूल—कंठ दुकूल सु ओर दुहूं उर यों उरमै बल के बलदाई।
केशव सूरज अंशुन मंडि मनो जमुना जल धार धँसाई।
शंकरशैल शिलातलमध्य किधौं शुक की अवली फिरि आई।
नारद बुद्धि विशारद हीय किधौं तुलसीदल माल सोहाई॥

शब्दार्थ—दुकूल = कपड़ा। उरमै = लटकता है। बल = बदेवजी। अंशु = किरण। मंडि = सुशोभित करके। शंकरशैल = कैलाश।

भावार्थ—जनों को बल देने वाले बलदेव जी के कंठ में पड़े हुए दुपट्टे के दोनों छोर हृदय पर इस तरह लटकते हैं, मानो सूर्य ने अपनी किरणों से युक्त करके जमुना जल की धारा को वहीं से उतारा है। अथवा कैलाश की चटान पर शुकों की पंक्ति बैठी है, या बुद्धिमान नारद के हृदय पर तुलसीदल की माला है।

नोट १—शुक और तुलसीदल को भी नील माना है।

नोट २—केशव ने हरित रंग की वस्तुएँ नहीं गनाईं। हरित को रंगही नहीं माना। हरित को नील में सम्मिलित कर लिया है। संस्कृत में भी ऐसा ही माना है। कारण मुझे ज्ञात नहीं।

७—(मिश्रित वर्णन)

(क)—श्वेत और कृष्ण)

(नोट)—मिश्रित कहने से यह तात्पर्य है कि कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके दो दो अर्थ हैं। भिन्न अर्थ लेने से भिन्न रंग का ज्ञान होगा, जैसे :—

मूल—सिंह कृष्ण हरि शब्द गनि, चंद विष्णु विधु देख।
अभ्रक धातु अकास पुनि पास स्याम सित लेख॥३८॥

भावार्थ—'हरि' शब्द के दो अर्थ हैं (१) सिंह(२) कृष्णजी । जब सिंह अर्थ हो तब सफेद रंग समझो, जब 'कृष्णजी' अर्थ लिया जाय तब श्याम रंग का बोध होगा । तथा बिधु' शब्द के दो अर्थ हैं—(१) चंद्र (२) विष्णु । चंद्र से श्वेत तथा विष्णु से श्याम का बोध होगा । 'अभ्रक' के दो अर्थ (१) धातुविशेष (२) आकाश–'धातु' अर्थ में श्वेत का, तथा 'आकाश' अर्थ में श्याम का बोधक है । 'पाख' शब्द दोनों का बोधक होगा अर्थात् कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष का, जैसे—

"गये पाखदिन सजत समाजू"

यहां "पाख का अर्थ कृष्णपक्ष वा शुक्ल पक्ष दोनों हो सकैगा ।

मूल—धन कपूर घन मेध अरु, नागराज गज शेष ।
पयोराशि कहि सिंधु सों, अरू छिति छीरहि लेख ॥३९॥

भावार्थ—'घन' का अर्थ (१) कपूर (२) मेघ । कपूर से श्वेत और मेघ से श्याम रंग का बोध होगा । 'नागराज' के दो अर्थ (१) गज (२) शेष । गज से श्याम, शेष से सफेद रंग का बोध होगा । 'पयोराशि' के दो अर्थ (१) सिंधु (२) दुग्धसमूह । सिंधु से श्याम, तथा दुग्ध से सफेद रंग का बोध होगा ।

मूल—राहु सिंह सिंहीज भनि, हरि बलभद्र अनंत ।
अर्जुन कहिये श्वेत सों, अरु पारथ बलवंत ॥ ४० ॥

भावार्थ—'सिंहीज' शब्द के दो अर्थ (१) राहु–इससे श्याम का बोध, (२) सिंह–इससे श्वेत रंग जानो । 'अनंत' के दो अर्थ (१) कृष्णजी–इससे श्यामका बोध (२) बलदेवजी–इस अर्थ से श्वेत का बोध । 'अर्जुन' शब्द का एक अर्थ श्वेत

है ही दूसरा अर्थ पार्थ (पांडव) का हो, तो श्याम रंग का बोध होगा।

मूल—हरिगज सुरगज समुझिये, फिर हरिगज गज जान।
कोकिल सों कलकंठ कहि, पुनि कलहस बखान ॥ ४१ ॥

भावार्थ—'हरिगज' शब्द के दो अर्थ—(१) इन्द्र का हाथी ऐरावत—इससे सफेद रंग का बोध, (२) वह गज जिसको विष्णु ने ग्राह से बचाया था, वह काला था, अतः इस अर्थ में श्याम रंग का बोध होगा। 'कलकंठ' के दो अर्थ (१) कोयल—श्यामरंग बोधक (२) कलहंस—श्वेतरंग का बोधक।

मूल —'कृष्णनदीवर' शब्द सों, गंगा सिंधु बखानि।
'नीरद' निकसे दांत सों, अरु जु नीर को दानि ॥ ४२ ॥

भावार्थ—'कृष्णनदीवर' के दो अर्थ (१) गंगा—स्वेतरंग बोधक (२)-समुद्र—श्याम रंग बोधक। 'नीरद' शब्द के दो अर्थ हैं (१) मुँह से निकला हुआ दाँत—इस अर्थ में श्वेत रंग का बोधक (२) मेघ—इससे श्याम रंग का बोध होगो।

(ख)—श्वेत और पीत।

मूल—शिव विरंचि सों 'शंभु' भनि, 'रजत' रजत अरु हेम।
स्वर्ण शरभ सों कहत हैं, अष्टापद करि नेम ॥ ४३ ॥

भावार्थ—'शंभु' शब्द के दो अर्थ—(१) शंकर—इस अर्थ में श्वेत बोधक (२) ब्रह्मा—इस अर्थ में पीत रंग जानो। 'रजत' चाँदी के अर्थ में श्वेत रंग, और सोने के अर्थ में पीत समझो। 'अष्टापद' शब्द के दो अर्थ—(१) सोना—इस

अर्थ में पीत रंग (२) शरभ नामक हिंसक जंतु—इस अर्थ में श्वेत रंग का बोधक है।

मूल—सोम स्वर्ण अरु चंद, कलधौत रजत अरु हेम।
तारकूट रूपो रुचिर, पीतर कहि करि प्रेम ॥ ४४ ॥

भावार्थ—'सोम' शब्द के दो अर्थ (१) सोना—सो पीला है (२) चद्रमा—सो सफेद है। 'कलधौत' के अर्थ (१) चाँदी-सो सपेद है, (२) सोना—सो पीत है। 'तारकूट' के अर्थ (१) चाँदी सपेद। (२) पीतल—पीला जानो।

(१)—श्वेत और लाल।

मूल—स्वेत वस्तु शुचि, आगिन शुचि, सूर सोम 'हरि' होय।
पुष्कर तीरथ सों कहैं, पंकज सों सब लोय ॥ ४५ ॥

भावार्थ—'शुचि' शब्द के दो अर्थ (१) स्वेत वस्तु—सफेद रंग का बोधक, (२) अग्नि—इस अर्थ में लाल रंग का बोध है। 'हरि' शब्द सूर्य और चंद्र दोनों का बोधक है अतः सूर्य अर्थ में लाल, चंद्र अर्थ में सफेद रंग का बोधक होगा। 'पुष्कर' शब्द के दो अर्थ (१) तीर्थजल—सफेद का बोधक है (२) लालकमल—लाल रंग का बोधक है।

मूल—'हंस' हंस रवि वरनिये, 'अर्क' फटिक रबि मान।
'अब्ज' शंख सरसिज दोऊ, 'कमल' कमल जल जान ॥४६॥

भावार्थ—'हंस' शब्द के दो अर्थ (१) हंस पक्षी—सफेद रंग का बोधक (२) सूर्य—लाल रंग का। 'अर्क' के दो अर्थ (१)—सूर्य—लाल रंग (२) स्फटिक—सपेत रंग का बोधक। 'अब्ज' का अर्थ (१) कमल—लाल रंग का (२)

शंख—सफेद रंग का। 'कमल' के दो अर्थ (१) कमलपुष्प—लाल का (२) जल—सफेद रंग का बोधक।

नोट—इसी प्रकार विद्वानों को और भी निज अनुभव और ज्ञान से समझना चाहिये।

पांचवां प्रभाव समाप्त

छठां प्रभाव

(वर्ण्यालंकार वर्णन)

वर्ण्य = जिनकी आकृति वा गुण लेकर कोई उक्ति कही जाय।

मूल—संपूरण, आवर्त्त, पुनि कुटिल, त्रिकोण सुवृत्त।
तीक्षण, गुरु, कोमल, कठिन, निश्चल, चंचल चित्त ॥१॥
सुखद, दुखद, अरु मंदगति, सीतल, तप्त, सुरूप।
क्रूरस्वर, सुस्वर, मधुर, अबल, बलिष्ठ अनूप ॥ २ ॥
सत्य, झूठ, मंडल बरनि, अगति, सदागति, दानि।
अष्टविंश विधि मैं कहे, वर्ण्य अनेक बखानि ॥ ३ ॥

(नोट)—'वर्ण्य' विषय इन अट्ठाईस के अलावा और भी हैं।

१—(संपूर्ण वर्णन)

मूल—इतने संपूरण सदा बरने केशव दास
अंबुज, आनन, आरसी, संतत प्रेम, प्रकास ॥ ४ ॥

भावार्थ—कमल, मुख, आईना, प्रेम और प्रकाश को संपूर्ण (अखंडित) मान कर ही कविगण उक्ति कहते हैं। जैसे नीचे लिखे छंद में प्रकाश, कमल और मुख का वर्णन संपूर्ण मान कर ही किया गया है।

मूल—हरि कर मंडन, सकल दुख खंडन,
मुकुर महिमंडल के कहत अखंड मति।

परम सुबास पुनि पियूष निवास, परि-
पूरन प्रकास केशोदास भू-अकाश गति ।
बदन मदन कैसे श्री जु के सदन जेहि,
सोदर सुभोदर दिनेश जू के मित्र अति ।
सीता जू की मुख सुखमा की उपमा को सखि,
कोमल न कमल, अमल न रजनिपति ॥ ५ ॥

(नोट)—कोई सखी सखी प्रति कहती है कि कमल कोमल न होने से तथा चांद्रमा कलंक रहित न होने से सीता जू के मुख की समता नहीं पा सकते, यद्यपि उनमें भी अनेक गुण हैं।

भावार्थ—'कमल' विष्णु के हाथ का भूषण है, उसके मुकुल (मुकुर) सर्व दुख खंडन हैं (देखने तथा सूंघने से आनन्द प्रद हैं) ऐसी बात पृथ्वी के सब बुद्धिमान लोग कहते हैं। उसमें बहुत उत्तम सुगंध है, और वह अमृतवत मकरंद का निवासस्थान है, और उसमें परिपूर्ण प्रफुल्लता भी होती है (खूब गहगहा के फूलता भी है) और पृथ्वी और आकाश में सर्वत्र पाया जाता है (आकाश गंगा में भी कमलों का होना माना जाता है) वह मनोहरता में काम का सा मुख, और संपत्ति में लक्ष्मी का घर ही है, उसका सगा भाई शुभ-दर (शंख) है, सूर्य का बड़ा मित्र है। इतने अच्छे गुण होने पर भी वह सीता के मुख की समता इस लिये नही पा सकता कि वह कोमलता में उसके समान नहीं है—(वास्तव में कमल की पंखुरियां कोमल नहीं होतीं)

'चंद्रमा' यद्यपि सूर्य किरणों से मंडित होता है, कलावान है (सकल) दुख खंडन (आनंद प्रद) है, सूरत में मुकुरवत (स्वच्छ) है, ऐसा विद्वान लोग कहते हैं। परम उच्च स्थान (आकाश) में उसका सुन्दर बासस्थान है, पुनः स्वयं अमृत का घर है, प्रकाश भी उसका पूर्ण है, पृथ्वी और आकाश में उसकी गति है (सर्वत्र उसका प्रकाश पहुंचता है) काम के मुख के समान सुंदर है, श्री (कांति) का घर ही है, शुभोदर अर्थात् शंख उसका सहोदर है, और सूर्य देव का बड़ा मित्र है, तथापि अकलंक न होने से सीता के मुख समान वह भी नही हो सकता।

२—(आवर्त वर्णन)

आवर्त=घूमने वाले, जो वृत्ताकार मार्ग पर घूम कर पुनः अपने स्थान पर आजाय।

मूल——ये आवर्त्त बखानिये, केशवदास सुजान।
चकरी, चक्र, अलात अरु, आतपत्र, खरसान ॥ ६ ॥

शव्दार्थ—चकरी=(१) चक्की (२) आतशबाजी की चकरी। चक्र=(१) सुदर्शनचक्र (२) कुम्हार का चाक। अलात= बनेठा। आतपत्र=छाता। खरसान=सिकलीगर वा कुँदेरे का सान वा मरसान।

मूल——दुहूँ रुख मुख मानौ पलट न जानी जात,
देखिकै अलातजात जाति होति मंद लाजि।
केशोदास कुशल कुलाल चक्र चक्रमन,
चातुरी चितै कै चारु आतुरी चलत भाजि।

चंद जू के चहूं कोद बेष परिबेषे कैसो,
देखतही रहिये न कहिये बचन साजि।
धाप छाँड़ि आपनिधि जानि दिसि दिसि रघु-
नाथ जू के छत्र तर भ्रमत भ्रमीन बाजि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—अलातजात = बनेठी से उत्पन्न। चक्रमन = भ्रमण, चक्कर। आतुरी = तेजी। कोद = ओर। परिवेश = ज्योतिमंडल सफेद वृत्त जो चांद के गिर्द कभी कभी दिखाई देता है। धाप = दौड़ का मैदान। भ्रमीन = भ्रमणकारी।

भावार्थ—श्री रामजी का भ्रमणकारी घोड़ा दौड़ छोड़ कर और हर ओर समुद्र का अस्तित्व जान कर रामजी के छत्र के नीचे ही घूमता है। वह ऐसा मालूम होता है मानो उसके दोनों ओर मुख है क्योंकि उसकी पलट (इतनी शीघ्रता से होती है कि) मालूम नहीं होता कि वह कब पलट गया। उसका भ्रमण देख कर, बनेठी से उत्पन्न चक्रवत् ज्योति लज्जित होकर मंद पड़ जाती है। केशव कहते हैं कि कुशल कुम्हार के चाक के भ्रमण की तेजी उसकी चातुरी देखकर भाग जाती है। चंद्रमा के चारो ओर परिवेष का सा घेरा देख कर देखते ही बनता है, कुछ कहते नहीं बनता।

२—(कुटिल वर्णन)

मूल—अलक, अलिक, भ्रू, कुंचिका, किंशुक, शुकमुख लेखि।
आहि, कटाक्ष, धनु, बीजुरी, कंकणभग्न विशेखि ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—अलिक = ललाट। कुंचिका = बाँस की टहनी। कंकणभग्न = चूड़ी का टुकड़ा।

बाल, चंद्रिका, बालशशि, हरि, नख, शूकर दंत।
कुद्दालादिक बरनिये, कपटी कुटिल अनंत॥ ६॥

शब्दार्थ—बाल = कुंचित केश। चंद्रिका = स्त्रियों का शिरोभूषण। हरि = घोड़ा। कुद्दाल = कुदारी। अनंत = और भी असंख्य चीज़ें हैं जिनकी गणना 'कुटिल' में हो सकती है।

मूल—भोरजगी वृषभानुसुता अलसी विलसी निशि कुंजबिहारी।
केशव पोंछति अचल ओरनि पीक की लीक गई मिटि कारी॥
बंक लगे कुच बीच नखच्छत देखि भई दृग दूनी लजारी।
मानौ वियोग बराह हन्यो युग शैल की संधिन इंगवै डारी॥१०

शब्दार्थ—अलसी = अलसाई हुई। ओर = छोर, किनारा। लजारी = लज्जित। संधि = मिलन स्थान। इंगवै = शूकरदंत, चीर।

भावार्थ—सरल ही है।

नोट—इसमें नख और शूकरदंत की कुटिलता का सहारा लेकर कैसी अच्छी उत्प्रेक्षा की गई। यही अलंकारता है।

विशेष—विदित हो कि अन्य टीकाकारों ने 'हरिनख' का अर्थ 'सिंहनख' लिया है, पर हमने हरि और नख दो शब्द माने हैं। कारण यह कि उदाहरण में नखच्छत का वर्णन है, और वह मानव नख कृत 'क्षत' है। कुटिलों की गणना में 'हरिनख' का अर्थ सिंहनख लें, तो मानव नख का नाम गणना में नहीं मिलता जिसकी कुटिलता पर उदाहरण की खूबी निर्भर है। हरि का अर्थ घोड़ा है ही। हमने यह अर्थ बिहारी कवि के कथनानुसार लिया है। बिहारी लिखते हैं:—"गढ़ रचना, बरुनी, अलक, चितवन, भौंह, कमान। आजु बँकाई ही बढ़े

तरुणि तुरंगम तान। बँकाई और कुटिलता एकार्थ हैं। तुरंगम घोड़ा है ही। सिंहनख टेढ़ा जरूर होता है, पर उसका समावेश 'अनंत' शब्द में होना चाहिये। सरदार कबि ने 'अनंत' का अर्थ शेषनाग लिया है। पर जब वहाँ 'अहि' शब्द मौजूद है तब 'शेष' की गणना अलग करना व्यर्थ है।

४—(त्रिकोण वर्णन)

मूल—शकट, सिंघारो, बज्र, हल, हरके नैन निहारि।
केशवदास त्रिकोण महि, पावककुंड विचारि ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—शकट = छकड़ा गाड़ी।

मूल—लोचन त्रिलोचन को केशव विलोकि विधि,
पावक के कुंड सी त्रिकोण कीन्ही धरणी।
सोधी है सुधारि पृथु परम पुनीत नृप,
करि करि पूरण दसहुँ दिस करणी ॥
ज्वाला सो जगत जगमगत सुभग मेरु,
जाकी ज्योति होति लोक लोक मन हरणी।
थिर चर जीव हबि होमियत युग युग,
होता होत काल न जुगुति जात बरणी ॥१२॥

शब्दार्थ—त्रिलोचन = महादेव। हवि = साकल्य। होता = अग्नि में साकल्य छोड़ने वाला।

भावार्थ—सरलही है।

५—(सुवृत्त वर्णन)

सुवृत्त = गोल-(लम्बी, चौड़ी, चिपटी, त्रिकोण नहीं)

मूल--वृत्त बेल भनि गुच्छ अरु, ककुद, सौधु के अंग।
कुंभिकुंभ, कुच, अंड, मनि, कंदुक, कलस सुरंग ॥१३॥

शब्दार्थ—ककुद = बैल के कंधे और पीठ के बीच वाला ऊंचा गोल और मांसल भाग जिसे डिल्ला कहते हैं। सौध के अंग = महलों के बुर्ज, कँगूरे वा कलसे इत्यादि। कुंभीकुंभ = हाथी के मस्तक पर के ऊंचे गोल भाग। अंड = ब्रह्मांड। मनि = मुक्ता, मोती। कंदुक = गेंद।

मूल—परम प्रवीन अति कोमल कृपालु तेरे,
उरते उदित नित चित हितकारी हैं।
केशाराय की सों अति सुंदर उदार शुभ,
सलज सुशील बिधि सूरति सुधारी है।
काहू सों न जानैं हँसि बोलि न बिलोकि जानैं,
कंचुकी सहित साधु सूधी बैसवारी है।
ऐसे दूकुचनि सकुचति न सकति बूझि,
हरि हिय हरनि प्रकृति किन पारी है ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—उदित = उत्पन्न। सों = सौगंद। उदार = बड़े सूधी = स्वभाव की अति सरल। बैसवारी = युवती। पारी है = डाली है।

(विशेष)—कोई सखी नायिका तथा उसके कुचों की प्रशंसा करके मान छोड़ाना और दोनों को मिलाना चाहती है। वह कहती है कि:—

भावार्थ—तेरे ये युगल कुच तेरे परम चतुर, कोमल तथा कृपालु उर से पैदा हुए हैं और तेरे चित्त के हितकारी हैं।

ईश्वर की सौगंद है, ये कुच सुंदर, बड़े, शुभलक्षणयुक्त, लज्जा-वान, तथा सुशील हैं और स्वयं ब्रह्मा ही ने इनकी सूरत बनाई है। किसी से बोलना, हँसना वा किसी की ओर देखना तक नहीं जानते, कंचुकी पहने अति साधु भाव से रहते हैं, और तू भी अति सरल स्वभावा और पूर्ण युवती है। मैं ऐसे दो कुचों को देख कर संकोच वश हो मैं पूछ तो नहीं सकती, पर मुझे आश्चर्य है कि श्री कृष्ण का मन हरण करने की प्रकृति इन्हें किसने सिखाई है।

(नोट)—गोल वस्तुओं के वर्णन में यह उदाहरण अच्छा नहीं हुआ। आचार्य भिखारी दास का नीचे लिखा छंद हमें इससे अच्छा जँचता है:—

कंज के संपुट है पै खरे हिय में गड़ि जात ज्यों कुंत की कोर है।
मेरु हैं पै हरि हाथ न आवत चक्रवती पै बड़ेई कठोर है।
भावती तेरे उरोजन में गुन 'दास' लखे सब और ई और हैं।
शंभु हैं पै उपजावैं मनोज सुवृत्त हैं पै पर चित्त के चोर हैं।

६, ७—(तीक्षण और गुरु वर्णन)

मूल—नख, कटाक्ष, शर, दुर्वचन, शेलादिक खर जान।
कुच, नितंब, गुण, लाज, मति, रति अति गुरु अरु मान॥१५॥

शब्दार्थ—शेलादिक = शेल, बरछी, छुरी, कटारी इत्यादि शस्त्र। रति = प्रीति। मान = 'मान' भी गुरु माना गया है।

(नोट)—दोहे के पूर्वार्द्ध में तीक्षण वस्तुओं के नाम गिनाये हैं, और उत्तरार्द्ध में गुरु वस्तुओं के।

(तीक्ष्ण का उदाहरण)

मूल—सैहथी हथ्यार हू ते अति अनियारे, काम,
शर हू ते खरे खल बचन विशेपिये।
चोट न वचत ओट किये हू कपाट कोट,
भौन भौंहरे हू भारे भय अवरेखिये।
केशोदास मंत्र, गद, यंत्रऊ न प्रतिपक्ष,
रक्ष लक्ष लक्ष बज्र रक्षक न लेखिये।
भेदत हैं मर्म, वर्म ऊपर कसेई रहैं,
पीर घनी घायलन घाय पै न देखिये ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—सैहथी = बरछी। भौंहरा—भौंरा, भुइँधरा, तहखाना। गद = मरहम पट्टी करना। प्रतिपक्ष = रोकने वाला। रक्ष = रक्षक। मर्म = मर्मस्थान। वर्म = कवच। घनी = बहुत बड़ी।

भावार्थ = खल के बचन बरछी वा अन्य हथियार से भी अधिक नोकदार हैं तथा कामशर से भी विशेष चोखे हैं। किवाड़ों का कोट बनाकर भी रहें तोभी उनकी चोट से बचाव नहीं, घर तथा तहखाने में रहते हुए भी उनसे भारी भय है। मंत्र, मरहमपट्टी, वा यंत्र (टोटका) से भी उनकी रोक संभव नहीं। लाखों रक्षक और बज्र भी उससे रक्षा नहीं कर सकते। ऊपर कवच कसाही रहता है, पर वे मर्मस्थल तक बेध डालते हैं, उनसे घायल जनों को बड़ी भारी पीड़ा होती है, परंतु घाव दिखाई नहीं पड़ता।

(गुरु का उदाहरण)

मूल-पाहिले ताजि आरस आरसी देखि घरीक घस्यौ घनसारहि लै।

पुनि पोंछि गुलाब तिलौंछि फुलेल अँगौछे मैं आछे अँगौछनि कै।
कहि केशव मेद जुबाद सो माँजि इते पर आंजे मैं आंजन दै।
बहुरयौ दुरि देखौं तो देखौं कहा सखि लाज ते लोचन लागि अहै॥

शब्दार्थ—घनसार=कपूर। तिलौंछि फुलेल=फुलेल लगाकर। अँगौछना=अँगौछे से पोछना। आछे=अच्छी तरह से। अँगौछनिकै=अँगौछे से। मेद=कस्तूरी। जुबाद=(यह फारसी शब्द है) मार्जार के अंडकोश से निकली हुई कस्तूरी।

(नोट)—गुरु बस्तुओं में 'लाज' भी है; अतः लाज की 'गुरुता वर्णन करते हैं:—

भावार्थ—हे सखि! पहले तो आलस छोड़कर मैंने आईना देखा (कि देखूं मेरे चेहरे पर से लज्जा का प्रभाव हटा या नहीं) तदनंतर एक घड़ी तक चेहरे को कपूर से घसा (कि कपूर आंखों में लगने से आंसू निकलें और उनसे चेहरे की लज्जा बह जाये) पुनः गुलाब जल से धोकर फुलेल लगाकर अँगौछे से अच्छी तरह चेहरा पोंछा (कि लाज पुँछ जाय) तदनंतर मेद तथा जुबाद से चेहरे को माँजकर आंखों में अंजन लगाया (कि इसकी कारिख से नेत्रों की लज्जा छिप जाय) फिर भी नायक को छिपकर देखने पर भी मैं देखती हूं कि लज्जा मेरी आंखों में लगी ही है।

८—(कोमल वर्णन)

मूल—पल्लव, कुसुम, दयालुमन, माखन, मैन, मुरार।
पाट, पामरी, जीभ, पद, प्रेम, सुपुन्य बिचार॥ १८॥

शब्दार्थ—मैन=मोम। मुरार=कमलमूल। पाट=रेशम। पामरी=रेशमीवस्त्र।

मूल—मैन ऐसो मन मृदु, मृदुल मृणालिका के
सूत ऐसी स्वरध्वनि, मननि हरति है।
दारयौ कैसे बीज दंत, पात से अरुण ओंठ,
केशोदास देखि दृग आनँद भरति है।
येरी बीर तेरी मोहिं भावति भलाई ताते,
बूझति हैं। तोहिं और बूझति डरति है।
माखन सी जीभ, मुख कंज सो कोंवर, तासों
काठसी कठेठी बात कैसे निकरति है ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—मैन = मोम। दारयौ = (दाड़िम) अनार। पात = पल्लव। और बूझति डरति है = अन्य कोई सखी पूंछते डरती है। कोंवर = कोमल। कठेठी = कठोर।

भावार्थ—स्पष्ट ही है।

९—(कठोर वर्णन)

मूल—कुच कठोर भुजमूल, मणि वराणि बज्र कहि मित्त।
धातु, हाड़, हीरा, हियो, बिरही जन के चित्त ॥ २० ॥

शब्दार्थ = भुजमूल—भुजदंड। मणि = कोई भी मणि। बज्र = इन्द्र का आयुध। हियो और चित्त का अन्वय विरहीजन के साथ समझो।

मूल—शूरन के तन, सूम मन, काठ, कमठ की पीठि।
केशव सूखो चाम अरु, हठ, शठ, दुर्जन डीठि ॥२१॥

मूल—केशोदास दीरघ उसासन को सदागति,
आयु को अकास है, प्रकास पाप भोगी को।

देह जात, रूप जात, हाड़न को पूरो रूप,
रूपको रूपक बिधु बासर सँयोगी को ।
बुद्धिन की बीजुरी है, नैनन को धाराधर,
छाती को घर्यार, तन घायन प्रयोगी को ।
उदर को बाड़वा अगिन गेह मानत हौं,
जानत हौं हीरा हियो काहू पुत्रसोगी को ॥ २९ ॥

शब्दार्थ = सदागति = पवन । रूप = ठठरी । रूपक = समता, उपमा । बिधुबासर संजोगी = दिनका चंद्रमा । धाराधर = बादल । घर्यार = घंटा जिसे ठोंककर समय सूचित किया जाता है । पुत्रसोगी = जिसे पुत्रके मरजाने का शोक हो ।

भावार्थ—केशव जी कहते है कि पुत्रसोगी मनुष्य स्वासोंके लिये तो पवन ही है (उसके हृदयसे दीर्घ स्वासें चला करती हैं), आयु के लिये शून्य है (गत आयु हो जाता है) और यदि कुछ दिन आयु भोग रहैगा भी (जीता रहैगा) तो वह समय पापके प्रकाश सम ही होगा—(जैसे पाप भोग समय कष्ट ही होता है वैसेही उसका समय कटैगा)—उसकी देह दुर्बल हो जाती है, सौन्दर्य भी चला जाता है, केवल हाड़ों की ठठरी रह जाती है, उसका रूप ऐसा निष्प्रभ हो जाता है जैसे दिन का चन्द्रमा । वह बुद्धिके लिये बिजली सम चंचल हो जाता है—(एक सम्मति पर स्थिर नही रहता), उसके नेत्र बादल हो जाते हैं—बहुत आंसू बहाता है—उसकी छाती घरियार हो जाती है (छाती कूटा करता है) और उसका शरीर तो घावो के लिये ही बना होता है । उसका उदर मानो बड़-वाग्नि का घर ही हो जाता है ; और उसका हृदय मानो वज्र ही हो जाता है ।

(नोट)—इसमें हीरा और बिरही के हृदय की कठोरता वर्णन की गई।

१०—(निश्चल वर्णन)

मूल—सती, समर भट, संतमन, धर्म, अधर्म निमित्त।
जहाँ जहाँ ये बरनिये, केशव निश्चल चित्त। २३

भावार्थ—सती, भट, संतमन, तथा धर्म और अधर्म के कारणों का जहां बर्णन करना हो वहां इनके चित्तको अचल ही कहना होगा।

(यथा)

मूल—काय मनोवच काम न लोभ न छोभ न मोह महाभय जेता।
केशव बाल, बयक्रम, बृद्ध विपत्तिन हूँ अति धीरज चेता
हैं कलिमें करुणाबरुणालय कौन गनै कृत द्वापर त्रेता।
येई हैं सूरज मंडल भेदत सूर सती अरु ऊरधरेता। २४

शब्दार्थ—छोभ = क्रोध। जेता = जीतनेवाले। बयक्रम = युवावस्था। बरुणालय = समुद्र। कृत = सतयुग। ऊरधरेता = ब्रह्मचारी जिनका बीर्य पात न हुआ हो।

भावार्थ—स्पष्ट है। सूर, सती और ऊर्ध्व रेता की अचंचल वृत्ति का वर्णन है।

११—(चंचल वर्णन)

मूल—तरल तुरंग, कुरंग, घन, बानर, चलदल पान।
लोभिन के मन, स्यारजन, बालक, काल बिधान। २५

शब्दार्थ—तरल = चंचल। चलदल पान = पीपर के पत्ते। स्यारजन = कायर पुरुष। काल बिधान = समय की क्रिया।

मूल कुलटा, कुटिलकटाक्ष, मन, सपनो, यौवन, मीन।
खंजन, अलि, गजश्रवण, श्री, दामिनि, पवन प्रवीन। २६

(नोट)—ऊपर लिखी वस्तुएं चंचल मानी जाती हैं। एक अन्य कवि का मत है :—

चलदलपत्र, पताकपट, दामिनि, कच्छप माथ।
भूतदीप, दीपकशिखा, त्यों मनवृत्ति अनाथ॥

मूल—भौंर ज्यों भवत लोल, ललना लतानि प्रति,
खंजन सो थल, मीन मानो जहां जल है।
सपनो सो होत, कहूँ आपनो न अपनाये,
भूलिये न बैन ऐन आक को सो फल है।
गहिये धौं कौन गुन, देखत ही रहिये री,
कहिये कछू न, रूप मोह को महल है।
चपला सी चमकनि सोहै चारु चहूँदिसि,
कान्ह को सनेह चलदल को सो दल है। २७।

शब्दार्थ—आपनो न अपनाये = अपनाने पर भी अपना नहीं है। भूलिये न बैन = उनकी बातों में आकर भूल न जानाचाहिये। ऐन = ठीक। आकको सो फल = नीरस। चलदल = पीपर।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है। कृष्ण के प्रेम को भौंर, खंजन, मीन, सपना, बिजली और पीपरपत्र के समान चंचल कहा गया है।

१२—(सुखद वर्णन)

मूल—पंडित पुत्र, पतिव्रता, विद्या, वपु नीरोग।
सुखदा फल अभिलाष के, संपति, मित्रसँयोग। २८।

शब्दार्थ—बपु नीरोग = रोग रहित शरीर। अभिलाषा के फल = अभिलाषानुसार फल का मिलना।

दान, मान, धनयोग, जप, राग, बाग, गृह, रूप।

मुक्ति, सौम्य, सर्वज्ञता, ये सुखदानि अनूप। २९।

शब्दार्थ—धनयोग = धनप्राप्ति का संयोग। सौम्य = सौम्य स्वभाव।

(यथा)

मूल—पंडित पूत सपूत सुधी पतनी पतिप्रेम परायण भारी।

जाने सबै गुण, मानै सबै जन, दानविधान दया उर धारी।

केशव रोगनहीं सों वियोग, संयोग सुभोगनि सों सुखकारी।

साँच कहै जगमाहि लहै यश, मुक्ति, यहै चहुँ वेदविचारी॥३०॥

भावार्थ—पंडित और बुद्धिमान पुत्र, पतिव्रता स्त्री, सब गुणों का ज्ञान, सब जनो से सम्मानित होना, दानदेना, दया करना, नीरोग शरीर, सुभोगों का संयोग, यश और मुक्ति यही सब वस्तुएं सुखद हैं।

१२—(दुखद वर्णन)

मूल—पाप, पराजय, झूठ, हठ, शठता, मूरख मित्र।

ब्राह्मण नेगी, रूपबिन, असहनशील चरित्र। ३१।

शब्दार्थ—पराजय = हार। ब्राह्मण नेगी = ब्राह्मण कारपरदाज़ (क्योंकि उससे वर्ण के लिहाज से दबना पड़ता है और दंड नहीं दे सकते)। रूपबिन = कुरूपता।

मूल— आधि ब्याधि, अपमान, ऋण, परघर भोजन बास।

कन्या संतति, वृद्धता, बरषाकाल प्रवास। ३२।

शब्दार्थ—आधि = मानसिक व्यथा। व्याधि = रोग। वृद्धता = बुढ़ापा। बरषाकाल प्रवास = वर्षा ऋतु में विदेश गमन वा विदेशनिवास।

मूल—कुजन कुस्वामी, कुगतिहय, कुपुरनिवास, कुनारि।
परबस, दारिद आदि दै, अरि, दुखदानि विचारि। ३३

शब्दार्थ—कुगतिहय = बुरी चाल का घोड़ा। कुनारि = कर्कशा स्त्री वा कुचरित्रा स्त्री। परवश = परतंत्र रहना।

मूल—बाहन कुचाल, चोर चाकर, चपल चित,
मित्र मतिहीन, सूम स्वामी उर आनिये।
पर घर भोजन, निवास बास कुपुरन,
केशोदास बरषा प्रवास दुख दानिये।
पापिन को अंगसंग, अंगना अनंग बस,
अपयश युत सुत, चित हित हानिये।
मूढ़ता, बुढ़ाई व्याधि, दारिद, झुठाई आधि,
यहई नरक नर लोकन बखानिये। ३४

शब्दार्थ—निवास = सदैव का रहना। बास = थोड़े दिनों ठहरना। कुपुर = बुरा गाँव। प्रवास = परदेश में रहना। अंग संग = साथ रहना। अंगना = स्त्री। अनंग = काम। चित्तहित हानि = चित्तचाही वस्तु का न मिलना।

भावार्थ—बहुत स्पष्ट है।

१३—(मन्दगति वर्णन)

मूल-कुलतिय हास बिलास, बुध काम क्रोध मद मानि।
शनि, गुरु, सारस, हंस, गज, तियगति मंद बखानि। ३५

शब्दार्थ—बुध = बुधिमान। शनि = शनिश्चर। गुरु = बृहस्पति। सारस = एक लम्बी टाँगोंवाला पक्षी विशेष जिसका सिर लाल होता है। यह पक्षी बहुधा जलाशयों के निकट बसता है। 'गति'—इसका अन्वय शनि गुरु इत्यादि सब शब्दों के साथ समझना चाहिये।

मूल—कोमल विमल मन, बिमला सी सखी साथ,
कमला ज्यों लीन्हें हाथ कमल सनाल के।
नूपुर की धुनि सुनि, भोरें कलहंसनि के,
चौकि चौकि परै चारु चेदुवा मराल के।
कचन के भार, कुच भारन, सकुच भार,
लचकि लचकि जाति कटितट बाल के।
हरें हरें बोलति बिलोकति हँसति हरें,
हरें हरें चलति हरति मन लाल के। २६।

शब्दार्थ—बिमला = सरस्वती। भोरें = धोखे में। चेदुवा = बच्चे सकुच = लज्जा। कटितट = कमर। हरें हरें = धीरे धीरे।

भावार्थ—कोमल और निर्मल मनवाली सरस्वती समान वाली सखी को साथ लिये, और लक्ष्मी के समान हाथ में सनाल कमल लिये हुए जिनके नूपुरों का शब्द सुनकर हंसों के धोखे में हंसों के बच्चे चौंक उठते हैं। बालों, कुचों, और लज्जा के भार से जिसकी कमर लचकी जाती है, ऐसी सुन्दर बाला धीरे धीरे बोलती, देखती और हंसती है तथा धीरे ही धीरे चलकर नायक के मन को हरती है।

(नोट)—इसमें कुलांगना की प्रत्येक क्रिया मंदगति वाली वर्णन की गई है।

सब व्यर्थ हैं, और भी उद्दीपक हैं, अतः इसे नायक के दर्शन ही कराओ क्योंकि आग का जला आग ही से अच्छा होता है।
भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

१६—(तप्त वर्णन)

मूल—रिपु प्रताप, दुर्बचन, तप, तप्त बिरह संताप।
सूरज, आगि, बजागि, दुख, तृष्णा, पाप, बिलाप ॥३६॥

शब्दार्थ—तप = तपस्या। बजागि = (वज्राग्नि) बिजली की अग्नि।

(यथा)

मूल—केशोदास नींद, भूख, प्यास, उपहास त्रास,
दुख को निवास विष मुखहू गह्यौ परै।
बायु को बहन, बनदावा को दहन, बड़ी
बाड़वा अनल ज्वाल जाल में रह्यौ परै।
जीरन जनम जात जोर जुर घोर, परि-
पूरण प्रगट परिताप क्यों कह्यौ परै।
सहिहौं तपन ताप, परको प्रताप, रघु-
बीर को बिरह बीर मोपै न सह्यौ परै ॥४०॥

शब्दार्थ—उपहासत्रास = निन्दायुक्त हँसी का भय, बदनामीका डर। गह्यौ परै = ग्रहण किया जा सकता है। रह्यौपरै = रहा जा सकता है। जीरन..... घोर = जीवन भर रहनेवाला बड़े ज़ोर का जीर्णज्वर। परिपूरण......कह्यौपरै = जिसकी प्रत्यक्ष और पूर्ण गर्मी का प्रभाव कहा नहीं जा सकता। तपन = सूर्य। पर को प्रताप = शत्रु का प्रताप।

भावार्थ—श्री सीता जी श्री हनुमान जी से कहती हैं कि मैं नींद, भूख, प्यास, तथा निंदा का भय सह सकती हूं, विष भी खा सकती हूं, हवा के झोंके, दावाग्नि की तथा बड़वाग्नि की ज्वालायें सह सकती हूं। घोर जीर्ण ज्वर की गर्मी (जिस का वर्णन नहीं हो सकता) सह सकती हूं, सूर्य की गर्मी (लू लपट) तथा शत्रु का प्रताप सह सकती हूं, पर राम-विरह सहने में असमर्थ हूं।

(नोट)—इसमें कठिन तप्त वस्तुओं का वर्णन आगया है।

१७—(सुरूप वर्णन)

मूल—नल, नलकूवर, सुरभिषक, हरिसुत, मदन निहारि।
दमयंती सीतादि त्रिय सुन्दर रूप विचारि ॥४१॥

शब्दार्थ—(पुरुष सौन्दर्य के लिये) नल=राजा नल। नल-कूबर=कुबेर का एक पुत्र। सुरभिषक=देवताओं के वैद्य (अश्विनी कुमार)। हरिसुत=श्री कृष्ण के पुत्र (प्रद्युम्न)। मदन=कामदेव। (नोट)—श्रीराम जी और नकुल (पांडव) भी सुन्दर माने जाते हैं।

(स्त्रीसौन्दर्य के लिये)—दमयंती, सीता। 'आदि' शब्द से इन्दुमती, रति, सावित्री, अप्सरायें, देवपत्नियां, लक्ष्मी, इन्द्राणी तथा तारा रोहिणी, द्रौपदी इत्यादि को भी समझना चाहिये।

(यथा)

मूल—को है दमयंती इन्दुमती रति राति दिन,
होहिं न छबीली छनछबि जो सिंगारिये।

केशव लजात जलजात, जातबेद ओप,

जातरूप बापुरो बिरूप सो निहारिये ।

बदन निरूपन निरूपम निरूप भये,

चन्द बहुरूप अनुरूप कै बिचारिये ।

सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को हैं,

रूपही के रूपक तौ वारि वारि डारिये ॥४२॥

शब्दार्थ—दमयंती = राजा नलकी स्त्री । इन्दुमती = राजा अज-की स्त्री (श्रीराम जीकी दादी । छनछबि = बिजली । जल-जात = कमल । जातबेद = अग्नि । जातरूप = सोना । बिरूप = बदसूरत । निरूप = बदसूरत । बहुरूप = अनेक रूप धारण करने वाला बहुरूपिया (अताई) । अनुरूपक = प्रतिमा । देवता = देवांगनाएँ (शची, ब्रह्माणी आदि) । रूप ही के रूपक = सौंदर्य के उपमान । वारि डारिये = निछावर कर डालिये ।

भावार्थ—दमयंती इन्दुमती और रति (सीता के रूप के साम-ने) क्या हैं (तुच्छ हैं) यदि इन्हें रातोदिन बिजली से सिगा-रते रहैं तो भी उतनी सुंदर न होंगी (जितनी सीता जी हैं) । केशव कहते हैं कि सीता के रूप के आगे कमल और अग्नि की आभा लज्जित होती है, और सोना बिचारा तो बदसूरत देख पड़ता है । बदन का निरूपण करते समय अनूपम वस्तुएं भी बदसूरत जँचने लगीं । चंद्रमा तो अनेक रूपधारी बहु-बहुरूपिया (स्वांग भरने वाला) की प्रतिमाही बिचार में आया । सीता जी के रूप के सामने कुरूप देवनारियाँ क्या हैं? उनका तो ऐसा रूप है कि सौन्दर्य की जितनी उपमाएं हैं वे सब उनके रूप पर निछावर कर डालना चाहिये ।

(यथा) सब उपमा कबि रहे जुठारी।
केहि पटतरिय बिदेह कुमारी॥ (तुलसी)

१८—(क्रूरस्वर वर्णन)

मूल–झींगुर, साँप, उलूक, अज, महिषी, कोल बखानि।
भेड़ि, काक, वृक, करभ, खर, स्वान क्रूरस्वर जानि॥४३॥

शब्दार्थ—अज = बकरा। महिषी = भैंस। कोल = सुअर। वृक = भेड़िया। करभ = (१) ऊंट (२) हाथी।

(यथा)

मूल–झिल्ली ते रसीली जीली, रांटीहू की रट लीली,
स्यारि ते सवाई भूतभामिनी ते आगरी।
केशौ दास भैंसन की भामिनी ते भासै बेस,
खरीते खरी सी धुनि ऊटी ते उजागरी।
भेड़िन की मीड़ी मेड़, ऐंड़ न्योरी नारिन की,
बोकी हू ते बांकी बानी, काकि हू की का गरी।
सूकरी सकुचि, संाकि कूकरियो मूक भई,
घूघू की घरनि को है मोहै नाग-नागरी॥४४॥

शब्दार्थ—झिल्ली = झींगुर। जीली = बारीक। रांटी = टिट्टिभी (टिटिहरी)। भूतभामिनी = चुड़यल। आगरी = बढ़कर। भैंसन की भामिनी = भैंसी। बेस = (बेश) अच्छी। खरी = गदही। खरी = बढ़कर। उजागरी = अधिक स्पष्ट। मीड़ी-मेंड़ = मर्यादा मल डाली। ऐंड़ = घमंड। बोकी = बकरी। काकि = (काकी) कौवा की स्त्री। का = काँव काँव शब्द। गरी = गल गई। नाग नागरी = हथिनी, करिणी।

भावार्थ—केशव जी किसी कर्कशा स्त्री की बाणी की निन्दा व्यंगसे करते हैं। कहते हैं :–कैसी मधुर बाणी है कि झींगुरी की बाणी से भी बारीक और रसीली है, टिटिहरी की रटन को भी निगल गई है, शृगाली की बाणी से सवाई और चुड़-यल की बोली से भी बढ़कर है, भैंस की बोली से अच्छी गदही की बाणी से अधिक स्पष्ट, और ऊँटिनी की बोली से अधिक सुस्पष्ट है। भेड़ी की बोली की तो सीमा ही मेट दी है, न्यौरी (नकुली) की बोली का घमंड ही तोड़ दिया है, बकरी की भाषा से भी सुन्दर है, कौवी की काँव काँव तो उसके सामने गल गई। सुवरिया संकोच बश और कुतिया डर कर चुप हो रही, घुघुवारिन की तो बात ही क्या है, उसे सुनकर हथिनी भी मोहित होती है।

१९—(सुस्वर वर्णन)

मूल—कलरव, केकी, कोकिला, शुक, सारो, कलहंस।
तोतक, तन्त्री, आदि दै शुभसुर दुदुभि, बंस॥४५॥

शब्दार्थ—कलरव = कबूतर। केकी = मोर। सारो = शारिका, मैना। तंत्री = तार युक्त बाजे जैसे सितार, बीणादि। तोतक = पपीहा। बंस = बांसुरी।

मूल—केकिन की केका सुनि काके न मथत मन,
मनमथ-मनोरथ रथपथ सोहिये।
कोकिला की काकलीन कलित ललित बाग,
देखत न अनुराग उर अवरोहिये।
कोकन की कारिका कहत शुक शारिकान,
केशोदास नारि का कुमारिका हू मोहिये।

हंसमाल बोलत ही मान की उतारि माल,
बोलै नदलाल सों न ऐसी बाल को हिये ॥४६॥

शब्दार्थ—केकी = मोर। केका = मोर की बोली। मनमथ-मनो-रथ-रथ-पथ = कामेच्छा के रथ का रास्ता (यह शब्द 'केका' का विशेषण है)काकली = कोकिल। की बोली। कलित = युक्त। ललित = सुंदर। न अवरोहिये = रोका नहीं रहता। कोकन की कारिका = कोकशास्त्र के सूत्र-(प्रेमपूर्णवार्ता)। शारिकान = शारिकाओं से। नारि का = युवतियों की तो बात क्या। कुमारिका = कुमारियां। हंसमाल = हंस समूह। मान की माल उतारि = मान छोड़कर। ऐसी बाल को हिये = ऐसे कठोर हृदय की स्त्री कौन है।

(विशेष)—मेरी सम्मति में इस छंद में 'गणिका' नायिका है। शरदऋतु में नायक ने उसे 'हंस' (नूपुर) और 'माल' (मोती माला) देकर उसका मानमोचन कराया है। मान-मोचन का कारण पूछे जाने पर वह कहती है कि :—

भावार्थ—वर्षाकाल में मोर की बोली सुनकर—जो बोली काम वासनाओं के रथ के लिये पंथ रूप है (जिस बोलीको सुनकर स्वयं काम बासना चलायमान होती है,—किस का मन काम से व्यथित नहीं होता (मानिनी नायिकाए उस समय मान त्याग कर नायकों से मिलती हैं, पर मैंने उस समय भी मान नहीं छोड़ा)। बसंत ऋतु में जब कोकिल की बोली से सुंदर बाग गूंज जाते हैं, तब उन बागों को देखतेही हृदय का अनुराग रोके नही रुकता। इसी ऋतु में जब शुक-गण शारिकाओं से प्रेम मय वार्ता करते हैं, तब युवती स्त्रियां की तो बात क्या कुमारी कन्यायें भी नवयुवकों पर मोहित

होती हैं (पर मैंने तब भी मान नहीं छोड़ा)। पर इस शरद ऋतु में-हंस समूह के बोलते ही (नूपुर और माला देने कहने पर) मान की माला उतार कर (मान छोड़ कर) कौन ऐसे कठोर हृदयवाली स्त्री होगी जो नंदलाल से न बोलेगी—(नूपुर और माला लेकर तब नंदलाल से बोली हूं)

(नोट)—नायिका के कथन का भाव यह है कि प्राकृतिक उद्दीपनों से उत्तेजित होकर मैंने मान नहीं छोड़ा, वरन् जब नायक ने नूपुर और माला देने का वादा करदिया है—(हंस माल बोलत ही)—तब मान छोड़ा है, 'हंसमाल' का बोलना शरद में ही उचित है, वर्षा या बसंत में नहीं। इसी विचार से हमने ऐसा अर्थ किया है।

२०—(मधुर वर्णन)

मूल—मधुर प्रियाधर, सोमकर माखन, दाख समान।
बालक बातैं तोतरी, कबिकुल उक्ति प्रमान ॥४७॥

शब्दार्थ—सोमकर = चंद्रकिरण।

महुवा, मिसरी, दूध, घृत अति सिंगार रस मिष्ट।
ऊख, महूष, पियूष गनि केशव सांचो इष्ट ॥४८ ॥

शब्दार्थ—महूष = (मधुच्छिष्ट) शहद। इष्ट = मित्र।

मूल खारिक खात न दारिम दाखहु माखन हू सह मेटी इठाई।
केशव ऊख महूखहु दूषत आई हौं तो पहँ छाँड़ि जिठाई।
तो रदनच्छद को रस रंचक चाखि गये करि केहूँ ढिठाई।
ता दिन तें उन राखी उठाय समेत सुधा वसुधा की मिठाई ४९

शब्दार्थ—खारिक = छोहारा। दारिम = अनार। सह = से।

मेटी इठाई = मित्रता छोड़ दी। मह्रूष = शहद। दूषत = दोष लगाते हैं। जिठाई = जेठापन। रदनच्छद = अधर, ओठ। रंचक = थोड़ासा।

भावार्थ—सरल है।

२१—(अबल वर्णन)

मूल—पंगु, गुग, रोगी, बनिक, भीत, भूखयुत जानि।

अंध, अनाथ, अजादि शिशु, अवला, अबल बखानि॥५०॥

शब्दार्थ—गुंग = गूंगा। (क्योंकि किसी को पुकार नहीं सकता, इससे अबल कहा) वनिक = बनिया। (क्योंकि शस्त्र धारण इनका धर्म नहीं)। अजादि = बकरी। हरिन और पशुबत्स इत्यादि।

मूल—खात न अघात सब जगत खवावत है,

द्रौपदी के सागपात खातही अघाने हौ।

केशोदास नृपति सुता के सतभाय भये,

चोर ते चतुरभुज चहूँचक जाने हौ।

मांगनेऊ, द्वारपाल, दास, दूत, सूत, सुनौ,

काठमाहि कौन पाठ वेदन बखाने हौ।

और हैं अनाथन के नाथ कोऊ रघुनाथ,

तुमतो अनाथन के हाथ ही बिकाने हौ॥५१॥

शब्दार्थ—सतभाय = सद्भाव से! चहूंचक = चारो ओर। मांगने = बलि के लिये बामन होकर भिक्षुक बने। द्वारपाल = उग्रसेन के यहाँ। दास = सेन भक्त के रूप से। दूत = पांडवों के लिये। सूत = अर्जुन के। काठमाहिं''हौ = संदीपन गुरु के

लिये लकड़ी तोड़ने के लिये गये थे, लकड़ियां तोड़ने में कौनसा वेद पाठ का गुण है। चोर तें चतुरभुज=एक राज कन्या कृष्ण को बरने का प्रन ठान बैठी। एक राजकुमार ने कृष्ण का रूप बनाकर रात को उसके पास आना जाना आरंभ किया। कुछ दिन में एक सखी ने कहा कि तू ठगी गई तेरा पति कृष्ण नहीं, यदि वे चतुर्भुज रूप दिखावें तो हम मानें। वह राजकुमारी बड़े दुःख में पड़ी। प्राण देना निश्चय किया। एक रात को उस चोर राज कुमार के बदले कृष्ण ने अपना चतुर्भुज रूप सबको दिखाया था। यह कथा भक्तमाल में है। सागपात⋯अघाने हो=द्रौपदी और दुर्वासा की कथा भारत में प्रसिद्ध है।

भावार्थ—स्पष्ट है।

२२—(बलिष्ठ बर्णन)

मूल—पवन, पवन को पूत अरु परमेश्वर, सुरपाल।
काम, भीम, बाली, हली, बलि राजा, पृथु, काल ॥५२॥

सुरपाल=इन्द्र। हली=बलदेव जी।

मूल—सिंह, बराह, गयंद, गुरु, शेष सती सबनारि।
गरुड़, बेद, माता, पिता, बली अदृष्ट विचारि ॥५३॥

सती सबनारि=सब सती स्त्रियां। अदृष्ट=प्रारब्ध कर्म।

मूल—बालि बिंध्यो, बलिराव बँध्यो, कर शूली के शूल कपालथली है।
काम जरचो जग, काल परचो बँदि, शेष धरचो विष हाला हली है।
सिंधु मथ्यो, किल काली नथ्यो, कहि केशव इन्द्र कुचाल चली है।
राम हू की हरी रावण बाम, चहूँ युग एक अदृष्ट बली है ॥५४॥

भावार्थ—बालि बली था, पर वह राम के शर से बिद्ध हुआ, राजा बलि बली था, पर वह बांधा गया, महादेव बली हैं (क्योंकि सृष्टि संहारक हैं) पर केवल त्रिशूल और मुंडमाला ही उनके पास है (अधिक संपति नहीं) काम बला था, पर वह जल गया, काल बली है, पर वह भी रावण की क़ैद में पड़ा, शेष बली हैं, पर उन्हें भी विष खाना पड़ा, बलदेव जी बली थे, पर वे भी शराब के वश थे। सिन्धु मथा गया, काली नाग नाथा गया, इन्द्र ने बली होकर (अहल्या से) कुचाल चली, राम की स्त्री रावण ने हरण की, अतः निश्चय हुआ कि (बली होने से कुछ भी नहीं होता) चारो युगों में एक प्रारब्ध कर्म ही बलवान है।

२३, २४—(सत्य झूठ वर्णन)

मूल—केशव चारिहु बेद को मन क्रम बचन विचार।

सांचो एक अदृष्ट हरि, झूठो सब संसार ॥५५॥

भावार्थ—चारो वेदों को पढ़कर विचारा तो कर्म और हरि (भगवान) सत्य जँचे, और सब झूठा जँचा।

(यथा)

मूल—हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गांव न ठांव को नांव बिलैहै।
तात न मात न मित्र न पुत्र न वित्त न अंग हू संग न रैहै।
केशव काम को 'राम' बिसारत और निकाम न कामहि ऐहै।
चेत रे चेत अजौं चित अन्तर अंतक लोक अकेलहि जैहै ॥५६॥

शब्दार्थ—काम को राम = केवल 'राम' का नाम काम की वस्तु है (सत्य है) उसे तू भुलाता है, यह बात अच्छी नहीं।

निकाम = बेकाम याने असत्य और अनित्य। चित अंतर = दिल में। अन्तक = यमराज।

भावार्थ—बहुत स्पष्ट है।

मूल—अनही ठीक को ठग, जानै ना कुठौर ठौर,
ताही पै ठगावै ठेलि जाही को ठगतु है।
याके डर तू निडर! डग न डगत डरि,
डर के डरन डगि डोंगी ज्यों डगतु है।
ऐसे बसोवास ते उदास होय केशोदास,
केशो न भजत कहि काहे को खगतु है।
झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई, काहू
सांचे को कियो है ताते साँचो सो लगतु है॥५७॥

शब्दार्थ—अनही ठीक को ठग = तू बिना ठिकाने का ठग है (ठगी का काम किसी अच्छे गुरु से नहीं सीखा)। ठेलि = बरबस, जबरई। याकेडर = इस बेईमानी (पाप) के डर से। निडर = हे निडर (संबोधन में)। ड ग.....डरि = डर कर एक पग भी नहीं डगता। याके डर.....डरि = हे निडर! तू इस पाप के डर से डर कर तनक भी विचलित नहीं होता, इस पाप से ज़रा भी नहीं डरता। डर के डरन = अन्य सांसारिक कष्टों के डर से डर कर। डोंगी = छोटी नाव। डगतु है = कांपता है। बसोबास = स्थान अर्थात् संसार। होय = होकर। केशो न भजत = नारायण का भजन नहीं करता। खगतु है = अनुरक्त होता है, लिप्त होता है।

(नोट)—कोई गुरु निज शिष्य को उपदेश देता है।

भावार्थ—तू बेठिकाने का ठग है (तुझसे ठगते नहीं बनता)

तुझे ठौर कुठौर का ज्ञान नहीं है, जबरई उसी से ठगाया जाता है जिसे तू स्वयं ठगना चाहता है। (तुझे चाहिये था कि तू संसार को ठग ले—मुक्ति प्राप्त करे-पर तू तो स्वयं ही संसार से ठगा जा रहा है-सांसारिक विषयों में फँसा है)। हे निडर! तू इस पाप के डर से डरकर ज़रा भी नहीं कांपता, और अन्य सांसारिक डरों से (भूख, प्यास वा भोगभाव के डर से) डोंगी की तरह कांपता है। ऐसे (ठगविद्या पूर्ण) संसार से उदासीन होकर नारायण का भजन क्यों नहीं करता, क्यों उसमें (संसार में) लिप्त होता है। रामकी सौगन्द यह संसार झूठा है, पर किसी सच्चे का बनाया हुआ है इससे सच्चा सा जान पड़ता है।

२५—(मंडल वर्णन)

मंडल—मंडलाकार वस्तुएं।

मूल केशव कुंडल, मुद्रिका, बलया, बलय, बखानि।
आलबाल, परिबेष, रबिमंडल मंडल जानि ॥५८॥

शब्दार्थ—कुंडल = कान का बाला। बलया = चूड़ी। वलय = कड़ा। आलबाल = थाला। परिबेष = ज्योतिर्मय परिधि जो चंद्र वा सूर्य के गिर्द पड़ती है। रविमंडल = सूर्य के गिर्द का घेरा।

मूल—मणिमय आलबाल जलज जलज रबि-
मंडल में जैसे मति मोहै कबितानि की।
जैसे साबिशेष परिबेष में अशेष रेख,
शोभित सुबेष सोम सीमा सुखदानि की॥

जैसे बंकलोचनि कलित कर कंकननि,
बलित ललित दुति प्रगट प्रभानि की।
केशोदास ऐसे राजैं रास में रसिक लाल,
आसपास मंडली विराजै गोपिकानि की ॥५९॥

शब्दार्थ—आलबाल=थाला। थलज=कोई पौधा (यहां तमाल पौधा) जलज=कमल। मति मोहै कवितान की=कवि प्रतिभा मोहित होती है (कवि गण उसका बर्णन नहीं कर सकते।) सबिशेष=अखंडित, पूर्ण। अशेषरेख सोम=पूर्ण चंद्रमा। सुबेष=सुन्दर। सीमा सुखदानिकी=सुखाद वस्तुओं की सीमा (सर्वाधिक सुखद)। कलित कर=सुन्दर हाथ। कंकन बलित=कंकण युक्त। रसिकलाल=श्री कृष्ण।

(नोट)—रास समय में श्रीकृष्ण मध्य में स्थित हैं, मंडलरूप में इर्द गिर्द गोपियां हैं। इसी दृश्य की कई उपमाएं कहते हैं।

भावार्थ—रासमंडल के बीच में श्रीकृष्ण हैं, इर्द गिर्द गोपियां घेरे हैं, यह दृश्य ऐसा देख पड़ता है जैसे मणिमय थाला में कोई पौदा खड़ा हो, या जैसे पूर्ण परिबेष में सुन्दर भेषवाला और पूर्ण आनंददायक पूर्ण चंद्रमा हो, या जैसे किसी बंक लोचनी स्त्री की सुंदर कलाई में कंकण पड़ा हो और उसकी द्युति प्रत्यक्ष प्रभा प्रकाशित कर रही हो।

२६, २७—(अगति तथा सदागति वर्णन)

मूल—अगति सिंधु, गिरि, ताल, तरु, बापी, कूप बखानि।
महानदी, नद पंथ, जग, पवन सदागति जानि ॥६०॥

भावार्थ—सिंधु, गिरि, ताल, तरु, बापी, कूप इत्यादि

अचल जानो। और बड़ी नदी, नर, पंथ, जग और पवन सदैव चल समझो।

(यथा)

मूल—पंथ न थकत मन मनोरथ रथन के,

केशोदास जगमग जैसे गाये गीत मैं।

पवन विचार चक चक्र मन चित्त चढ़ि,

भूतल अकास भ्रमैं घाम जल सीत मैं।

कौलौं राखौं थिर बपु बापी कूप सर सम,

हरि बिन कीन्हें बहु बासर व्यतीत मैं।

ज्ञान गिरि फोरि तोरि लाज तरु जाय मिलौं,

आपही ते आपगा ज्यों आपानधि प्रीतमैं ॥६१॥

शब्दार्थ—पंथ न.....के = मनोरथ के रथों का पंथ कभी थकता नहीं अर्थात् अनेक प्रकार के मनोरथ मन में उठा करते हैं। जगमग.....मैं = जैसा संसार का कायदा है और जैसा गीताओं में कहा गया है। पवन विचार...चढ़ि = (अन्वय) विचार पवन पै चढ़ि और मन तथा चित्त चक चक्र चढ़ि—मेरे विचार पवन पर चढ़ कर और मेरे मन और चित्त दिशाओं के चक्र पर चढ़कर। चक = दिशा। आपगा = नदी। आप निधि = समुद्र। प्रीतमैं = प्रीतम को।

भावार्थ—(कोई पूर्वानुरागिनी स्त्री सखी से कहती है कि) मेरे मन में अनेक प्रकार के मनोरथ उठा करते हैं, जैसी कि संसार की रीति है और जैसा कि गीताओं में वर्णित है। मेरा विचार पवन पर सवार होकर और मेरे मन और चित्त दिशाओं के चाक पर सवार होकर घाम, जल, शीत की पर-

वाह न करके, जमीन से आस्मान तक फिरा करते हैं (प्रीतम से मिलने की अनेक तद्बीरें सोचा करती हूं)। मैं अपने शरीर को बापी कूपादि की तरह कब तक जड़वत् स्थिर रखूं। अतः अब तो मैंने यह निश्चय किया है कि जैसे नदी पहाड़ को फोड़ कर, बाधक वृक्षों को तोड़कर आपही सिंधु से जा मिलती है, वैसेही मैं भी ज्ञान के बंधन छुड़ाकर और लाज के वृक्षों को गिराकर आपही अपने प्रीतम से जा मिलूं।

२८-(दानी वर्णन)

मूल गौरि, गिरीश, गणेश, बिधि, गिरा, ग्रहन को ईश।

चिंतामणि, सुरवृक्ष, गो, जगमाता, जगदीश ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—ग्रहन को ईश = सूर्य। गो = सुरगो, कामधेनु। जगमाता = लक्ष्मी। जगदीश = नारायण भगवान।

(नोट)—ये दिव्य दानी हैं।

मूल-रामचंद हरिचद, नल, परशुराम दुख हर्ण।

केशवदास दधीच, पृथु, बलि, शिवि, भीषम कर्ण ॥ ६३ ॥

(नोट)—ये दिव्यादिव्य दानी हैं।

मूल-भोज, विक्रमादित्य, नृप, जगदेव रणधीर।

दानिन हू के दानि दिन, इन्द्रजीत बलबीर ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—जगदेव = इन्द्रजीत के बड़े भाई थे। दिन = प्रतिदिन। बलबीर = अकबर के अमात्य बीरबर।

(यथा)

(गौरी को दान वर्णन)

मूल-पावक फणि, विष, भस्म, मुख हर पवर्गमय मान।

देत जु हैं अपवर्ग को, पारबती पति जान ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—फणि = सर्प। मुख = मुंडमाल। पवर्गमय = ऐसी वस्तुओं से युक्त हैं जिनके नाम प, फ, ब, भ, और म से प्रारंभ होते हैं। अपवर्ग = मोक्ष। ऊंची गति।

भावार्थ—महादेव जी तो पवर्गमय हैं अर्थात् उनके पास पावक, फणि, बिष, भस्म और मुंडमाल के सिवाय और है ही क्या जो देंगे; पर वे जो सबको मुक्ति देते हैं वह केवल पार्वतीपति होने के कारण जानो अर्थात् पार्वती ही सबको मुक्ति देती हैं, पर उसे भी संकोचवश स्वयं न देकर अपने पति के हाथों दिलवा देती हैं। वे सकुचती हैं कि ऐसी छोटी चीज़ हम क्या दें (बड़े लोग तुच्छ वस्तु देने में सकुचते है और दूसरे के हाथों दिलवा देते हैं)।

(नोट)—मुक्ति सरीखे पदार्थ को जो तुच्छ समझ कर निज हाथों देने में सकुचता हो वह कैसा संपत्तिवान दानी होगा इसका अनुमान पाठक स्वयं करलें।

(गणेश जू को दान वर्णन)

मूल—बालक मृनालनि ज्यों तोरि डारे सबकाल,

कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।

बिपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,

पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष को।

दूरि कै कलंक अंक भव सीस ससि सम,

राखत हैं केशोदास दास के बपुष को।

सांकरे की सांकरन सनमुख होत तोरै,

दशमुख मुख जोवै गजमुख मुख को॥ ६६॥

(नोट)—इसकी टीका 'केशवकौमुदी' में लिख चुके हैं।

(महादेव जू को दान वर्णन)

मूल—कांपि उठो आपनिधि तपनहिं ताप चढ़ी,
सीरिये शरीर गति भई रजनीश की।
अजहूं न ऊंचो चाहै अनल मलिन मुख,
लागि रही लाज मुख मानौ मन बीस की।
छबि सो छबीली लच्छि छाती में छपाई हरि,
छूटिगई दानि गति कोटि हू तेंतीस की।
केशोदास तेही काल कारोई ह्वै आयो काल,
सुनत श्रवण बकसीस एक ईश की॥ ६७॥

शब्दार्थ—आपनिधि = समुद्र। तपन = सूर्य। ताप = ज्वर। रजनीश = चंद्रमा। लच्छि = लक्ष्मी। बकसीस = दान।

भावार्थ—श्रीमहादेव जी ने किसी अपने भक्त को एक वस्तु बकसीस में देने का बरदान दिया। इसबात की खबर सुनकर समुद्र काँप उठा (कि कहीं मेरे रत्न देकर मेरा रत्नाकर नाम ही न मिटा दें) सूर्य को भय से ज्वर चढ़ आया (कि कहीं हमारा घोड़ा न दे डालें) और चंद्रमा का शरीर तो ठंढाही पड़ गया कि कहीं मेरा अमृत न दे डालें तो मेरा सुधाकर नाम ही मिट जाय)। उसी भय से अग्नि देव मलीन मुख होकर आज तक ऊंचे नहीं हेरते और मुख पर मानो बीसों मन लज्जा की कारिख लगी रहती है (अग्नि की लपट सीधी ऊंची नहीं जाती और मुख से कारिख निकलती है)। विष्णु ने डर से लक्ष्मी को छाती में छिपा लिया (कि कहीं इन्हीं को न दे डालें) और तेंतीस कोटि देवों की दानशीलता

सब भूल गई। और उसी समय काल भी भय से काला पड़ गया (कि कहीं मुझे ही उसका दास न बना दें)।

(ब्रह्मा को दान वर्णन)

मूल—आशीबिष, राकसन, दैयतन दै पताल,
सुरन, नरन दियो दिवि, भू, निकेतु है।
थिर चर जीवन को दीन्ही बृत्ति केशोदास,
दीबे कहूँ कहौ कहा और कोऊ हेतु है।
सीत, बात, तोय, तेज आवत समय पाय,
काहू पै न नाको जाय ऐसो बांधो सेतु है।
अब तब जब कब, जहां तहां देखियत,
बिधि ही को दीन्हो सब सब ही को देतु है ॥६८॥

शब्दार्थ—आशीविष = सर्प। दिवि = स्वर्ग। भू = पृथ्वी। बृत्ति = जीविका; रोज़ी। दीबे ... हेतु = बतलाओ तो, क्या देने का कोई और भी कारण है अर्थात् केवल जीविका के हेत ही तो सारा दान होता है—सो ब्रह्मा ने जीविका सबको दी ही है। सीत = सरदी। बात = हवा। तोय = पानी। तेज = प्रकाश। सेतु = मर्यादा। अब तब जब कब = वर्तमान, भूत; भविष्य। जहां तहां देखियत = जहां देखते हैं तहीं।

भावार्थ—सर्पों, राक्षसों और दैत्यों को पाताल लोक दिया, देवों को स्वर्ग और नरों को भूलोक बसने को दिया। चराचर जीवों को जीविका दी, बतलाओ तो और क्या दिया जाता है (रहने का स्थान और जीविका यही तो सर्वस्व है) सरदी, गरमी हवा, पानी समय समय पर मिलते ही हैं,

इनके मिलने की ऐसी मर्यादा बांधदी है कि कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। भूत, भविष्य, वर्तमान में जहां कहीं दान देखा जाता है वह सब ब्रह्मा ही का दिया तो है (ब्रह्मा ही की दी हुई वस्तु सब को सबकोई देते हैं)

(गिरा को दान वर्णन)

मूल–बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय.
ऐसी मति उदित उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तप वृद्ध,
कहि कहि हारे सब कहि न काहू लई।
भावी, भूत, वर्तमान जगत बखानत है,
केशोदास क्योंहू न बखानी काहू पै गई।
बर्णै पति चारि मुख, पूत बर्णै पांचमुख,
नाती बर्णै षटमुख तदपि नई नई॥ ६९॥

शब्दार्थ—बानी = सरस्वती। उदार = बड़ी। हारे = थकगये। क्योंहू = किसी तरह। पति = ब्रह्मा। पूत = महादेव। नाती = षटमुख। तदपि = तौभी।

भावार्थ—स्पष्ट है। (टीका केशव कौमुदी में देखिये)।

(सूर्य को दान वर्णन)

मूल–बाधक बिबिधि ब्याधि त्रिबिध, अधिक आधि,
बेद उपवेद बध बंधन बिधानु हैं।
जग पारावार पार करत अपार नर,
पूजक परम पद पावत प्रमानु हैं।

पुरुष पुरान कहैं पुरुष पुराने सब,
पूरण पुराण सुने निगम निदानु हैं।
भोगवान भागवान भगतन भगवान,
करिवे को केशोदास भानु भगवानु हैं ॥७० ॥

शब्दार्थ—त्रिबिधि व्याधि=दैहिक, दैविक, भौतिक कष्ट। वेद…विधानु हैं=वेदों और उपवेदों को बध कर डालने वा स्थगित कर कर देने का विधान हैं (यदि सूर्य देव चाहें तो वैदिक क्रियाएं होने दें, न चाहें न होने दें)। पारावार=समुद्र। पूरण…निदानु हैं=ऐसा सुना है कि संपूर्ण पुराणों के पथ पर लोगों को चलाने के लिये सूर्य ही प्रधान कारण है (सूर्य उदय हों तो पौराणिक क्रियाएं हों, न उदय हों तो स्थगित रहें)। भगवान=(१) शक्तिमान। (२) षड़ैश्वर्य संपन्न।

भावार्थ—सूर्य देव असंख्य त्रिविधि व्याधियों के नाशक हैं। आधि (मानसिक दुःख) को तो अधिकतर रोकते हैं, वेदों और उपवेदों के लिये तो बध और बंधन तक के विधायक हैं (वैदिक कृत्य सर्वथा सूर्य की चाल पर निर्भर हैं)। सूर्य देव के पूजक असंख्य जन भवसागर पार करते हैं और निश्चय परमपद पाते हैं। सब पुराने लोग सूर्य को सर्वश्रेष्ठ पुरुष कहते हैं, और मानते हैं कि सम्पूर्ण पुराणों के मार्ग को चलाने के मूल कारण हैं (पुराणानुमोदित कृत्य भी सूर्य की चाल पर निर्भर है) अपने भक्तों को भोगवान, भाग्यमान और शक्तिशाली बनाने में सूर्य देव पूर्ण क्षमता रखते हैं।

(परशुराम जू को दान वर्णन)

मूल—जो धरनी हिरनाछ हरी बर यग्यबराह छिनाय लई जू।

जालगि केशव भारत भो भट पारथ जीवन बीज बई जू।
मानव दानव देवन के जु तपोबल केहूं न हाथ भई जू।
सात समुद्रन मुद्रित राम सु बिप्रन बार अनेक दई जू॥७१॥

शब्दार्थ = हिरनाछ = हिरण्याक्ष। भट···बई जू = बीर अर्जुन ने जिस पृथ्वी को जीवों के बीज से बोया अर्थात् इतने जीवों को मारा कि उनके प्राणों से सारी पृथ्वी खेत की तरह बो गई। केहूं = किसी प्रकार। न हाथ भई = अधिकार में न रही। मुद्रित = वेष्ठित। राम = परशुराम।

भावार्थ—स्पष्ट है।

(श्री रामचन्द्र को दान वर्णन)

मूल पूरन पुराण अरु पुरुष पुराने परि-
पूरन बतावैं न बतावैं और उक्ति को।
दरसन देत जिन्हें दरसन समझैं न,
नेति नेति कहैं वेद छांड़ि भेद युक्ति को।
जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम,
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देइ अनिमाहि, गुन देइ गरिमाहि,
भक्ति देइ महिमाहि नाम देइ मुक्ति को॥७२॥

(नोट)—केशव कौमुदी के प्रथम प्रभाव में इसकी टीका देखो।

(पुनः)

जो सतयज्ञ करे करी इन्द्र सों सो प्रियता कपिपुंज सों कीनी।
ईशदई जु दये दस सीस सुलंक बिभीषणै ऐसहि दीनी।

दान कथा रघुनाथ की केशव को बरनै रस अद्‌भुत भीनी।
जो गति ऊरधरेतन की सु तौ औध के सूकर कूकर लीनी ॥७३॥

शब्दार्थ—प्रियता = प्यार वा प्रेम। ऐसहि = बिना कुछ लिये, मुफ्त। रस अद्भुत भीनी = बड़ी अद्भुत। ऊरधरेता = योगी जन। औध = अवध, अयोध्या।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(राजा बलि को दान वर्णन)

कैटभ सो, नरकासुर सो, पलमें मधु सो, मुर सो जेहिं मारयो।
लोक चतुर्दश रक्षक केशव पूरण वेद पुराण विचारयो।
श्री कमला-कुच-कुंकुममंडन पंडित, देव अदेव निहारयो।
सो कर मांगन को बलि पै करतारहु को करतार पसारयो ॥७४॥

भावार्थ—जिस हाथ ने कैटभ, नरकासुर, मधु, तथा मुर नामक बली दैत्यों को एक क्षणमात्र में मारडाला, जो हाथ चौदहो लोकों का रक्षक है, ऐसा चारो बेद कहते हैं। जो हाथ कमला के कुचमंडल में केशर लगाने में बड़ा पंडित है और जिसे देव और असुर सब ने देखा है, ब्रह्मा को भी पैदा करने वाले ईश्वर ने वही हाथ बलि के सामने मांगने के लिये फैलाया—ईश्वर भी जिसके द्वार पर मांगने आये वह अवश्य बड़ा दानी होगा।

(राना अमरसिंह को दान वर्णन)

मूल—कारे कारे तम कैसे प्रीतम सुधारे विधि,
बारि बारि डारे गिरि केशोदास भाखे हैं।

थोरे थोरे मदनि कपोल फूले थूले थूले,
डोलैं जल थल बल थानुसुत नाखे हैं
घंटे घननात, छननात घने घुंघुरून,
भौंर भननात भुवपति अभिलषे हैं।
दुवन दरिद्र दल दलन अमरसिंह,
ऐसे ऐसे हाथी ये हथ्यार करि राखे हैं ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—तम कैसे प्रीतम = राहु के मित्र से। थानुसुत = (स्थाणुसुत) गणेशजी। नाखे हैं = उल्लंघन कर गये हैं, बढ़ गये हैं। दुवन = दुर्जन (बुरा)। अमरसिंह = उदयपुर वाले महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र।

भावार्थ—काले काले रंग के, जिन्हें ब्रह्मा ने राहु के मित्र सम बनाया है, जिन पर पहाड़ निछावर कर दिये जा सकते हैं, थोड़े थोड़े मद से जिनके कपोल खूब फूले हुए हैं, जो थल तथा जल में घूमते फिरते हैं और जो बल में गणेश से भी बढ़कर हैं। जिनपर घंटे घमनाते हैं, घुंघुरू छनछन बजते हैं, भौंरे गुंजारते हैं, जिनके पाने की राजा लोग अभिलाषा रखते हैं। ऐसे ऐसे हाथियों को राणा अमरसिंह ने, दीनों के बुरे दरिद्रदल को मारने के लिये हथियार बना रखा है (हाथी दान से गरीबों का दरिद्र दूर करते हैं)।

(राजा बीरबल को दान वर्णन)

मूल-पापके पुंज पखावज केशव, शोक के शंख सुने सुखमा में।
झूंठ के झालरि झांझ अलोक के, आवझ यूथन जाने जमा में।

भेद की भेरी, बड़े डर के डफ, कौतुक भो कालि के कुरमा में ।
जूझत ही बलबीर, बजे बहु दारिद के दरबार दमा में ॥ ७६ ॥

शब्दार्थ—पखावज = मृदंग । अलोक = बदनामी, निंदा । आवझ = बाजा विशेष, ताशा । भेरी = डुगडुगिया । कुरमा = कुटुम्ब । दमामा = नगाड़ा ।

भावार्थ—राजा बीरबल के मरते ही कलि के घर में बड़ा उत्सव मनाया गया अर्थात् पाप के पखावज, शोक के शंख, झूठ की झालरें, और निंदा की झांझें बजी, और अन्यान्य कुभावों के ताशों के समूह भी वहां मैंने ढेर देखे । भेद की नगरिया और डर के डफ भी बजे, और एक बात यह भी हुई कि दरिद्र के दरबार में खुशी के नगाड़े बजे (राजा बीर बल दरिद्र का शत्रु था, अतः उनके जूझने पर उसे आनन्द हुआ, अर्थात् राजा बीरबर बड़े दानी थे)

छठां प्रभाव समाप्त ।

सातवां प्रभाव

[भूमि-भूषण वर्णन]

(अर्थात्)

भूतल पर के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन

मूल—देश, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल।
रवि, शशि, सागर, भूमि के, भूषण ऋतु, सब काल ॥१॥

भावार्थ—देश, नगर, बन (तथा उपबन), बाग, पर्वत, मुनियों के आश्रम, नदी, सरोवर, सूर्य (सूर्योदय तथा सूर्यास्त) चन्द्र (चंद्रोदय तथा चंद्रास्त), समुद्र, षटऋतु, तथा बारहो महीने (और उन महीनों के अंतर्गत त्यौहार वा विशेष उत्सव)—इनके वर्णनों को भूमि-भूषण कहते हैं।

(देश वर्णन)

मूल—रतनखानि, पशु, पच्छि, बसु, बसन सुगंध सुबेष।
नदी, नगर, गढ़, बरनिये भाषा, भूषण देश ॥२॥

भावार्थ—किसी देश के वर्णन में इतनी वस्तुओं का वर्णन ज़रूरी है:—रत्नखानि, पशु, पक्षी, धन, कपड़े, सुगन्ध सौन्दर्य, नदी, नगर, गढ़, भाषा और पहरावा।

(यथा)

मूल—आछे आछे असन, बसन, बसु, बासु, पशु,
दान, सनमान, यान, बाहन बखानिये।

लोग, भोग योग, भाग, बाग, राग, रूपयुत,
भूषनानि भूषित, सुभाषा मुख जानिये ॥
सातो पुरी तीरथ, सरित, सब गंगादिक,
केशोदास पूरण पुराण, गुन गानिये ।
गोपाचल ऐसे गढ़, राजा रामसिंह जू से,
देशनि की मणि, महि मध्यदेश मानिये ॥३॥

शब्दार्थ—वासु = घर, मकान । यान = पालकी, हाथी, घोड़े रथादि । भोगयोग = भोग सामग्री । राग = संगीत । मध्य-प्रदेश = वह देश जिसे अब ... कहते हैं । 'चन्देरी' नगर में इस देश की राजधानी थी । राजा रामसिंह जी वहीं रहते थे । गोपाचल = अनुमान से ग्वालियर जान पड़ता है ।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है (इस छंद में उसी देश का वर्णन समझिये जहां रामसिंह जी राज्य करते थे) ।

(नगर वर्णन)

मूल—खाई, कोट, अटा, ध्वजा, वापी कूप, तड़ाग ।
बारनारि, असती, सती, बरनहु नगर सभाग ॥४॥

शब्दार्थ—कोट = शहरपनाह । बारनारि = वेश्या । असती = परकीया । सती = स्वकीया । सभाग = हिस्सेदार ।

(नोट)—प्राचीन साहित्य में नगर के कई विशेष भागों का वर्णन पाया जाता है, जैसे (१)-राजनिवास भाग (२)-ब्रह्मनिवास भाग (३)-क्षात्रनिवास भाग (छावनी), (४)-वैश्यनिवास भाग (हाट, बाजार), (५)-शूद्रनिवास भाग, (६)-पशुपालनिवास भाग (७)-राजसेवकनिवास भाग इत्यादि इत्यादि ।

(यथा)

मूल—चहूंभाग बाग वन मानहु सघन घन,
सोभा की सी शाला, हंस माला सी सरित वर ।
ऊंचे ऊंचे अटनि पताका अति ऊंची जनु,
कौशिक की कीन्ही गंगा खेलत तरल तर ॥
आपने सुखनि आगे निन्दत नरेन्द्र और,
घर घर देखियत देवता से नारि नर ।
केशोदास त्रास जहां केवल अदृष्ट ही को,
बारिये नगर और ओरछा नगर पर ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—चहुंभाग = चारो ओर । सरितवर = बेतवा नदी । कौशिक की कीन्ही गंगा = विश्वामित्र को निकाली हुई कौशिकी नदी । अदृष्ट = प्रारब्ध कर्म । बारिये = निछावर कर दीजिये ।

भावार्थ—सरल है ।

(बन वर्णन)

मूल—सुरभी, इभ, बन जीव बहु भूत प्रेत भय भीर ।
भिल्ल भवन, बल्ली बिटप, दव बरनहु मतिधीर ॥६॥

शब्दार्थ—सुरभी = चमरी गाय । इभ = हाथी । दव = दावाग्नि ।
(नोट) बन वर्णन में इतनी वस्तुओं का वर्णन करना उचित है ।

(यथा)

मूल—केशोदास ओरछे के आसपास तीसकोस
तुंगारण्य नाम बन बैरी को अजीत है ।

बिंध्य कैसो बंधु बर बारन बलित, बाघ,
बानर बराह बहु, भिल्लन अभीत है ॥
यम की जमाति किधौं जमावंत कैसो दल,
महिष सुखद स्वच्छ रिच्छन को मीत है ।
अचल अनलवंत, सिंधु सुरसरितयुत,
शंभु कैसो जटाजूट परम पुनीत है ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—बारन = हाथी । भिल्लन अभीत है = भिल्लों को अभय प्रद है । स्वच्छ = स्वछंदचारी । अचल = पहाड़ । अनलवंत = (१) आगवाले, ज्वालामुखी । (२) भिलावां के वृक्षों से युक्त । (नोट) तुंगारण्य में कोई ज्वालामुखी पर्वत नहीं, पर केशव ने अपने पांडित्य से वहां के पर्वतों को 'अनलवंत कह कर बड़ा काम किया है । सिंधु = उस देश में सिंधु नाम की एक नदी है जो बुंदेलखंड और ग्वालियर राज्य की सरहद्दी नदी है । सुरसरित = (स्वर्सरित) गंगा ।

भावार्थ—तुंगारण्य नामक बन, जो ओरछे के इर्द गिर्द तीस तीस कोस तक चारो ओर फैला हुआ है, शत्रुओं के लिये अजीत है । वह बन विंध्यारण्य का भाई सा है (उसी के समान है) वहां हाथी, बाघ, बानर, बाराह बहुतायत से हैं और वह बन भिल्लों को अभयप्रद है—(लुटेरे भील वहां छिपे रहते हैं, उन्हें कोई पकड़ नहीं सकता)। यमराज की सेना के समान अच्छा भैसों के लिये वह बन सुखद है अथवा जामवंत के से गण स्वछंदचारी रीछों का मित्र है । वहां के पर्वत अनलवंत हैं (भिलावां वृक्षों से युक्त हैं) और सिंधु नामक नदी, (गंगा सम पवित्र) वहां बहती है जिससे जान पड़ता

है कि वह बन शंभु के जटा जूट सम पवित्र है—(शिवमस्तक पर भी अनल और गंगा हैं, यहां भी अनल और सिंधु हैं)।

(बाग वर्णन)

मूल—ललित लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल कलरव, मोर।
बरनि बाग अनुराग स्यों, भँवर भँवत चहुँ ओर ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—कलरव = कबूतर। अनुराग स्यों = जिसको देखकर अनुराग पैदा होता है (कवि को ऐसाही कहना चाहिये) यथाः—

देखि बाग अनुराग उपज्जिय। (रामचंद्रिका)
बागतड़ाग बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत—(तुलसी)

मूल—सहित सुदरशन करुणाकलित कम-
लासन बिलास मधुबन मीत मानिये।
सोहिये अपर्णा रूपमंजरी औ नीलकंठ
केशोदास प्रगट अशोक उर आनिये।
रंभा स्यों सदंभ बोलै मंजुघोषा उरबसी,
हंस फूले सुमनसु सब सुखदानिये।
देव को दिवान सो प्रबीणराय जू को बाग,
इन्द्र के समान तहां इन्द्रजीत जानिये ॥ ९ ॥

(नोट)—नियमोपमा द्वारा इस कवित्त में केशवजी प्रबीणराय के बाग को देव सभासम कहते हैं (देखो प्रभाव १४ छंद नं० २१, २२)

शब्दार्थ—(देवसभा संबंधी)—सहित सुदर्शन करुणाकलित = सुदर्शन चक्र सहित करुणाकर बिष्णु। कमलासन = ब्रह्मा।

मधुवनमीत = कृष्ण । अपर्णा = पार्वती । रूपमंजरी = पार्वती की सखी । नीलकंठ = शिव । केशवदास = नारद, भृगु, सनकादि । अशोक = आनंदित । रंभा, मंजुघोषा, उर्वशी = अप्सराएं विशेष । हंस = सूर्य । फूले सुमनस = आनंदित मन देवता ।

(बाग संबंधी)—सुदर्शन = पुष्प विशेष । करुणा = वृक्ष-विशेष । कमलासन = कमल और असना (विजयसार का वृक्ष)। मधुवनमीत = बधुबन का मित्र सा है । अपर्णा = करील वृक्ष । रूपमंजरी = सदा सोहागिन नामक पुष्प वृक्ष विशेष । नीलकंठ = मोर, चाष और कबूतर विशेष । अशोक = वृक्ष विशेष । रंभा = केला । मंजुघोषा = कोयल । उरबसी = जिसकी काकली उर में बस जाती है । हंस = मराल । सुमन = फूल ।

भावार्थ—देव सभा में सुदर्शन चक्रलिये विष्णु रहते हैं, तो यह बाग भी सुदर्शन और करुणा से युक्त है। वहां कमलासन (ब्रह्मा) का बिलास है तो यहां भी कमलों और अशना (विजयसार) का सौन्दर्य है । वहां मधुवनमीत (कृष्ण) रहते हैं, तो यह बाग भी स्वयं मधुबन का मित्र है (समान है) वहां देवसभा में रूपमंजरी और पार्वती सहित शिव रहते हैं तो यह बाग भी करील, सदासोहागिल और मोर वा चाष युक्त है। वहां आनंदित हृदय हरिभक्त जन हैं तो यहां भी अशोक वृक्ष हैं। वहां रंभा, मंजुघोषा और उर्बशी आदि अप्सराएं सगर्व बातें करती हैं, तो यहां भी केला वृक्ष हैं और कोयल बोलती है जिसकी काकली श्रोता के हृदय में बस जाती है। वहां सूर्य हैं तो यहां भी हंस पक्षी हैं (बाग के सरोवर में)। वहां आनंदित देवता हैं तो यहां भी पुष्प फूले हुए हैं जो सब को सुख देते हैं। अतः यह प्रवीणराय का बाग

देवसभा सम है, और जैसे वहां सभा में इन्द्रदेव रहते हैं वैसेही यहां राजा इन्द्रजीत को समझिये।

(गिरि वर्णन)

मूल—तुंग शृंग, दीरघ दरी, सिद्ध सुंदरी, धातु।

सुर, नर युत गिरि वर्णिये, औषध, निर्झरपातु ॥१०॥

शब्दार्थ—तुंग शृंग = ऊंची चोटी। दीरघ दरी = गहरी गुफा। सिद्धसुंदरी = सिद्धों की स्त्रियां। धातु = लोहा, सोना, गेरू, मनशिल इत्यादि। औषध = जड़ी बूटी। निर्झरपात = झरनों का ऊपर से गिरना।

(यथा)

मूल—रामचन्द्र कीन्हे तेरे अरिकुल अकुलाय,

मेरु के समान आन अचल घरीनि में।

सारो शुक हंस पिक कोकिला कपोत मृग,

केशोदास कहूं हय करभ करीनि में।

डारे कहूं हार टूटे राते पीरे पट छूटे,

फूटे हैं सुगंध घट श्रवत तरीनि में।

देखियत शिखर शिखर प्रति देवता से,

सुंदर कुँवर अरु सुंदरी दरीनि में ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—आन अचल = अन्य पहाड़ों को। घरीनि में = केवल कई एक घड़ियों में (अति अल्प समय में) करभ = हाथी का बच्चा। करीनिमें = हाथियों मय (अश्व, करभ और हाथी इत्यादि पशुओं से युक्त वा पूर्ण) डारे = पड़े हुए हैं। राते = लाल। श्रवत = बहते हैं। तरीनि में = पहाड़ की तरहटी में। दरीनि में = गुफाओं में।

भावार्थ—हे रामजी ! तुम्हारे शत्रुओं ने व्याकुल होकर अन्य पहाड़ों को भी अत्यल्प समय में मेरु सम बना दिया है। उन पहाड़ों को (अपने साथ लाये हुए) सारिका, शुक, हंस, पिक कोकिला, कपोत, मृग घोड़ा और बच्चों सहित हाथियों से भर दिया है। कहीं हार टूटे पड़े हैं, कहीं लाल पीले कपड़े छूटे पड़े हैं, कहीं सुगंध द्रव्य के घड़े फूट गये हैं जिनका द्रव पदार्थ तरहटी तक बह रहा है। प्रति शिखर पर उनके सुंदर राजकुमार देवता से दिखाई देते हैं, और गुफाओं में उनकी सुंदरी स्त्रियां दिखाई देती हैं।

(आश्रम वर्णन)

मूल—होम धूम युत बरनिये, ब्रह्मघोष मुनिबास।
सिंहादिक मृग मोर अहि, इभ, शुभ, बैर बिनास ॥१२॥

शब्दार्थ—ब्रह्मघोष = बेद पाठ का शब्द। इभ = हाथी। शुभ = जहां कल्याण ही है सब प्रकार से। बैरबिनास = स्वाभाविक बैर छूट जाता है। सिंह का मृग और हाथी से, मोर का सर्प से और इसी प्रकार और भी जीवों का स्वाभाविक बैर जहां नष्ट हो जाता है और पूर्ण शांति रहती है।

(यथा)

मूल—केशोदास मृगज बछेरू चूषैं बाघिनीन,
चाटत सुरभि बाघ बालक बदन है।
सिंहन की सटा ऐंचैं कलभ करनि करि,
सिंहन को आसन गयंद को रदन है।
फणी के फणनि पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहां मद न मदन है।

बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसन,

ऋषि को निवास कैधों शिव को सदन है ॥१३॥

शब्दार्थ—मृगज बछेरू = मृगों के बच्चे। चूर्षे = दूध पीते हैं। सटा = सिंह की गर्दन के बाल। कलभ = हाथी का बच्चा। करनि करि = सूंड़ों करके अर्थात् सूंड़ों से। बानर अंध तापसन डोरे डोरे फिरत = बानरगण अंधे तपस्वियों को उनके हाथ पकड़े जहाँ वे चाहते हैं लिये लिये फिरते हैं।

(नोट)—शिव की समाज में भी नंदी, सिंह, मोर, सर्प, चूहा, गणेश (गजमुख) इत्यादि विरोधी होकर भी मिल जुल कर शांति पूर्वक रहते हैं। इसी प्रकार तप बल से ऋष्याश्रम में भी यही हाल रहता है। (केशव कौमुदी प्रभाव २० छंद नं.४०)

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(सरिता वर्णन)

मूल—जलचर हय गय जलज तट यज्ञकुंड मुनिबास।

स्नान दान पावन नदी बरनिय केशव दास ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—हय = दरियाई घोड़ा। गय = दरियाई हाथी। तट = तट पर यज्ञकुण्ड और मुनिबासों का वर्णन होना उचित है।

(यथा)

मूल—ओरछे तीर तरंगिनी बेतवै ताहि तरै रिपु केशव को है।

अर्जुन बाहु प्रबाह प्रबोधित रेवा ज्यों राजन की रज मोहै।

ज्योति जगै यमुना सी लगै जगलोचन लालित पाप विपोहै।

सूर सुता शुभ संगम तुंग तरंग तरंगित गंग सी सोहै ॥१५॥

शब्दार्थ—अर्जुन बाहु प्रबाह प्रबोधित = (१) सहस्रार्जुन की भुजाओं से जिसका प्रवाह बढ़ाया गया था (रेवा नदी का)

(२) अर्जुन पाल नामक महोनी नरेश के हाथों जिसका प्रवाह बढ़ाया गया है (बेतवा नदी का)। राजन की रज मोहै = राजओं की राजसी जिसके सामने मूर्च्छित हो जाती है (कोई राजा जिस पर पुल नहीं बँधवा सकता)। जग-लोचन = (१) सूर्य (२) जगत के लोचन। विपोहै = छेद डालती है। सूरसुता = यमुना।

भावार्थ—ओरछे के निकट वाली बेतवा नदी ऐसी है कि उसे कोई शत्रु पार नहीं कर सकता। वह नर्मदा (रेवा) नदी के समान है, क्योंकि उसका प्रवाह सहस्रार्जुन द्वारा बढ़ाया गया था और इस बेतवा का प्रवाह अर्जुन पाल नामक बुंदेला नरेश द्वारा बढ़ाया गया है (दोनों नदियां 'अर्जुन' नामक राजाओं द्वारा सम्मानित हैं) जिसके सामने राजाओं की राजसी शान भूल जाती है। बेतवा नदी अपनी ज्योति के कारण (श्याम जल होने से) यमुना सी लगती है। यमुना सूर्य द्वारा लालित है, यह बेतवा जग के लोचनों से लालित है (जग जन प्रेमभाव से देखते हैं) और पापों को छेद डालती है (नाश कर देती है) और चूंकि यह बेतवा यमुना से मिली है (जैसे गंगा मिली है) और ऊंची तरंगों वाली है (जैसे गंगा है) इस कारण यह भी गंगा के समान शोभित है (गंगा के समान है)

(ताल वर्णन)

मूल—ललित लहर, बग, पुष्प, पशु, सुरभि समीर, तमाल।
करभ केलि पंथी प्रगट, जलचर बरनहु ताल॥ १६॥

शब्दार्थ—तमाल = यहां उप लक्षण मात्र समझना चाहिये

तात्पर्य अनेक प्रकार के वृक्षों से है। करभ = हाथी के बच्चे। पंथी = मुसाफिर।

(यथा)

मूल—आपु धरैं मल औरानि केशव निर्मल काय करैं चहुँ ओरैं।
पंथिन के परिताप हरैं हठि जे तरु तूल तनोरुह तोरैं।
देखहु एक सुभाव बड़ो बड़भाग तड़ागन को बित थोरैं।
ज्यावत जीवन हारिन को निजबंधन कै जगबंधन छोरैं॥

शब्दार्थ—चहुँओरैं = चारो ओर के घाटों पर। परिताप = दुःख कष्ट। तूल = (तुल्य) सम। तनोरुह = पुत्र। जेतरु...तोरैं = जो पुत्रवत लालित पालित वृक्षों के अंगों को तोड़ते हैं (बहुधा पंथी लोग कमलादिक पुष्प वा तट के वृक्षों की शाखाएं तोड़ लेते हैं जो उस ताल के लिये पुत्रवत् हैं)। बित थोरैं = थोड़ेही धन से। जीवनहारी = जल हरण करने वाले। निजबंधन कै = अपने घाट बँधवा कर। जग बंधन छोरैं = जग के लोगों को बंधन मुक्त करते हैं—(पुराणों में लिखा है कि जो ताल के घाट बँधवाता है उसको मुक्ति प्राप्त होती है)

भावार्थ—आप तो औरों के मल धोकर अपने शरीर में धारण करते हैं, पर चारो ओर के अन्य जनों को निर्मल काय कर देते हैं। जो मुसाफिर पुत्रवत् पुष्प वा वृक्षों की शाखाएं तोड़ते हैं उनके कष्टों को भी हर लेते हैं। बड़भागी तड़ागों के एक बड़े अच्छे स्वभाव को तो देखो कि जीवन (जल) हरण करने वाले को भी जिलाते हैं और जिन बंधन कराकर जग जन को बंधन से छोड़ाते हैं!

(सूर्योदय वर्णन)

मूल-सूर उदय ते अरुणता पय पावनता होय ।
शंख बेद धुनि मुनि करैं पंथ लगै सब कोय ॥ १८ ॥
कोक, कोकनद शोकहत, दुख कुवलय, कुलटानि ।
तारा, ओषध, दीप, शशि, घूक, चोर तम हानि ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—कोक = चक्रबाक । कोकनद = कमल । कुवलय = कुमुदिनी । तारा = तरैयां । ओषध = जड़ी बूटी (जो चंद्रमा से रस ग्रहण करती हैं) घूक = उल्लू पक्षी । तम = अंधकार वा पाप ।

(यथा)

मूल—कोकनद मोदकर मदन बदन किधौं,
दशमुख-सुख कुवलय दुखदाई है ।
रोधक असाधु जन, शोधक कै तमोगुण,
उदित प्रबुद्ध बुद्धि केशोदास पाई है ।
पावन करन पय हरिपद पंकज कै,
जगमगै मनु जगमग दरसाई है ।
तारापति तेजहर, तारका को तारक कै,
प्रगट प्रभातकर ही की प्रभुताई है ॥ २० ॥

शब्दार्थ—कोकनद = (१) कमल (२) कोकशास्त्रपाठी । कुवलय = (१) कुमोदिनी (२) पृथ्वीमंडल (कु + वलय) । रोधक = रोकने वाला । असाधुजन = पापी । तमोगुण = (१) पाप (२) अंधकार । प्रबुद्ध = बढ़ी हुई । पय = जल । तारा-पति = (१) चंद्रमा (२) बालि । तारका = (१) ताड़का

राक्षसी (२) तरैयां। तारक=(१) तारनेवाला (२) ताड़न करने वाला (विनष्ट करनेवाला) प्रभातकर=सूर्य। प्रभुताई=ईश्वरता, बड़ाई। तारका को तारक=श्री रामजी। (शब्द साम्य से अच्छा काम लिया गया है)

(नोट)—इस छंद में केशव संदेहालंकार द्वारा प्रभात का प्रभा का वर्णन ६ उपमाओं का सहारा लेकर विलक्षण बुद्धि-मानी से करते हैं। केशव इस गुण में बड़े दक्ष हैं।

भावार्थ—यह प्रभाकर की प्रभुताई है या (१) कामदेव का मुख है क्योंकि इन दोनों में समता यह है कि दोनों कोकनद को मोदकर हैं—(काम तो कोकशास्त्र पाठियों को मोदकर है और सूर्य कमलों को)। या यह (२) रावण का मुख है क्योंकि रावण का मुख पृथ्वीमंडल को दुखदाता है और सूर्योदय कुमुदों को। यह सूर्योदय की प्रभा है या किसी (३) ईश्वर भक्त की बढ़ी हुई बुद्धि है, क्योंकि बुद्धि भी पापी जनों को कुकर्म से रोकती और अंधकार को हटाती है। यह प्रभात की प्रभा है या (४) विष्णु के चरण कमल हैं क्योंकि दोनों जल को पवित्र करते हैं। यह प्रभातकाल है या (५) मनुजी की ज्योति जगमगाती है, क्योंकि दोनों जग मार्ग दिखलाने वाले हैं (मनु ने स्मृति रचकर धर्म का मार्ग दिखलाया, प्रभात तो प्रत्यक्षही सब पंथियों को मार्ग में लगाता है)। यह सूर्योदय का विभव है या (६) श्रीरामजी हैं, क्योंकि सूर्योदय चंद्रमा का तेज हरण करने वाला और तरैयों का विनाशक है और राम जी भी तारापति बालि का तेज हरने वाले और (तारका तारक) ताड़का को तारने वाले थे।

सोवत तेउ सुने इनहीं में अनादि अनन्त अगाध है एते।
अद्भुत सागर की गति देखहु सागर ही महँ सागर केते २५

शब्दार्थ—के=जल (यहां समुद्र)

भावार्थ—शेष पृथ्वी को धारण किये है, पृथ्वी समुद्र और विधि रचित सब जीवों को धारण किये हैं। ऐसे ऐसे चौदह लोक समुद्रों सहित हरि के एक एक रोम में हैं यह बात चित्त से समझने से जानी जाती है। समुद्र इतना अनादि अनन्त और अगाध है कि ऐसे हरि भी सुनते हैं, इसी समुद्र में सोते हैं। अतः सागर की यह अजीब गति तो देखो कि सागर ही में कितने सागर भरे पड़े हैं।

मूल—भूति बिभूति पियूषहु की बिष ईशशरीर कि पाप बिपोहै।
है किधौं केशव कश्यप को घर देव अदेवन के मन मोहै।
संत हियो कि बसैं हरि संतत शोभ अनन्त कहै कबि को है।
चन्दन नीर तरंग तरंगित नागर कोऊ कि सागर सोहै॥

शब्दार्थ—भूति=अधिकता। बिभूति=(१) धन रत्नादि (२) भस्म। ईश शरीर=महादेव की मूर्ति। पाप बिपोहै=पाप को छेदन करता है। चन्दन नीर तरंगित=(१) घिसे हुये चन्दन की रेखाओं से सुशोभित है शरीर जिसका (नागर के लिये) (२) जिसके जल की तरंगें चंदन से उमड़ती हैं। (नोट) प्राचीन काल में मलयगिरि पर्वत से चंदन काट कर नदियों द्वारा समुद्र में यहा लाया जाता था और वहां से जहाजों द्वारा अन्य स्थानों को जाता था, अतः पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र में बहुत से चंदन काष्ठ उतराया करते थे।

भावार्थ—यह समुद्र है या शंकर का शरीर है, क्योंकि जैसे शंकर शरीर में भस्म, सुधा, (सुधाकर) और विष की अधिकता है वैसेही इसमें भी रत्नादि, अमृत और बिष (जल) की अधिकता है और जैसे शिव शरीर के दर्शन से पाप नाश होता है वैसे ही इसके दर्शन से भी पाप का छेदन होता है। यह समुद्र है या कश्यप का घर है क्योंकि जैसे कश्यप के घर में देव और दैत्य रहते हैं वैसे ही समुद्र में भी रहते हैं। यह समुद्र है या संत का हृदय है क्योंकि यहां भी सदा हरि बसते हैं, संत हृदय में बसते हैं और इसकी ऐसी अनंत शोभा है कि कोई कवि कह नहीं सकता। यह समुद्र है या कोई नागर पुरुष है क्योंकि जैसे नागर पुरुष का शरीर चंदन की खौरों से युक्त होता है वैसेही इसका शरीर भी चंदन युक्त है।

(षट ऋतु वर्णन)

(बसन्त)

मूल—वरनि बसंत सपुष्प अलि, विरहि बिदारन बीर।
कोकिल कलरव कलित बन, कोमल सुरभि समीर ॥२८॥

भावार्थ—बसंत का वर्णन फूल, भौंरे, कोकिल, सुन्दरशब्द, बन और मंद सुगंधित बायु सहित करना चाहिये, क्योंकि यही वस्तुएं बिरही जनों को बिदीर्ण करने को वसंत के योद्धा हैं।

मूल—शीतल समीर शुभ गंगा के तरंगयुत,
अंबर बिहीन वपु बासुकि लसंत है।
सेवत मधुपगण गजमुख परभृत
बोल सुन होत सुखी संत औ असंत है।

अमल अदल रूप मंजरी सुपद रज,
रंजित अशोक दुख देखत नसंत है।
जाके राज दिसि दिसि फूले हैं सुमन सब,
शिवको समाज किधौं केशव बसंत है ॥२७॥

शब्दार्थ—(शिवसमाज पक्ष) अंबर = कपड़ा। वासुकि = सर्प। मधुप = देवता। परभृत = षटमुख। अदल = (अपर्णा) पार्वती। रूपमंजरी = सुंदरी। अशोक = शोक रहित जन। सुमन = देवता।

भावार्थ—(शिव का समाज कैसा है कि) जहां पवित्र कारिणी गंगाजी की तरंगों से मिल कर शीतल वायु बहा करती हैं, शिव का शरीर दिगम्बर है और सर्प की माला सोहती है। अनेक देवता, गणेश और षटमुख जिनकी सेवा करते हैं और जिनके बचन सुन कर संत और असंत (रावण वाणासुरादि) सब सुखी होते हैं। जहां बिमल चरित्रा सुंदरी पार्वती की चरणरज से लोग शोकरहित होजाते हैं क्योंकि वे चरण ऐसे हैं जिन्हें देख कर दुःख नाश हो जाते हैं। और जिन शिव के राज्य में देवता प्रफुल्लमन रहते हैं। अतः यह शिव का समाज है या बसंत है।

शब्दार्थ—(बसंत पक्ष)—शीतल = चंदन। गंगा के तरंग युत = गंगा की तरंगों में सनी अर्थात् ठंढी। अंबर = आकाश। बिहीनबपु = कामदेव। वासुकी = पुष्पमाला। परभृत = कोयल। अदल = सबसे बढ़कर। रूपमंजरी = सुन्दर स्त्री। अशोक = बृक्षविशेष (प्रवाद है कि सुन्दर स्त्रियों के पाद-प्रहार से अशोक बृक्ष फूलता है)

भावार्थ—(बसंत कैसा है कि) जिसके समय में चंदन बास युक्त और ठंढी बायु बहती है (मानो गंगा से मिलकर आई हो), आकाश, कामदेव और पुष्पमालाएं सब खूब लसते हैं, भौंरे हाथियों के मुखों का सेवन करते हैं (बसंत ही में हाथी मस्ताते हैं और उनके गंडस्थलों से गजमद बहता है, भौंरे उनको घेरे रहते हैं), कोयल बोलती है जिसके बोल सुन कर भले बुरे सब लोग सुखी होते है। निर्मल और अधिक सुन्दर स्त्रियों की पदरज से सुशोभित अशोक वृक्षों को देख कर (उनकी पदरज की बरकत से पुष्पित अशोकों को देख कर) दुःख दूर होते हैं, और जिसके राज्यकाल में सब प्रकार के फूल फूलते हैं। अतः यह बसंत है या शिव का समाज है।

(ग्रीष्म वर्णन)

मूल-ताते तरल समीर मुख सूखे सरिता ताल।

जीव अबल जल थल विकल ग्रीषम सफल रसाल ॥२६॥

शब्दार्थ—ताते = गर्म। तरल = चंचल (तेज चलने वाली)। मुखसूखे = लोगों के मुख सूखते हैं। रसाल = आंववृक्ष (केवल आंबही सफल होते हैं)

(यथा)

मूल-चंडकर कलित, बलित बर सदागति,

कंदमूल फल फूल दलनि को नासु है।

कीच बीच बचैं मीन, ब्याल बिल, कोलकुल,

द्विरद दरीन दिनकृत को बिलासु है॥

थिर चर जीवन हरन बन बन प्रति,

केशोदास मृगसिर श्रवन निवासु है।

धावत बली धनुस सोहत निपानि सर,
शवर समूह कैधौं ग्रीषम प्रकासु है ॥३०॥

शब्दार्थ—(शवर पक्ष में)–चंडकर कलित = बलवान भुजाओं से युक्त। बलित बर = बल से युक्त। सदागति = सदैव घूमने वाले। द्विरद = हाथी। दिनकृत = रोज़ रोज़ के काम। श्रवन = प्रस्रवन, खून का बहना या टपकना। निपानि सर = हाथ में अचूक बाण लिये हुए।

भावार्थ—(शवर समूह कैसा है कि) जिनकी भुजाएं खूब बलवती हैं, जिनके शरीर में बहुत बल है और जो सदा घूमाही करते हैं तथा जिनके द्वारा कंद, मूल, फल, फूल और पत्तों का नाश हुआही करता है। जिनके रोज़ रोज़ केवल यही काम है कि कीचड़ में निमग्न मछलियां, बिलों में घुसे सर्प, गुफा में छिपे शूकर समूह तथा हाथी क्या बचने पाते हैं (नहीं बचने पाते), बन बन घूमकर स्थावर जंगम जीवों का जीवन हरण करते हैं, और केशव कहते हैं कि जिनके निवासस्थानों में मृगों के सिरों से रक्त टपका करता है, जो धनुष और अचूक बाण हाथ में लिये दौड़ते फिरते हैं।

शब्दार्थ—(ग्रीष्म पक्ष में)–चंडकर = तीव्र किरण वाला सूर्य। बर = श्रेष्ठ। सदागति = हवा, वायु। दिनकृत = (दिनकर) सूर्य। बन = जल। मृगसिर श्रव न = जिस ग्रीष्म में न श्रवित होने वाला मृगशिर नक्षत्र पड़ता है (सूखा मृगशिरा नक्षत्र पड़ता है) बली = गैंडा नामक बन जंतु। धनुस = मरुस्थल। धनुस सोहत = मरुभूमि की तरह प्यासा वा हतबल। निपानि सर = जल रहित तड़ाग, सूखे सरोवर।

भावार्थ—(ग्रीष्म ऋतु कैसी है कि) प्रचंड तपने वाले सूर्य

और तेज बहने वाले वायु से युक्त है, और जो कंद मूल, फल फूल और पत्तों का काल ही है। सूर्य ऐसे तपते हैं कि उनकी गरमी के प्रभाव से शायद ही कीचड़ में धँसकर मछलियां, बिल में पैठकर सर्प, और गुफा में रहकर शूकर और हाथी बचजाते हों तो बचजाते हों (नहीं तो कोई जीव नहीं बचता)। बन के और जल के थिर तथा चर जीवों के पानी को सोखने वाली है, इस ऋतु में मृगशिरा नक्षत्र खूब तपता है (श्रवता नहीं बरसता नहीं)। मरुभूमि की तरह हतबल गैंड़े प्यास से व्याकुल सूखे तड़ागों की ओर दौड़ते हैं, और सरोवर जल रहित हो जाते हैं, अतः क्या यह ग्रीष्म का बिभव है? (ग्रीष्म में इतनी बातें अवश्य होती हैं)

(वर्षा वर्णन)

मूल—वर्षा हंस पयान, बक, दादुर, चातक, मोर।
केतकि पुष्प, कदंब, जल, सौदामिनि घन घोर॥२१॥

शब्दार्थ—हंसपयान = (१) हंसों का मान सरोवर को चला जाना (२) सूर्य का गायब रहना। घनघोर = (१) बादल की गरज (२) बादलों का समूह।

(यथा)

मूल—भौंहैं सुर चाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूख न जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है॥
केशोदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक-सबद सुखदाई है।

अंबर बलित मति मोहै नीलकंठ जू की,
कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है ॥३२॥

(नोट)—इसकी टीका 'केशव कौमुदी' के १३वें प्रकाश में १९वें छंद में देखिये। यही छंद वहां भी है।

(शरद वर्णन)

मूल—अमल अकास प्रकास ससि मुदित कमल कुल काँस।
पंथी पितर पयान नृप शरद सु केशवदास ॥ ३३ ॥

(यथा)

मूल—सोभा को सदन ससि बदन मदन कर,
बंदै नर देव कुबलय बरदाई है।
पावन पद उदार लसति हंसक मार,
दीपति जलजहार दिसि दिसि धाई है ॥
तिलक चिलक चारु लोचन कमल रुचि,
चतुर चतुरमुख जग-जिय भाई है।
अमल अंबर नील लीन पीन पयोधर,
केशोदास शारदा कि शरद सुहाई है ॥३४॥

(नोट)—इसमें शारदा और शरद दो पक्षों में अर्थ लगैगा।

शब्दार्थ—(शारदा पक्ष में)—मदन कर=जो मद (गर्व) नहीं उत्पन्न करता। कुवलय=(कु+वलय) भूगोल, पृथ्वीमंडल। हंसक=पगभूषण। मार=माल। जलजहार=मुक्ताहार। चतुरमुख=ब्रह्मा। अंबर=कपड़ा। अंबरनील=नीली साड़ी। पीनपयोधर=उतंग कुच।

भावार्थ—(शारदा पक्ष में)-शोभायुक्त चंद्र समान है मुख जिसका, पर जिसको अपनी सुंदरता का ज़रा भी घमंड नहीं होता, मनुष्य और देवता जिसकी बंदना करते हैं, और सारे भूमंडल को बल देने वाली है (अथवा वर देती है), जिसके पवित्र चरणों में अच्छे पगभूषण लसते हैं, और मोतियों के हार की चमक सब दिशाओं में फैलती है। जिसके तिलक की सुन्दर चमक है, नेत्र कमल समान हैं और जो चतुर ब्रह्मा तथा समस्त जगजीवों को भाती है, और नीलाम्बर में जिसके उतंग कुच छिपे हुए हैं। ऐसी शारदा है या शरद है ?

शब्दार्थ—(शरद पक्ष में)-शशि = चंद्रमा। मदनकर = कामोद्दीपक। नर देव वंदै = (१) जिस ऋतु में मनुष्य देवों की बंदना करते हैं (२) राजालोग जिसकी बंदना करते हैं (जिस ऋतु में राजा लोग दिग्विजय को निकलते हैं)। कुवलय = कमल वा कुमोदिनी। पद = स्थान। हंसकमार = हंसमाला, हंसों का समूह। जलजहार = कमलों का समूह। तिलक = एक वृक्ष विशेष जिसके फूल गुच्छेदार होते हैं। यह वृक्ष साल में दो बार फूलता है बसंत में और शरद में। इसी से इसका वर्णन दोनों ऋतुओं में होता है। कमल = जल। चतुरमुख = चारो ओर। अंवर = आकाश। पयोधर = बादल।

भावार्थ—(शरद कैसी है कि) शोभापूर्ण चंद्रमा ही जिसका मुख है, जिसे देखकर कामोद्दीपन होता है। जिसकी बंदना राजा लोग करते हैं और जो कमलों को बल देती है (पुष्ट करके बीज युक्त करती है) अच्छे अच्छे पवित्र स्थानों में (सरिता सरोवरादि में) हंसों के झुंड शोभा देते हैं और सब तरफ कमलों की छटा दिखाई पड़ती है। तिलक वृक्षों

के फूलों की चमक आँखों को रुचती है, चारो ओर के चतुर मनुष्यों को जल की निर्मलता अच्छी लगती है और समस्त जगजीवों को यह शरद भाती है। निर्मल नीले आकाश में (वर्षा काल के) बड़े बड़े बादल बिलीन हो गये हैं। ऐसी यह शरद ऋतु है कि शारदा है।

(हेमन्त वर्णन)

मूल—तेल, तूल, तांबूल, तिय, ताप, तपन रतिवंत।
दीह रयनि, लघु दिवस सुनि सीत सहित हेमंत ॥३५॥

शब्दार्थ—तूल = रुई। तांबूल = पान। ताप = अग्नि। तपन = सूर्य। इन वस्तुओं से लोग प्रेम करते हैं।

(यथा)

मूल-अमल कमल दल लोचन, ललित गति,
जारत समीर सीत, भीति दीह दुख की।
चंद्रक न खायो जाय, चंदन न लायो जाय,
चंद न चितयो जाय प्रकृति बपुष की॥
घट की घटति जाति घटना घटी हू घटी,
छिन छिन छीन छबि रबिमुख सुख की।
सीकर तुषार स्वेद सोहत हेमंत ऋतु,
किधौं केशोदास प्रिया प्रीतम बिमुख की ॥३६॥

(नोट)—इसमें हेमन्तऋतु और विरहिनी नायिका दोनों पक्ष का अर्थ घटित होगा।

शब्दार्थ—(हेमंत पक्ष)-लोच न = (रोच न) रोचकता नहीं है। ललित गति = धीरे धीरे। चंद्रक = जल। प्रकृति =

स्वभाव। वपुष=शरीर। घट की घटना=शरीर की चेष्टायें (हिलना डोलना, स्वाभाविक चलना फिरना) घटीहूघटी= प्रति घड़ी। सीकर तुषार=ओसकण। स्वेद=पसीना। प्रिया प्रीतम विमुख=विरहिनी। की=किधौं।

(भावार्थ)—निर्मल कमल दलों में रोचकता नहीं रह गई, ठंडी हवा उन्हें धीरे धीरे जलाये डालती है, सरदी के दुःख का बड़ा डर है। लोगों के शरीरों का ऐसा स्वभाव हो गया है कि ठंढ के कारण न तो पानी पिया जाता है, न चंदन लगाया जाता है, न चंद्रमा की ओर ताका ही जाता है। प्रति घड़ी शरीर की चेष्टाएं घटती जाती हैं (लोग चलना फिरना काम करना नहीं चाहते-निश्चेष्ट रहना पसंद करते हैं), सूर्य की मुख छबि प्रतिक्षण घटती है (सूर्य का तेज मंद पड़ता जाता है) और सुख की भी मुखछबि क्षीण होती है (कम सुख मिलता है-शीत से कष्ट अधिक होता है), (यदि किसी प्रकार स्वेदन क्रिया की जाय तो) पसीना निकलते ही सरदी से हिमकण बन जाते हैं, ऐसी सर्द हेमंत ऋतु है या विरहिनी नायिका है।

शब्दार्थ—(विरहिनी पक्ष)—ललित गति=सुन्दर चाल। घटना=रचना। रवि मुख=सूर्य सम तेजवान मुख। प्रीतम विमुख=विरहिनी।

भावार्थ—(कैसी विरहिनी है) विरहनी की यह दशा होती है कि उसके कमलदल वत् लोचनों को तथा उसकी सुन्दर गति को शीतल बायु जला देती है (निकम्मे कर देती है), उसे दुःख का बड़ा डर लगा रहता है। उसके शरीर की प्रकृति ऐसी हो जाती है कि उससे पानी नहीं पिया जाता,

चंदन नहीं लगाया जाता, चंद्रमा की ओर नहीं ताका जाता (इन कामों से उसकी विरह पीर अधिक बढ़ती है)। प्रति घड़ी शरीर की रचना घटती जाती है (अंग दुबले होते जाते हैं) उसके चमकीले मुख की कांति प्रति क्षण कम होती जाती है और सुख की मात्रा भी कम होती जाती है। विरह-दाह घटाने को यदि उसे तुषार कण खिलाए जायें तो उसे पसीना आता है (और अधिक दाहक होते हैं)।

(शिशिर वर्णन)

मूल—शिशिर सरस मन बरनिये, केशव राजा रंक।
नाचत गावत रैनि दिन, खेलत हँसत निशंक॥ ३७॥

भावार्थ—शिशिर में राजा और रंक के मनों का सरस होना, नाचना, गाना, हँसना खेलना वर्णन करना चाहिये (जैसा आजकल फागुन में होता है)

(यथा)

मूल—सरस असम सर सरासिज लोचनि, वि-
लोकि लोक लीक लाज लोपिबे को आगरी।
ललित लता सुबाहु जानि जून ज्वान बाल,
बिटप उरनि लागै उमँगि उजागरी।
पल्लव अधर मधु मधुपन पीवतही,
रचित रुचिर पिक रुत सुख सागरी।
इति विधि सदागति बास बिगलित गात,
शिशिर की शोभा किधौं बारनारि नागरी॥३८॥

शब्दार्थ—(शिशिर—शोभा पक्ष) सरस = अधिक (ऊंचे दर्ज के) । असम = जो बराबरी के न हों (नीचे दर्जे के) सर = (सरि) बराबर । सरसिज लोचनी = कमलनयनी स्त्रियां । लोकलीक = जगत की मर्यादा । आगरी = निपुण । जून = (पुराना) वृद्ध । उमँगि = उत्साह से । उजागरी = जाहिरा, प्रत्यक्ष । पल्लव = नवीन पत्र । मधु = मकरंद । मधुप = भौंरे । ही रचित = हृदय अनुरक्त होता है । पिकरुत = कोयल की बोली । इतिविधि = इस प्रकार की । सदागति = वायु । बास = सुगंध । विगलित = फैली हुई ।

भावार्थ—(शिशिर की शोभा कैसी है कि) ऊंच नीच लोग सब बराबर हो जाते हैं (ऊंच नीच स्त्री पुरुष का विचार छोड़ लोग होली फाग मिलकर खेलते हैं) कमलनयनी स्त्रियों को देखो कि वे लोक मर्यादा और लाज लोपने में निपुण हो जाती है। सुन्दर लताओं को बाहु जानो, वे बाहु बूढ़े, जवान और बाल वृक्षों से प्रत्यक्ष उमँग उमँग कर लपटती हैं । नये पत्ते ही होंठ हैं, पुष्प रस को पीते हुये भौंरों के हृदय उनके अनुराग से रच जाते हैं, और कोयल की सुन्दर बोली तो सुख का सागर ही है । शिशिर की शोभा इस प्रकार की है कि वायु के सब शरीर में सुगंध फैली रहती है (वायु सुगंधित होती है)

शब्दार्थ—(बारनारि पक्ष)—सरस = अधिक होता है । असमसर = (विषमशर) काम । अधर मधु = अधर रस । मधुप = शराबी लोग । वासविगलित गात = शरीर से सुगंध निकलती है ।

भावार्थ—(गणिका कैसी है कि) अधिक कामवती और

कमलनैनी है और देखिये कि लोकमर्यादा और लज्जा के लोपने में बड़ी निपुण है। अपना लतारूपी बाहुओं से बूढ़े ज्वान और बालक गुंडों के उरों से उमंग पूर्वक प्रत्यक्ष लपटती है। उसके अधर पल्लव का रस जब शराबी लोग पीते हैं तब वह हृदय से प्रसन्न होती है। सुन्दर पिकबैनी और सुख की सागर ही है। उसकी सदा यही गति रहती है और शरीर से सुगंध भी फैलती रहती है।

सातवाँ प्रभाव समाप्त

आठवां प्रभाव

(राज्य श्री भूषण वर्णन)

मूल–राजा, रानी, राजसुत, प्रोहित, दलपति, दूत।

मंत्री, मंत्र, प्रयान, हय, गय, संग्राम अभूत ॥ १ ॥

शब्दार्थ—राजसुत = राजकुमार। दलपति = सेनापति। प्रयान = दिग्विजय हेत सेना की रवानगी। अभूत = जैसा पहले कभी न हुआ हो, अपूर्व।

मूल–आखेटक, जलकेलि पुनि, बिरह, स्वयम्बर जानि।

भूषित सुरतादिकनि करि, राज्यश्री हि बखानि ॥२॥

शब्दार्थ—आखेटक = शिकार। सुरत = स्त्री प्रसंग।

(नोट)—राज्यश्री वर्णन में ऊपर लिखे विषयों का वर्णन जानना चाहिये।

(राजा वर्णन)

मूल–प्रजा प्रतिज्ञा, पुन्यपन, परम प्रताप, प्रसिद्धि।

शासन, नाशन शत्रु के, बल विवेक की वृद्धि ॥३॥

भावार्थ—राजा के वर्णन में प्रजारंजनता, दृढ़ प्रतिज्ञता, नियम से पुन्य करना, प्रताप, शोहरत, आज्ञा का आतंक, शत्रुनाशन-शक्ति, बल और विवेक की वृद्धि का ज़िक्र करना ज़रूरी है।

मूल–दंड, अनुग्रह, धीरता, सत्य, शूरता, दान।

कोष, देश युत वर्णिये, उद्यम, छमा निधान ॥४॥

शब्दार्थ—अनुग्रह = कृपा । कोष = खजाना । उद्यम = कुछ करते रहना (राज्य बढ़ाने वा दृढ़ करने में लगा रहना ।) छमा = माफ कर देना ।

(यथा)

मूल—नगर नगर पर घन ही तो गाजैं घोर,
ईति की न भीति, भीति अधन अधीर की ।
अरि नगरीन प्रति होत है अगम्या गौन,
भावै व्यभिचारी, जहां चोरी पर पीर की ॥
शासन को नासन करत एक गंधबाह,
केशोदास दुर्गनहीं दुर्गति शरीर की ।
दिसि दिसि जीति पै अजीति द्विज दीनानि सों,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ॥५॥

शब्दार्थ—ईति = सात प्रकार के उपद्रव जिनसे खेती की हानि होती है अर्थात् (१) अतिवृष्टि (२) अनावृष्टि (३) मूसों का लगना (४) टिड्डी का निकलना (५) शुकादि पक्षियों से हानि (६) प्रजाविद्रोह (७) विदेशी राजा का आक्रमण । यथा—

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः ।
स्वचक्रं परचक्रं च सप्तेता ईतयः स्मृताः ॥

अधन = प्रजा की निर्धनता । अगम्या गौन = (१) अगम्या स्त्रियों से प्रसंग करना, (२) अगम स्थानों में जाना । व्यभिचारी = (१) परस्त्रीगामी (२) साहित्य के ३३ संचारी भाव-असूया, ग्लानि, बिषाद, धृति, मति इत्यादि । शासन =

आज्ञा। गंधवाह=बायु। दुर्गति=टेढ़ापन, कुबड़ापन। दुर्ग=किला, गढ़।

भावार्थ—श्री राम जी की राजनीति से देश में ऐसा सुख है कि किसी नगर पर कोई शत्रु चढ़ाई नहीं करता, केवल बादल ही नगर घेर कर घोर गर्जन करते हैं। ईतियों का तो कोई भय नहीं, भय है तो केवल इस बात का कि कोई निर्धन न रहे और दरिद्र से अधीरहोकर कोई कुकर्म न कर बैठे। अगम्या-गमन केवल शत्रु के नगरों पर होता है (कैसाही दुर्गम नगर हो, पर रामसेना उसके भीतर पहुंच ही जाती है) राम के राज्य में नाम मात्र के लिये भाव ही व्यभिचारी हैं (अन्य कोई पुरुष व्यभिचार नहीं करता), चोरी केवल पर दुःख की होती है (लोग शौक़ से पर दुःख हरते हैं)। आज्ञा भंग केवल बायु ही करती है (अंतःपुर में चली जाती है अथवा सुगंध चोराले जाती है) और केवल गढ़ों के शरीर ही की दुर्गति है (टेढ़े मेढ़े हैं)। हर ओर रामजी की जीत ही होती है केवल ब्राह्मण और दीन जनों से राम जी हार मान लेते हैं।

(राजपत्नी वर्णन)

मूल—सुन्दरि, सुखद, पतिब्रता, शुचि रुचि, शील, समान।
याहि विधि रानी बरनिये सलज सुबुद्धि निधान ॥६॥

शब्दार्थ—शुचिरुचि=शृंगार में जिसकी रुचि हो, अथवा पवित्र रुचि वाली। समान=जिसे अपने उच्च पद का ध्यान हो। सलज=लज्जावती।

(यथा)

मूल—माता जिमि पोषति, पिता ज्यों प्रतिपाल करै,
प्रभु जिमि शासन करति, हेरि हिय सों।
भैया ज्यों सहाय करै, देति है सखा ज्यों सुख,
गुरु ज्यों सिखावै सीख हेत जोरि जिय सों।
दासी ज्यों टहल करै, देवि ज्यों प्रसन्न ह्वै,
सुधारै परलोक नातो नाहिं काहू बिय सों।
छाके हैं अयान मद छिति के छनक छुद्र,
औरनि सों नेह करैं छोड़ि ऐसी तिय सों॥७॥

शब्दार्थ—हेरि हिय सों=हृदय से अपना समझ कर। बिय=दूसरा। अयान=अज्ञान। मद छिति के=भूपाल होने के मद में। छनक छुद्र=क्षण बुद्धि और क्षुद्र।

भावार्थ—पहले चरण का भाव प्रजा और सेवक गण के संबंध में समझो। दूसरे चरण का भाव परिवार वर्ग के संबंध में जानो। तीसरे चरण का भाव पति के प्रति समझो। अर्थ सरल और स्पष्ट है।

(पुनः)

मूल—काम के हैं आपनेही कामरति, काम साथ,
रति न रतीकौ जरी, कैसे ताहि मानिये।
अधिक असाधु इन्द्र, इन्द्रानी अनेक इन्द्र
भोगवति, केशोदास बेदन बखानिये।
बिधिहू अबिधि कीनी, सावित्रीहू शाप दीनी,
ऐसे सब पुरुष युवति अनुमानिये।

राजा रामचंद्रजू से राजत न अनुकूल,
सीता सी न पतिव्रता नारी उर आनिये । ८ ॥

शब्दार्थ—कामके हैं अपनेही = निज निज स्वार्थ साधक हैं । न रतीको जरी = जरा भी न जली (सती न हुई) । असाधु = व्यभिचारी । अविधि कीनी = नियम विरुद्ध कार्य किया । सावित्री = सरस्वती । युवति = स्त्री । अनुकूल = अनुकूल नायक, एक पत्नीव्रत पुरुष । उर आनिये = समझिये ।

भावार्थ—श्री रामजी के समान एक पत्नीव्रत नायक और श्री जानकीजी समान पतिव्रता स्त्री अन्य कोई नहीं है । काम और रति तो निजस्वार्थी हैं (क्योंकि काम अनेक नारियों से भोग करता है और) काम के जलने पर रति उसके साथ सती न हुई, तब कैसे इनको राम जानकी समान मानें । इन्द्र तो बड़ाही व्यभिचारी है और इंद्रानी अनेक इंद्रों से भोग करती है यह बात वेद कहता है (इन्द्र बदलते जाते हैं, इन्द्रानी सदैव एकही रहती है) । ब्रह्मा ने भी नियम विरुद्ध काम किया (अपनी कन्या सरस्वती पर मन चलाया) और सरस्वती ने भी उन्हें शाप दिया (कि तुम्हारी पूजा प्रतिष्ठा न हो) और भी सब नर नारियों को इसी प्रकार अनुमान कर लिया, तो मालूम हुआ कि राम सा अनुकूल नायक और सीता समान पतिव्रता स्त्री कोई नहीं ।

(राजकुमार वर्णन)

मूल-विद्या विविध बिनोद युत, शील सहित आचार ।
सुंदर, शूर, उदार, बिभु, बरनिय राजकुमार ॥ ९ ॥

(यथा)

मूल—दानिन के शील, परदान के प्रहारी दिन,
दानवारि ज्यों निदान देखिये सुभाय के।
दीपदीप हू के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम केशोदास दास द्विज काय के।
आनँद के कंद सुरपालक से बालक ये,
परदार प्रिय, साधु मन बच काय के।
देह धर्म धारी पै बिदेहराज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के॥ १०॥

शब्दार्थ—दानिन के शील = दानियों का स्वभाव है। पर = शत्रु। दान के प्रहारी = ज़बरदस्ती दान लेनेवाले। दानवारि = विष्णु। निदान = अन्ततः। अवनीप = राजा। कंद = बादल। परदार = लक्ष्मी वा पृथ्वी।

भावार्थ—बड़े बड़े दानियों के से स्वभाव वाले हैं। सदैव शत्रुओं से दंडस्वरूप धनदान लेनेवाले हैं, और अंततः (विचार पूर्वक देखने से) विष्णु के से स्वभाव वाले हैं। समस्त द्वीपों के राजाओं के भी राजा हैं और राजा पृथु के समान चक्रवर्ती हैं, पर तोभी ब्राह्मण और गाय के सेवक हैं। आनंद बारि बरसानेवाले बादल हैं, ये बालक देवताओं के पालक से (इन्द्र समान) हैं, लक्ष्मी के वल्लभ हैं, पर मन बचन कर्म से शुद्ध हैं। देहधारी हैं, पर विदेह समान हैं। हे राजन्! ऐसे गुणवाले बालक अयोध्यापति राजा दशरथ के पुत्र हैं।

(पुरोहित वर्णन)

मूल–प्रोहित नृपहित, बेदवित, सत्यशील, शुचि अंग।
उपकारी, ब्रह्मराय, रिजु, जीत्यो जगत अनंग।

शब्दार्थ—बेदवित = बेदज्ञ। सत्यशील = सत्यवादी। ब्रह्मण्य = ब्रह्म में रत। रिजु = सरल सुभाव। जीत्यो जगत = जगत के बंधनों से मुक्त। जीत्यो अनंग = काम को जीत लिया हो, जितेन्द्रिय हो।

(यथा)

मूल–कीन्हो पुरहूत मीत, लोक लोक गाये गीत,
पाये जु अभूत पूत, अरि उर त्रास है।
जीते जु अजीत भूप, देस देस बहुरूप,
और को न केशोदास बलको बिलास है।
तोर्यो हर को धनुष, नृपगण गे विमुख,
देख्यो जु बधूको मुख सुखमा को बास है।
ह्वै गये प्रसन्न राम, बाढ़ो धन धर्म धाम,
केवल बशिष्ठ के प्रसाद को प्रकास है॥ १२॥

शब्दार्थ—पुरहूत = इन्द्र। अभूत पूत = ऐसे पुत्र जो कभी किसी के पुत्र नहीं हुए। सुखमा को बास = अति सुंदर। ह्वै गये प्रसन्न राम = परशुराम भी (जो स्वभावतः बड़ेही क्रोधी थे) प्रसन्न होकर गये।

भावार्थ–सरल और स्पष्ट है। भाव केवल यह है कि राजादशरथ को जो ऐसी बातें प्राप्त हुईं और राम जी जो ऐसे कार्य कर सके वह सब वशिष्ठ जी की प्रसन्नता का प्रभाव है।

(दलपति वर्णन)

मूल—स्वामिभक्त, श्रमजित, सुधी, सेनापति सु अभीत ।
अनालसी, जनप्रिय, जसी, सुख संग्राम अजीत ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—श्रमजित = जो थके नहीं, अथक । सुधी = अच्छी बुद्धि वाला । अभीत = निडर । अनालसी = जिस में आलस न हो । सुख संग्राम अजीत = जो सुख से न जीता जाय (सुख भोगी न हो) वा सुखका व्यसनी न हो, आराम परस्त न हो और संग्राम में जिसे कोई पराजित न कर सके ।

(यथा)

मूल—छांड़ि दियो अति आरस पारस केशव स्वारथ साथ समूरो ।
साहस सिंधु, प्रसिद्ध सदा जलहू थलहू बल बिक्रम पूरो ।
सोहत एक अनेकन माहिं, अनेक न एक विनां रन रूरो ।
राजत है तेहि राजको राज सु जाकी चमू में चमूपति सूरो १४

शब्दार्थ—आरस पारस = आलसियों का पार्श्व (संग)। समूरो = सब । बिक्रम = कोशिश, उद्योग । रूरो = अच्छा, शोभित ।

भावार्थ—जिसने आलस का संग और समस्त स्वार्थ छोड़ दिया हो (आलसी और स्वार्थी न हो) जो बड़ा साहसी हो, जलयुद्ध और थलयुद्ध में बल और उद्योग करने में जिसकी प्रसिद्धि हो, जो सैकड़ों में एकही वीर हो, और जिसके बिना अनेक बीर भी अच्छी प्रकार युद्ध न कर सकें । जिस की सेना में ऐसा शूर सेनापति हो, उसी राजा का राज्य शोभा पाता है ।

(दूत वर्णन)

मूल—तेज बढ़ै निज राज को अरि उर उपजै छोभ ।
इंगित जानै, समय गुण बरनहु दूत अलोभ ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—छोभ = कम्प । इंगित = इशारा, बात की मंशा (तात्पर्य) । समयगुण = समय का विचार राखै । अलोभ = निर्लोभी ।

(यथा)

मूल—स्वारथ रहित, हित सहित, विहित मति,
काम, क्रोध, लोभ, मोह, छोभ मद हीने हैं ।
मीत हू अमीत पहिचानिबे को, देश काल,
बुद्धि, बल ज़ानिबे को परम प्रबीने हैं ॥
आपनी उकति अति ऊपरी दै औरानि की,
दूर दूर दुरी मति लैलै वश कीने हैं ।
केशोदास रामदेव देश देश अरिदल,
राजनि को देखिबे को दूतै दृग दीने हैं ॥१६॥

शब्दार्थ—विहित मति = शुद्ध बुद्धि वाले । हीने = रहित । आपनी उकति अति ऊपरी दै = केवल अपनी ऊपरी बात बताते हैं । (अपना दिली भेद किसी से नहीं कहते) । दूतै दृग दीने हैं = दूत ही रूप आँखें लगाये रहते हैं (ऐसे उत्तम दूतों द्वारा सब जगह का हाल इस तरह जानते रहते हैं जैसे अपनी आँखों देखते हों)

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है ।

(मंत्री वर्णन)

मूल-राजनीति रत, राजरत, शुचि, सर्वज्ञ, कुलीन।
क्षमी, शूर, यश, शील युत मंत्री मंत्र प्रवीन ॥१७॥

शब्दार्थ—राजरत = राजभक्त। शुचि = पवित्र मन। क्षमी = क्षमतावान। यश शीलयुत = यशयुत और शीलयुत (यशी हो और शीलवान हो)।

(यथा)

केशव कैसहुँ बारिधि बाँधि कहा भयो रीछन सों छिति छाई।
सूरज को सुत, बालि को बालक, को नल नील, कही हम ठाई॥
को हनुमंत कितेक बली, यमहू पहँ जोर लई नहिं जाई।
भूषन भूषन, दूषन दूषन, लंक बिभीषन के मत पाई ॥१८॥

शब्दार्थ—सूरज को सुत = सुग्रीव। बालिको बालक = अंगद। कही हम ठाई = जो हमने सिखाया वही उन्होंने किया (मंत्र देने की योग्यता उनमें नहीं है) यम······जाई = जोर करके यमराज भी नहीं ले सकते थे। भूषन भूषन = अच्छी बात को मंडन करने वाला (यह शब्द विभीषण का विशेषण है)। दूषन दूषन = बुरी बात को खंडन करने वाला (यह भी बिभीषण का विशेषण है) मत = मंत्र, सलाह।

(नोट)—बिभीषण की प्रशंसा में श्री राम जी का वचन भरत प्रति।

भावार्थ—तीन चरणों का अर्थ बहुत सरल है। चौथे चरण का यह भाव है कि लंका हम बिभीषण के मंत्र से ले सके, जो बिभीषण भली बात के मंडन करने वाले और बुरी बात

के खंडन करने वाले अर्थात् सत्य और यथार्थ मंत्र देने वाले हैं।

(नोट)—'भूषन, भूपन, दूषन दूषन'—के अनेक लोग अनेक प्रकार के अर्थ करते हैं, पर वे अर्थ हमें नहीं जँचते, क्योंकि यह छंद मंत्री की प्रशंसा का है अतः ये शब्द मंत्री ही के विशेषण होने चाहिये :

(पुनः)

मूल—युद्ध जुरे दुरयोधन सों कहि को न करै यमलोक बसीत्यो।
कर्ण, कृपा, द्विज द्रोण, सो बैर कै काल बचै बल कीजै प्रतीत्यो ॥
भीम कहा बपुरो अरु अर्जुन नारि नँग्यावत ही बल रीत्यो।
केशव केवल केशव के मत भूतल भारत पारथ जीत्यो ॥१६॥

शब्दार्थ—बसीत्यो=बसती (निवासस्थान)। को न करै यमलोक बसीत्यो=यमलोक में कौन न बसेगा (कौन मारा न जाता)। काल बचै बल कीजै प्रतीत्यो=क्या ऐसा विश्वास हो सकता है कि काल अपने बल से बच जाता (न बचता) नारि नँग्यावत हो बल रीत्यो=स्त्री (द्रोपदी) को नंगी करते समय ही वे बलहीन हो गये थे। पारथ=(पृथा के पुत्र) युधिष्ठिर।

भावार्थ—दुर्योधन से युद्ध करके यमलोक कौन न जाता? कर्ण, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य से बैर करके क्या काल भी निज बल से बच जाता? भीम और अर्जुन की क्या हकीकत है, वे तो द्रोपदी-चीरहरण के समय ही हतबल हो चुके थे। केशवदास कहते हैं कि केवल कृष्ण के मंत्र से युधिष्ठिर ने भारत युद्ध में बिजय पाई।

(नोट)—यहां 'केशव' शब्द में ही कृष्ण की सारी विशेषता भरी है। 'केशव' शब्द का अर्थ है जो सबको प्रकाशित करे। युधिष्ठिर के यश को प्रकाशित करने की पूर्ण योग्यता कृष्ण ने दिखलाई जो मंत्री में होना चाहिये।

(मंत्र वा मंत्री मति वर्णन)

मूल—पंच अंग गुण संग षट, विद्यायुत दशचारि।
आगम संगम निगम मति, ऐसे मंत्र बिचारि ॥ २० ॥

शब्दार्थ—राजनीति के पांच अंग=(१) साहाय्य (२) साधन (३) उपाय (४) देशज्ञान और (५) कालज्ञान। षट्गुण= पर राष्ट्र के साथ व्यवहार करने के छ ढंग-(१) संधि-सुलह कर लेना, (२)-विग्रह-लड़ाई ठान देना (३) यान-चढ़ाई करने की धमकी देना (४) आसन-शत्रु के सामने सेना डटा देना। (५) द्वैधीभाव-मुख्य उद्देश्य गुप्त रखकर दूसरा उद्देश्य प्रगट करना। (६)-संश्रय-झूठा बहाना ढूंढ निकालना। दशचारि (चौदह) विद्या-(१) ब्रह्मज्ञान (२) रसायन (३) स्वरसाधन (४) वेदपाठ (५) ज्योतिष (६) व्याकरण (७) धनुर्विद्या (८) जलतरण (९) वैद्यक (१०) कृषिविद्या ।(११) कोकविद्या (१२) अश्वारोहण (१३) नृत्य (१४) समाधानकरण चातुर्य। आगम=भविष्य का ज्ञान। संगम=वर्तमान का ज्ञान। निगम=भूतकाल का ज्ञान।

भावार्थ—इतनी जानकारी जिसे हो उससे मंत्रणा करे, यह राजा को उचित है।

(यथा)

मूल—केशव मादक क्रोध विरोध तजी सब स्वारथ बुद्धि अनैसी।
भेद, अभेद, अनुग्रह, बिग्रह, निग्रह संधि कही बिधि जैसी।

बैरिन को बिपदा प्रभु को प्रभुता करै मंत्रिन की मति ऐसी ।
राखत राजन, देवन ज्यों दिन दिव्य बिचार बिमानन वैसी ॥२१

शब्दार्थ—अनैसी = बुरी। भेद = भेद करा देना। अभेद = मित्रता करादेना। अनुग्रह = कृपा। बिग्रह = लड़ाई। निग्रह = पकड़ लेना, नज़रबंद करना। दिन = प्रति दिन। राखति = रक्षा करती है। दिव्य बिचार = उत्तम मंत्र। वैसी = उसी प्रकार।

भावार्थ—जिस मंत्री की मति मे मादक वस्तुओं का सेवन, क्रोध, बिरोध, और बुरी तरह स्वार्थ साधन की चाल छोड़ दी हो। जो भेद, विग्रह, संधि इत्यादिक नीतियों में चतुर हो, जो शत्रुओं की विपदा और निज प्रभु की प्रभुता बढ़ाने में चतुर हो, मंत्रियों की ऐसी बुद्धि से और उस बुद्धि के दिव्य बिचारों से राजाओं की सदैव इस प्रकार रक्षा होती है जैसे बिमानों से देवताओं की।

(पयान वर्णन)

मूल—चँवर, पताका, छत्र छबि, दुंदुभि, धुनि बहु यान ।
जल थल मय भूकंप रज रंजित बरणि पयान ॥ २२ ॥

(यथा)

मूल—राघव की चतुरंग चमू चय को गनै केशव राज समाजनि ।
सूर तुरगन के उरझैं पग तुंग पताकनि के पट साजनि ।
टूटि परैं तिनते मुकता धरणी उपमा बरणी कबि राजनि ।
बिंदु मनो मुख फेनन के किधौं राजसिरी श्रवै मंगल लाजनि ।२३।

शब्दार्थ—चमूचय = सेना समूह। बिंदु = बूंद। राजसिरी = राजश्री, राज लक्ष्मी। श्रवै = बरसाती है। लाजा = लाजा, धान की खीलें।

भावार्थ—रामजी की चतुरंगिनी सेना के जमावड़े में राजाओं की गणना कौन कर सकता है। उस सेना में इतनी ऊंची पताकाएं हैं कि सूर्य के घोड़ों के पैर उनसे उलझते हैं। पैर उलझने से उन पताकाओं में लगे हुए मोतियों के झब्बे टूट जाते हैं और मोती पृथ्वी पर आगिरते हैं। उनकी समता कवियों ने यों कही है कि मानो सूर्य के घोड़ों के मुखफेन के बूंद टपकते हैं अथवा प्रसन्न होकर राजश्री मंगल सूचन हेत धान की खीलें बरसाती है।

(पुनः)

मूल-नाद पूरि, धूरिपूरि, तूरि बन, चूरि गिरि,
सोखि सोखि जलभूरि, भूरिथल गाथ की।
केशोदास आसपास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपति सब आपनेही साथ की।
उन्नत नवाय, नत उन्नत बनाय भूप,
शत्रुन की जीविका सुमित्रन के हाथ की।
मुद्रित समुद्र सात, मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दस दिसि जीति सेना रघुनाथ की॥ २४॥

(नोट)—हमें तो यह छंद सरल ही जँचता है। ज़रूरत हो तो केशवकौमुदी भाग २, प्रकाश ३५ वें के छंद नं० १० में टीका देख लीजिये।

(हय वर्णन)

मूल—तरल, तताई, तेजगति, मुख सुख, लघुदिन देखि।
देश, सुबेश, सुलक्षणै, बरनहु बाजि बिशेखि॥ २५॥

शब्दार्थ—तरल = चपल । तताई = शोखी, चाबुक न सह सकैं। सुखमुख = मुहँज़ोर न हों । लघुदिन = थोड़ी अवस्था के, नव युवक देश = उत्तम देश के हों जैसे अरब, एराक़, कच्छ, भूटान इत्यादि । सुबेश = सुन्दर। सुलक्षण = शालहोत्र शास्त्रानुसार शुभ चिन्ह युक्त ।

(यथा)

मूल—बामनहि दुपद जु नाप्यो नभ ताहि कहा,
नापैं पद चारि थिर होत यहि हेत हैं ।
छेकी छिति छीरनिधि छांड़ि धाप छत्र तर,
कुंडली करत लोल चाकै मोलैं लेत हैं ।
मन कैसे मीत, बीर बाहन समीर कैसे,
नैनन के न्वैनी, नैन नेह के निकेत हैं ।
गुणगण बलित, ललित गति केशोदास,
ऐसे बाजि राम चंद्र दीनन को देत हैं ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—बामन = बामनावतार = ('हरि' घोड़े का भी नाम है)। नाप्यो नभ = सारा आकाश बामन के एक डग भर हुआ। यहि हेत = यह समझ कर। छेकी = घेर ली है। छीरनिधि = समुद्र (जो घोड़ों का पिता है)। धाप = दौड़ । लोल = चंचल (चाक का विशेषण) न्वैनी = रस्सी जिससे दुहते समय गाय के पैर बांध दिये जाते हैं जिससे वह गाय अचल हो जाती है। गुण गण बलित = शालहोत्र शास्त्रानुसार समस्त शुभ चिन्हों से युक्त। ललित गति = उत्तम चाल वाले ।

भावार्थ—'हरि' हमारा नाम है और 'हरि' बामन जी भी थे। जब हरि नामधारी बामन ने ही दुपद रूप से आकाश को

नाप लिया, तब हम चौपद होकर यह छोटा काम क्यों करें, यह विचार कर जो घोड़े स्थिर रहते हैं (आकाश पर दौड़ नही लगाते), और हमारे पिता समुद्र ही जब सारी पृथ्वी को घेरे हुए हैं तब हम उसे क्या घेरें, ऐसा विचार कर जो घोड़े दौड़ छोड़ कर सवार के छत्र के नीचे ही चक्राकार घूमा करते हैं और इतनी तेज़ी से घूमते हैं कि चाक को भी मोल ले लेते हैं (मात कर देते हैं)। जो घोडे मन के से मित्र हैं (अति चंचल हैं) और पवन देव के से बाहन है (अति बेग वान हैं), नेत्रों को बांधने के लिये रस्सी रूप हैं (जिनको नेत्र एकटक देखा करते हैं) और नेत्रों के प्रेम के स्थान हैं (अति सुंदर हैं जिन्हें नेत्र देखते रहना ही पसंद करते हैं), जो समस्त शुभ लक्षणों से युक्त और अच्छी चाल वाले हैं, ऐसे घोड़े श्रीरामजी दीन जनों को बकसीस में देते हैं।

(गज वर्णन)

मूल—मत्त, महाउत हाथ में, मंद चलनि, चलकर्ण।
मुक्तामय, इभ कुंभ शुभ, सुंदर, शूर, सुवर्ण॥ २७॥

शब्दार्थ—महाउत हाथ में = महावत के वश में रहते हैं। मुक्तामय = गजमुक्ता युक्त। इभ = युवक हाथी। कुंभशुभ = जिनके कुंभ सुंदर हैं। चलकर्ण = जिनके कान सदा हिलते हैं (जिस हाथी के कान चंचल न हों वह रोगी होगा)

(यथा)

मूल—जल कै पगार, निजदल के सिंगार, अरि
दल को बिगार करि, पर पुर पारैं रौरि।

ढाहैं गढ़, जैसे घन, भट ज्यों भिरत रन,
देति देखि आशिषा गणेश जू के भोरे गौरि।
बिंध के से बांधव, कलिंदनंद से अमंद,
बंदन कै सूंड भरे, चंदन की चारु खौरि।
सूर के उदोत उदैगिरि से उदित अति,
ऐसे गजराज राजैं राजा रामचंद्र पौरि ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—पगार=वह जल जिसे पायाब पार कर सकें। जल कै पगार=जो कितनेही गहरे पानी को पायाब पार कर जाते हैं। पर पुर पारैं रौरि=शत्रु के नगरों में दरिद्रावस्था उपस्थित कर देते हैं। (नष्ट भ्रष्ट कर डालते हैं)। जैसे घन=बादल समान काले। आशिषा=आशिर्वाद। भोरे=धोखे। बिंध=बिंध्याचल पर्वत। कलिंद नंद=कलिंद पर्वत के पुत्र। अमंद=सुंदर। बंदन कै सूंड़ भरें=सिंदूर से रँगी सूंड़ है जिनकी। पौरि=द्वार। सूर ···अति=सूर्योदय के समय के उदयाचल पर्वत के समान अति सुंदर।

भावार्थ—श्रीराम जी के द्वार पर ऐसे हाथी बँधे हैं, जो इतने ऊंचे हैं कि कितना ही गहरा पानी क्यों न हो उसे पायाब ही पार कर जाते हैं, निज दल के सिंगार हैं, शत्रु दल को बिगाड़ कर शत्रु पुरों को नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। गढ़ों को गिरा देते हैं, बादल से काले हैं, रण में योद्धाओं के समान लड़ते हैं, और जिन्हें गणेश जी के धोखे में पार्वती जी आशिर्वाद देती हैं। जो बिंध्याचल के भाई से ऊंचे, कलिंद पर्वत के पुत्र सम काले और सुंदर हैं, जिनकी सूंड़ें सिंदूर से रँगी हैं और

मस्तक पर चंदन की खौरें लगी हैं, और सूर्योदय समय के उदयाचल पर्वत के समान अति सुंदर हैं।

(संग्राम वर्णन)

मूल—सोना स्वन, सन्नाह, रज, साहस, शस्त्र प्रहार।

अंग भंग, संघट्ट भट, अंध, कबंध अपार॥ २६ ॥

शब्दार्थ—स्वन=शब्द, शोर। सन्नाह=(सनाह) कवच। रज=धूल वा क्षत्रीपन की शान। संघट्ट=समूह, भीर। अंध=अंधकार। कबंध=सिरकटे धड़।

मूल—केशव बरणहु युद्ध महँ, जोगिनि गण युत रुद्र।

भूमि भयानक रुधिरमय, सरवर, सरित समुद्र॥ ३० ॥

शब्दार्थ—सरवर, सरित, समुद्र=रण भूमि का रूपक, तड़ाग, नदी, वा समुद्रवत् वर्णन करना चाहिये।

(यथा)

मूल—शोणित सलिल, नर बानर सलिलचर,
गिरि हनुमंत, बिष बिभीषण डार्‌यो है।
चँवर पताका बड़ी बाड़वाअनल सम,
रोगरिपु जामवंत केशव बिचार्‌यो है।
वाजि सुरबाजि, सुरगज से अनेक गज,
भरत सबंधु इंदु अमृत निहार्‌यो है।
सोहत सहित शेष रामचंद्र, कुश लव,
जीति कै समर सिंधु साँचहू सुधार्‌यो है॥ ३१ ॥

(नोट)=टीका के लिये देखिये 'केशवकौमुदी' का प्रकाश ३९ छं० नं० ९।

(आखेट वर्णन)

मूल-जुर्रा, बहरी, बाज बहु, चीते, स्वान, सचान।
सहर, बहेलिया, भिल्लयुत, नील निचोल विधान ॥३२॥

शब्दार्थ—सहर = स्याहगोश नामक एक बन जंतु जो दौड़ धूप में बहुत वेगवान होता है। नील निचोल बिधान = आखेटको को नीले कपड़े पहनने[3] का विधान है।

(पुनः)

मूल-बानर, बाघ, बराह, मृग, मीनादिक बन जंत।
बध, बंधन, बेधन बरणि मृगया खेल अनंत ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—बानर = बनमानुष। बध, बंधन, बेधन = किसी को मारना, किसी को बाँध लेना, किसी को अस्त्र शस्त्र से छेद देना। मृगया = शिकार।

(यथा)

मूल—तीतर, कपोत, पिक, केकी, कोक, पारावत,
कुरर, कुलंग, कल हंस गहि लाये हैं।
केशव शरभ, स्याह गोस, सिंह रोषगत,
कूकरन पास शश शूकर गहाये हैं।
मकर समूह बेधि, बांधि गजराज मृग,
सुंदरी दरीनि भील भामिनीन भाये हैं।
रीझि रीझि गुंजन के हार पहिराये देखो,
काम जैसे राम के कुमार दोऊ आये हैं।३४।

शब्दार्थ—कपोत = कबूतर। पिक = कोयल। केकी = मोर।

कोक = चक्रवाक। पारावत = परेवा, पिंडकी। कुरर = टिट्टिभ। कुलंग = मुर्गा। शरभ = सिंह से भी ज़बरदस्त एक बन जंतु। शश = खरगोश।

भावार्थ—सरल है। इसमें लव कुश का आखेट वर्णन है।

(पुनः)

मूल—खलक में खैल भैल, मनमथ मन ऐल,
शैलजा के शैल गैल गैल प्रति रोक है।
सेनानी के सटपट, चन्द्र चित चटपट,
अति अति अटपट अंतक के ओक है।
इन्द्र जू के अकबक, धाता जू के धकपक,
शंभु जू के सकपक केशोदास को कहै।
जब जब मृगया को रामके कुमार चढ़ैं,
तब तब कोलाहल होत लोक लोक है॥ ३५॥

शब्दार्थ—खैल भैल = खलबली। ऐल = खलबली, परेशानी। शैलजा के शैल = कैलाश। सेनानी = षटमुख। सटपट = भय। चटपट = भागने की फुरती। अटपट = मुशकिल, कठिनाई। अंतक = यमराज। ओक = निवास। अकबक = चकित होना। धकपक = भय। सकपक = घबराहट।

भावार्थ—जब श्रीरामजी के कुमार लव कुश शिकार के लिये जाते हैं, तब सब लोकों में शोर मच जाता है। सारे संसार में खलबली पड़ जाती है (कि न जाने अब क्या हो), काम के मन में परेशानी पैदा हो जाती है कि कहीं मेरी सवारी के मकरराज को न बेधें, कैलाश की तो गलियां ही

बंद हो जाती हैं (गौरी जी डर जाती हैं कि कहीं हाथी के धोखे गणेश को न बांध लें) षटमुख सटपटा जाते हैं कि कहीं हमारा मयूर न मारा जाय, चंद्रदेव के चित में चटपट भागने की धुनि सवार होती है कि कहीं हमारा हिरन न मारा जाय, यमराज के लोक में तो बड़ी कठिनता उपस्थित होती है वे घबरा जाते हैं कि कहीं हमारा भैंसा न मारा जाय। इन्द्रदेव अपने हाथी के भय से अकबका जाते हैं, ब्रह्मा जी अपने हंस के डर से भयभीत होते हैं, शंभु जी भी सकपका जाते हैं कि कहीं हमारा नंदी न पकड़ लिया जाय।

(जल केलि वर्णन)

मूल—सर, सरोज, शुभ, शोभ भनि, हिय सा प्रिय हिय झेलि।
गाहिबो गत भूषनन को, जलचर ज्यों जल केलि ॥३६॥

शब्दार्थ—शुभ=पवित्रता। हिय सों प्रिय हिय झेलि=प्रिय के हृदय से हृदय मिलाकर डुबकी लगाना। गहिबो गत भूषनन को=छूट कर गिरे हुए भूषनों को तह तक पहुंचने से पहले ही पकड़ लेना।

(यथा)

मूल—एक दमयंती ऐसी हरैं हँसि हंस बंस,
एक हंसिनी सी बिसहार हिये रोहिये।
भूषण गिरत एक लेत बूड़ि बीचि बीच,
मीन गति लीन, हीन उपमान टोहिये ॥
एकै मत कै कै कंठ लागि बूड़ि बूड़ि जात,
जल देवता सी दृग देवता विमोहिये।

केशोदास आस पास भँवर भँवत जल-
केलि में जलजमुखी जलज सी सोहिये ॥३७॥

(नोट)—टीका के लिये देखिये केशवकौमुदी, प्रकाश ३२ छंद नं० ३७।

(बिरह वर्णन)

मूल- स्वास, निसा, चिंता बढ़ै, रुदन परेखे बात।
कारे, पीरे, होत कृश, ताते सीरे, गात ॥ ३८॥

शब्दार्थ—निसा चिंता बढ़ै=बिरह में रात्रि भी बड़ी जान पड़ती और चिंता तो बढ़ती ही है। परेखे बात=बात भी अरमान भरी होती है। ताते=गर्म। सीरे= ठंढे। गात= शरीर के अंग।

मूल—भूख, प्यास, सुधि बुधि घटै, सुख, निद्रा, दुति अंग।
दुखद होत हैं सुखद सब, केशव बिरह प्रसंग ॥३९॥

(नोट)—चूंकि बिरह चार प्रकार का होता है, अतः यहां बिरह के चार उदाहरण दिये गये हैं।

(मान बिरह वर्णन)

मूल—बार बार बरजी मैं सारस सरस मुखी,
आरसी लै देखि मुख, या रस में बोरिहै।
सोभा के निहोरे तौ निहारति न नेक हू तू,
हारी हैं निहोरि सब कहा केहू खोरिहै॥
सुख को निहोरो जो न मान्यो सो भली करी न,
केशौराय की सौं तोहि जो ऽब मान मोरिहै।

नाह के निहोरे किन मानति निहोरत है,
नेह के निहोरे फेरि मोहि तू निहोरिहै ॥४०॥

(नोट)—रसिक प्रिया में यह कवित्त नायक के मध्यम मान के उदाहरण में दिया है (देखो रसिक प्रिया, प्रकाश ९ छंद नं० १९) अतः यह सखी का कथन नायक प्रति है कि जब तुम नायिका को मनाने गये थे तब मैंने ऐसी बातें उससे कही थीं, पर वह न मानी। अब तुम मान कर बैठे हो सो उसने मुझे तुम्हें मनाने को भेजा है। अब मान छोड़ो और चलकर उससे मिलो, नहीं तो तुम्हें भी पछताना पड़ैगा।

शब्दार्थ—सारस = कमल। सरस = बढ़कर। सारस सरस मुखी = कमल से बढ़कर मुख वाली। आरसी लै देखि मुख = (क्योंकि अभी तेरे मुख पर से मान की आभा हटी नहीं)। या रस में बोरि है = फिर कभी तू नायक के प्रेमरस में डूबैगी। सोभा······तू = तू नायक की शोभा देखने के निहोरे से भी नहीं देखती। सब = सब सखियां। खोरि = दोष। सुख को··· न = तेरे सुख के लिये हमने तुझे समझाया, पर तूने न माना, यह अच्छी बात नहीं की। केशोराय······मोरिहै = तुझे नायक ही की सौगंद है, तू अब मान न छोड़ना। नाह के निहोरे = नायक के मनाने पर। नाह के निहोरे······निहोरि है = अभी नायक के मनाने पर नहीं मानती फिर कभी ऐसा होगा कि नायक का प्रेम तेरे हृदय में उमड़ेगा, तब तू मुझसे बिनती करैगी कि अब नायक को मना लाओ।

(नोट)—पहले नायिका ने मान किया था। नायक मनाने आया। बहुत मनाने पर भी वह नहीं मानी (मान नहीं छोड़ा) तब नायक रुष्ट होकर मान कर बैठा (कि लो

जब तुम नहीं मानतीं, तो अब हम भी न बोलेंगे)। नायक का रूठकर चलजाना था कि नायिका के हृदय में पुनः प्रेम की उमंग आई, तब उसने एक सखी को नायक को मना लाने को भेजा। वह सखी नायक के पास जाकर नायक से कहती है कि पहले मैंने ऐसी २ बातें कहकर उसे समझाया था। अंत में कहा था कि "फेरि मोहि तू निहोरिहै"। वही बात हुई आखिर मुझे अब तुम्हें मनाने आना पड़ा—(मैंने जो बातें कहीं थी वे ये हैं)

भावार्थ—"हे कमल से बढ़ कर मुख वाली! मैंने बार बार तुझे मना किया कि तू मान न किया कर, मान छोड़ दे, आरसी लेकर मुख देख (तेरे मुख पर अभी मान का आभास है) आखिर तू फिर नायक के प्रेम में डूबैगी। (मैंने यह भी कहा था कि) नायक की शोभा ही को देखने के बहाने एक बार उसकी ओर ताक दे, सो भी तू नहीं मानती। सब सखियां कह कह कर थक गईं, अब इसमें किसी का दोष नहीं, तेरे ही सुख का उपाय करती हैं, पर तू नहीं मानती, यह अच्छा नहीं करती, अब तुझे नायक ही की सौगंद है, तू मान मत छोड़ना। अभी तो नायक मनाता है पर तू उसका मनाना नहीं मानती, फिर प्रेम की उमंग में तुझे मुझसे अर्ज करना पड़ैगा कि नायक को मना ला"। (ये सब बातें मैंने उससे कही थीं) आखिर नतीजा वही हुआ कि अंत में मुझे तुम्हें मनाने आना ही पड़ा (यह बात ध्वनि से निकलती है)

(विशेष)—यही 'ध्वनि' न समझ कर अन्य टीकाकार इसकी टीका लिखते समय गलती कर गये हैं और यह समझ बैठे हैं कि इसमें "सखी का बचन नायिका प्रति है"। ऐसा नहीं

तरह चपलता से हेरते हेरते। बनमाली ब्रज=बन समूह से युक्त ब्रजमंडल। बनमाली=मेघ। बनमाली=कृष्ण जी। हृदय कमल नैन=हृदय कमल केनेत्रों से। कमल नैन=कृष्णजी। कमलनैनी=जलयुक्त आखों वाली (रोती हुई)। आप घने=पानी भरे हुए। घन=लोहे का भारी हथौड़ा जिससे लोहार लोहा पीटते हैं। सावन के द्यौस=इस बर्षाऋतु में। घन-स्याम=कृष्ण।

भावार्थ—(सखी प्रति नायिका का वचन है) हे सखी! इन हरे हरे जंगलों और मैदानों को देखकर, जिन को देख कर तेरा हृदय विमुग्ध होता है, मैं थक गई क्योंकि इनमें मुझे कहीं कृष्ण नहीं मिलते। बन समूहों से वेष्ठित इस ब्रज मंडल पर मेघ बरस रहे हैं, और कृष्ण मेरे निकट नहीं हैं यह दुःख मैं कैसे सहूं। (यदि तू कहै कि) हृदय कमल के नेत्रों से कृष्ण का ध्यान करके संतोष कर, तो हे सखी! ऐसा करने से तो मैं जल पूर्ण नेत्र वाली ही होऊंगी (ध्यान करने से अधिक रोऊंगी) और अधिक क्या कहूं। ये जल से भरे खूब काले बादल मेरे लिये तो घन ही होते हैं (घन की सी चोट देते हैं) भला बतला तो इन सावन के दिनों में मैं कृष्ण बिना कैसे जीवित रह सकती हूं।

(प्रवास बिरह)

मूल—मेह कि हैं सखि आँसू,
उसाँसनि साथ निसा सु बिसासिनि बाढ़ी।
हाँसी गयी उड़ि हंसिनि ज्यों,
चपला सम नींद भई गति काढ़ी॥

चातकि ज्यों पिउ पीउ रटै,
 चढ़ी ताप तरंगिनि ज्यों तन गाढ़ी।
केशव वाकी दशा सुनि हौं अब,
 आगि बिना अँग अंगन डाढ़ी ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—मेह = वर्षा। उसाँस = लंबी स्वाँस लेना। बिसासिनि = विश्वाशनी (विश्व + अशनी) संसार को खाने वाली अर्थात् मृत्यु। गतिकाढ़ी = गति में चपला से कहीं आगे निकल जाने वाली, अति चंचल तरंगिनी। गाढ़ी = अतिप्रचंड। हौं = मैं। डाढ़ी = जल गई।

नोट—किसी विरहिनी की दशा कोई सखी किसी सखी प्रति कहती है।

भावार्थ—हे सखी क्या कहूं, मुझे तो सन्देह होता है कि उसके आँसू हैं या वर्षा है (रो रो कर वह वर्षा काल बनाये हुए है) उसाँसो के साथ ही साथ मृत्यु रूपा रात्रि भी (उसके लिये) बढ गयी है। उसकी हँसी हंसिनी की तरह उड़ गई है। (जैसे वर्षा काल में हंस हंसिनी कहीं चले जाते हैं वैसे ही अब उसमें हँसी नहीं रही) और नींद तो बिजली से भी बढ़ कर चंचला हो रही है (कभी क्षण मात्र के लिये आती है) वह चातकी की तरह पी पी रटती है और उसके तन में प्रचंड ताप (वर्षा की) नदी की तरह चढ़ी हुई है। उसकी दशा सुनकर मेरे अंग अंग बिना अग्नि के ही जल रहे हैं (तो उसकी क्या दशा होगी तू अनुमान कर ले)

नोट—'पीउ पीउ रटती है' इन शब्दों से लक्षित होता है कि उसका प्रियतम कहीं दूरस्थ है। अतः प्रवास विरह है।

(पूर्वानुराग बिरह)

मूल—भूलि गयो सब सों रस रोष,
मिटे भव के भ्रम, रैनि विभातौ।
को अपनो, पर को, पहिचान न,
जानति नाहिनै सीतल तातो।
नेकु ही में वृषभानु लली
की भई सु न जाकी कही परै बातौ।
एकहि बेर न जानिये केशव
काहे ते छूटि गये सुख सातौ।४३।

शब्दार्थ—रस=प्रेम। रोष=क्रोध। भव के भ्रम=संसार के व्यवहार जो वास्तव में भ्रम रूप हैं। रैनि विभात=रात्रि दिन (का ज्ञान) नाहिनै=नहीं। नेकुही में=थोड़ी ही देर में। भई=दशा वा गति। सु=वह (सो)। न जाकी कही परै बातौ=जिसकी बात कहते नहीं बनती। एकहि बेर=एक बारगी, एक ही साथ। सुख सातौ=सातो सुख अर्थात्।

खान, पान, परिधान, पुनि, ज्ञान, गान, दुति अंग।
सुभग सँयोग बियोग बिनु सातौ सुख प्रिय संग॥

अर्थात्—(१)—भोजन का सुख (२) पेय पदार्थों के पीने का सुख (३) वस्त्र भूषणादि पहनने का सुख (४) ज्ञान वा बुद्धिबिलास का सुख (५) गान का सुख (६) शोभा का सुख। (७) प्रिय के अबिच्छिन्न संयोग का सुख।

भावार्थ—सब से प्रेम वा रोष करना भूल गया, सांसारिक व्यवहार और रात दिन का ज्ञान जाता रहा है, इसकी पह-

ध्यान नहीं रही कि कौन अपना है कौन पराया है, शीतल और उष्ण का ज्ञान भी नहीं है। थोड़ी ही देर में राधिका की ऐसी दशा हो गई है कि कहने योग्य नहीं। हे कृष्ण! न जानें क्यों एक बारगी (सहसा) उसके सातो सुख छूट गये हैं।

(नोट) कृष्ण को देखकर पूर्वानुराग में सहसा राधिका की जो दशा हुई है उसी का वर्णन कोई सखी कृष्ण से करती है, तात्पर्य यह है कि चलकर उसे दर्शन दो नहीं तो वह मर जायगी।

(स्वयम्बर वर्णन)

मूल—शची स्वयम्बर रक्षिणी, मंडल मंच बनाव।
रूप, पराक्रम, वंश, गुण बरणिय राजा राव॥ ४४॥

शब्दार्थ—शची स्वयंवर रक्षिणी = स्वयंबर की रक्षा करने वाली देवी इन्द्राणी मानी गई है। मंडल मंच बनाव = मंचों की स्थिति मंडलाकार वर्णन करना चाहिये।

(यथा)

मूल—मंडली मंचन की, नृप मंडल, मंडित देखिय देव सभा सी।
दंतन की दुति, देह की दीपति, भूषन ज्योति अनंत अभासी॥
फूलन की छबि, अंबर की छबि, छत्रन की छबि तत्क्षणभासी।
सोहति है अति सीय स्वयंबर आनन चंद्र प्रवेष प्रभासी॥४५॥

शब्दार्थ—अभासी = आभासित हुई, जान पड़ी। प्रवेष = (परिवेष) चंद्रमा के गिर्द का ज्योतिर्मंडल।

भावार्थ—स्वयंबर स्थान में मंचों की मंडली है, जिनपर राजन्य वर्ग बैठा है। वह दृश्य देवसभा के समान है। मुसकुराते

समय के दांतों की झलक और शरीरों की कांति तथा आभूषणों की चमक दमक अपार सी जान पड़ती थी। फूलों की छटा, (देवताओं से छाये हुए) आकाश की छबि, राजछत्रों की छबि उस समय प्रकाशित हो रही थी। स्वयंवर में श्री सीता जी अति शोभित हैं, बीच में खड़ी सीता का मुख चंद्रमा सम है और यह उपर्युक्त समस्त प्रभा परिवेष के समान है (ऐसा जान तड़ता था)।

(सुरति वर्णन)

मूल सुरति सात्विकी भाव भनि, मनित रुनित मंजीर।
हाव, भाव, वहि अंत रति, अलज सलज्ज शरीर ॥४६॥

शब्दार्थ—सुरति = कामयुक्त चित्त से उत्पन्न दाम्पत्तिक प्रेम। सात्विकी भाव भणि = सुरति में सात्विक भावों को कहना ही चाहिये। मनित = शब्दादि (जैसे सीत्कार वा हां, नाहीं, हूं इत्यादि) रुनित मंजीर = नूपरों का बजना। हाव = विशेष प्रकार की चेष्टाएं वा क्रियाएं जैसे लीला, बिलास, कुट्टमित इत्यादि। भाव = सात्विक भाव जैसे स्वेद कंप रोमांचादि। बहिरति = आलिंगन, चुंबन, स्पर्श, मर्दन, नखछत रदनच्छत, अधरपान। अंतःरति = कोकशास्त्र के अनुसार विविध आसनों से दम्पति समागम (देखो रसिक प्रिया प्रकाश ३ छंद नं० ४१, ४२)। अलज = लज्जारहित।

भावार्थ—सुरति वर्णन करते समय, सत्विकी भावों का, सीत्कारादि शब्द, तथा नूपुर शब्द, तथा हाव, भाव, वहिः रति, अन्तर्रति, तथा शारीरिक लज्जा और निर्लज्जता का वर्णन करना चाहिये।

(यथा)

मूल—केशोदास प्रथमहिं उपजत भय भीरु,
रोष रुचि स्वेद देह कंप न गहत हैं।
प्राण प्रिय बाजी कृत वारन पदाति क्रम,
बिबिध शबद द्विज दानहि लहत हैं॥
कलित कृपा न कर सकति सुमान त्रान,
सजि सजि करज प्रहारन सहत हैं।
भूषन सुदेश हार दूषन सकल होत,
सखि न सुरति रीती, समर कहत हैं॥४७॥

(नोट)—कोई प्रौढ़ा परकिया नायिका अपनी अंतरंग सखी से रति समय की कथा कह रही थी। समाप्त होते होते दूसरी बहिरंगा सखी ने आकर पूछा कि क्या रति कथा सुना रही हो? तब वह कहती है कि नहीं मैं तो समर कथा कहती हूं। इसमें छेकापन्हुति अलंकार है।

शब्दार्थ—प्राणप्रिय = नायक। बाजीकृत = वाजी करण स्तंभनादि औषध खाये हुए। वारन = मना करने पर, नाहीं नाहीं करते रहने पर भी। पदातिक्रम = पदों का अतिक्रमण करता है, पैरों को उठाकर अपने जंघों पर रखता है। द्विजदान = दातों से अधर खंडनादि। कलित कृपान कर = हाथों में दया नहीं रहती (कुच मर्दनादिक करता है)। मान त्रान = मान की रक्षा करता है अर्थात् प्रशंसा करता जाता है। करज = नख। सुदेश = सुन्दर, बजने वाले। दूषन = बुरे लगते हैं।

(सुरति पक्ष)

भावार्थ—पहले तो भीरुता से भय पैदा होता है (परकीयत्व

में भय है ही), फिर जब नायक साहस से हाथ पकड़ ही लेता है, तब शरीर स्वेद तथा कंप भाव धारण करता है। पुनः बाजीकरण से पुष्ट नायक नाहीं नाहीं करते रहने पर भी पैरों को उठाकर अपने जंघों पर रखता है, तब अनेक प्रकार के शब्द (नूपुरादि के अथवा सीत्कार के) होने लगते हैं, दांतों से अधर खंडन होता है, नायक के हाथ निर्दय हो जाते हैं और ज़ोर ज़ोर से वह कुच मर्दन करता है, और अपनी शक्ति भर प्रिया की मान रक्षा करता है (प्रशंसा करता जाता है जिससे वह अप्रसन्न न हो) और स्त्री के कुच खूब नख प्रहार सहते हैं। उस समय बजने वाले सुन्दर भूषण (किंकिणी और नूपुरादि) और आलिंगन में बाधक हार हमेलादि सब बुरे लगते हैं, हे सखी सुरति की यह रीति उत्तम होती है।

(समर पक्ष का अर्थ)

शब्दार्थ—भीरु = कायर। कंप न गहत हैं = काँपते नहीं। प्राण प्रिय वाजी कृत = प्यारे प्राणों की बाज़ी लगती है। बारन = हाथी। पदाति = पैदल। क्रम = चलते हैं। द्विज = पक्षी (गीधादि)। दानहि लहत हैं = मांसादि का दान पाते हैं (अथवा) द्विज दानहि लहत हैं = रण को जाते समय बीर लोग ब्राह्मणों को निज भूषणादि दान कर देते हैं। कलित कृपान कर = हाथों में तलवारें शोभा देती हैं। सकति सुमान आन = अपने मान की रक्षा करने वाली शक्ति (बरछी)। सजि सजि = अच्छी तरह तैयार हो हो कर। करज प्रहार = शत्रु के हाथ से उत्पन्न प्रहार। भूषण सुदेश = अपना देश

जिन्हें भूषणवत प्यारा है, अपने देश को। हार दूषण होत = हार (पराजय) को ही दूषण समझते हैं।

भावार्थ—पहले तो भीरु (कायर) लोगों को भय लगती है (और वे भग जाते हैं) पर शूर बीरों की रुचि में रोष आता है और उनके शरीर में क्रोध की गरमी से स्वेद आ जाता है पर भय से कांपते नहीं। प्यारे प्राणों की बाजी लगती है, हाथी और पैदल चलते है। शंख, तूर, दमामें इत्यादि के उत्साहवर्द्धक अनेक शब्द होते हैं, ब्राह्मण लोग दान पाते हैं (अथवा रणभूमि में गृद्धादिक पक्षी मांस दान पाते हैं) हाथों मे तलवारें और बरछियां होती हैं जो स्वमान की रक्षा करती हैं। और बीर लोग सज सज कर शत्रु के हाथों के प्रहार सहते हैं। वीर लोग स्वदेश ही को सर्वोत्तम भूषण समझते हैं और पराजय (हार) को ही समस्त दोषावह जानते हैं। लोग समर की रीति ऐसी वर्णन करते हैं।

आठवां प्रभाव समाप्त

नवां प्रभाव

[विशिष्टालंकार वर्णन]

(अलंकारों की नामावली)

मूल—जानि, स्वभाव, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष ।
उत्प्रेक्षा, आक्षेप, क्रम, गणना, आशिष लेष ॥ १ ॥
प्रेमा, श्लेष, सभेद है नियम, विरोधी मान ।
सूक्ष्म, लेश, निदर्शना, उर्जस्वा पुनि जान ॥ २ ॥
रस, अर्थान्तर न्यास है, भेद सहित व्यतरेक ।
फेरि अपह्नुति, उक्ति है, वक्रोकति सविवेक ॥ ३ ॥
अन्योकति, व्यधिकरन है; सुविशेषोकति भाषि ।
फिरि सहोक्ति को कहत हैं, क्रमही सों अभिलाषि ॥४॥
व्याजस्तुति निंदा कहैं, पुनि निंदास्तुति वंत ।
अमित सु पर्यायोक्ति पुनि, युक्त सुनो सब संत ॥ ५ ॥
स समाहित जु सुसिद्धि पुनि औ प्रसिद्ध विपरीत ।
रूपक, दीपक भेद पुनि, कहि प्रहेलिका मीत ॥ ६ ॥
अलंकार परवृत कहौ उपमा जमक सुचित्र ।
भाषा इतने भूषणानि भूषित कीजै मित्र ॥ ७ ॥

(नोट)—केशव ने ३७ नाम मुख्य कहे हैं, पर इनके अवान्तर भेद मिलकर इनसे अधिक अलंकारों का वर्णन इस पुस्तक में है ।

१—स्वभाव से उत्प्रेक्षा तक ९ वें प्रभाव में हैं।
२—आक्षेप का बर्णन १० वें प्रभाव में (इसी में बारहमासा है)
३—क्रम से अपह्नुति तक ११ वें प्रभाव में वर्णित हैं।
४—उक्ति से युक्ति तक १२ वें प्रभाव में कहे हैं।
५—समाहित से परवृत तक १३ वें प्रभाव में कहे गये हैं।
६—उपमा का वर्णन १४ वें प्रभाव में है।
७—जमक का वर्णन १५ वें प्रभाव में है।
८—चित्रालंकार का वर्णन १६ वें प्रभाव में है।

१—(स्वभावोक्ति)

मूल—जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही साज।
तासों जानि स्वभाव सब कहि बरणत कविराज ॥ ८ ॥

भावार्थ—वर्ण्य वस्तु वा व्यक्ति का सहज रूप (रंग आकृति) वा गुण वर्णन किया जाय उसे स्वभावोक्ति जानना चाहिये। यथा:—

(रूप बर्णन)

मूल—पीरी पीरी पाट की पिछौरी कटि केशोदास,
पीरी पीरी पागैं पग पीरिये पनहियां।
बड़े बड़े मोतिन की माला बड़े बड़े नैन,
भृकुटी कुटिल नान्ही नान्ही बघनाहियां,
बोलनि, चलनि; मृदु हँसनि चितौनि चारु।
देखत ही बनै पै न कहत बनै हियां।

सरजू के तीर तीर खेलैं चारौ रघुबीर,
हाथ द्वै द्वै तीर राती रातियै धनुहियां ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—पाट की पिछौरी = पीतांबर। पागैं = पगड़ियां। बघनहियां = बाघ के नख। हियां = यहां। राती = लाल।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(गुण वर्णन–शोभा सौन्दर्य)

मूल–गोरे गात, पातरी, न लोचन समात मुख,
उर उरजातन की बात अवरोहिये।
हँसति कहत बात, फूल से झरत जात,
ओंठ अवदात राती रेख मन मोहिये।
स्यामल कपूरधूर की ओढ़ैनी ओढ़े, उड़ि
धूरि ऐसी लागी केशो उपमा न टोहिये।
काम ही की दुलही सी काके कुल उलही सु,
लहलही ललित लता सी लोल सोहिये ॥ १० ॥

शब्दार्थ—पातरी = कृशांगी। दुबली (स्थूल नहीं)। न लोचन समात मुख = अर्थात् बहुत बड़े। उरजात = कुच। अवरोहिये = चित्रित कर लीजिये। अवदात = गौरवर्ण के। राती रेख = लाल रेखा (पान की) स्यामल = कुछ कुछ श्याम रंग की। कपूरधूर = एक प्रकार का वस्त्र विशेष। ओढ़ैनी = उपरना, ओढ़नी। उड़ि धूरि ऐसी लागी = वह कपड़ा इतना बारीक है कि जान पड़ता है कि मानो शरीर पर कपड़ा है ही नहीं केवल कपूर की धूल लगी है। उपमा न टोहिये = जिसकी

उमाप खोजने से नहीं मिलती। काम की दुलही = रति। उलही = पैदा हुई है। ललित = सुंदर। लोल = चंचल।

भावार्थ—गोरा गोरा शरीर है, कृशांगी है, बड़े बड़े नेत्र हैं, और कुचों की बात क्या कहूं वे तो ऐसे हैं कि उनकी तसवीर हृदय में बना लेना चाहिये। (अन्वय—उरजातन की बात उर अवरोहिये)। वह हँसते हुये बात कहती है, मानो फूल झड़ते हैं, गोरे गोरे ओठों पर पान की लाल रेखा है जो मन को मोहती है। श्याम रंग की कपूरधूर की ओढ़नी ओढ़े है वह ऐसी है जैसे कपूर की धूर उड़कर अंग में लग गई हो, उसकी उपमा खोजना व्यर्थ है। वह रति के समान सुन्दरी न जाने किस के कुल में पैदा हुई है और लहलहाती हुई सुन्दर लता के समान चंचल है।

२—(विभावनालंकार)

मूल—कारज को बिनु कारणहि, उदौ होत जेहि ठौर।
तासों कहत विभावना, केशव कवि शिरमौर॥ ११॥

भावार्थ—बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति कही जाय वहां विभावना जानो।

(यथा)

मूल—पूरन कपूर पान खाये कैसी मुखबास,
अधर अरुण रुचि सुधा सों सुधारे हैं।
चित्रित कपोल, लोल लोचन, मुकुर, एन,
अमल झलक, झलकनि मोहि मारे हैं।
भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करे हू होहिं,
आंजी ऐसी आंखैं केशोराय हेरि हारे हैं।

काहे को सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अंग बिनाही सिंगार के सिंगारे हैं ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—एन=(एण) हिरन। मोहि मारे है=मोहित करके मार डाले हैं।

भावार्थ—तेरी मुखबास सहज ही ऐसी है जैसे कपूर और पान खाये मुख की होती है। तेरे ओंठ लाल कांति के और सुधा सम मीठे हैं। तेरे चित्रित कपोलों और चञ्चल नेत्रों ने अपनी निर्मल झलक और चमक से मुकुर और हिरन को मोहित करके मार डाला है। भौहैं ऐसी टेढ़ी हैं कि बनाये से भी नहीं बनतीं, आंखें सहज ही आंजी सी है जिन्हें देख कर कृष्ण भी हार मान गये। हे आली! तू क्यों अपने अंगों को सिंगार करके बिगाड़ती है, तेरे अंग तो बिना सिंगारे ही सिंगारे हैं।

(पुनः)

मूल कारण कौनहु आनते, कारज होय जु सिद्ध।
जानौ अन्य विभावना, कारण छांड़ि प्रसिद्ध ॥ १३ ॥

भावार्थ—दूसरे प्रकार की विभावना वह है जहाँ ऐसा वर्णन हो कि जिसका जो कारण है उसे छोड़ किसी अन्य कारण से कार्य सिद्ध हो।

(यथा)

मूल—नेकहू काहू नवाई न बानी नवाये बिनाही सु बंक भई है।
लोचन श्री बिझुकाये बिना बिझुकी सी, रँगे बिनु राग मई है॥
केशव कौन की दीनी कहौ यह चंदमुखी गति मंद लई है।
बोली न, ह्वैही गई कटि छीन सु यौवन की यह युक्ति नई है ॥१४

शब्दार्थ—वक्र = टेढ़ी। लोचन श्री = नेत्र शोभा (चितवन)। बिझुकाना = वेगयुक्त चंचल कर देना। बिझुकी = अति चंचल। रागमई = लाल।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

३—(हेतु अलंकार वर्णन)

मूल हेतु होत है भांति द्वै, बरनत सब कबिराव।
केशवदास प्रकास करि, बरनि सभाव अभाव॥ १५॥

भावार्थ—सभाव हेतु वह हेतु है जो अन्य हेतुओं द्वारा बली है। अभाव हेतु वह है जो स्वयं निर्बल हो परंतु कार्य करे। तीसरा सभाव-अभाव हेतु भी होता है।

(सभाव हेतु का उदाहरण)

मूल—केशव चन्दन वृन्द घने अरविन्दन के मकरंद शरीरो।
मालती, बेल, गुलाब, सुकेसरि, केतकि, चंपक को बन पीरो।
रंभन के परिरंभन संभ्रम गर्ब घनो घनसार को सीरो।
शीतल मंद सुगंध समीर हरयो इनसों मिलि धीरज धीरो।१६

शब्दार्थ—शरीरो = अपने शरीर में लेकर। बेल = बेला। रंभा = केला। परिरंभन = मिलाप, आलिंगन। संभ्रम = दौड़धूप। घनसार = कपूर। सीरो = ठंढा। धीरो = धीरे धीरे।

भावार्थ—समीर ने, चंदन से सुगंधित होकर, कमल, मालती, बेला, गुलाब, केशर तथा केतकी के मकरंद से लदकर मंद गति होकर, तथा दौड़ दौड़ कर केलों से मिल २ कर उनके कपूर से शीतलता लेकर (इतने अन्य हेतुओं द्वारा बली होकर) धीरे धीरे इनका धैर्य हर लिया (समीर ने धैर्य हरण किया, पर अन्य हेतुओं से बली होकर)

(अभाव हेतु का उदाहरण)

मूल जान्यो न मैं मद यौवन को उतरयो कब, काम को काम गयो ई।
छांड़न चाहत जीव कलेवर जोर कलेवर छांड़ि दयो ई।
आवत जात जरा दिन लीलत, रूप जरा सब लीलि लियो ई।
केशव राम ररौं न ररौं अनसाधे ही साधन सिद्ध भयो ई॥१७॥

शब्दार्थ—काम को काम गयोई=सब काम चेष्टायें चली गईं। कलेवर=शरीर। जोर=शक्ति, ताकत। जरा=जरावस्था। ररौं=रटौं, जपौं। सिद्ध=सिद्ध पुरुष, महात्मा (जो काम क्रोधादि के वश न हों)

भावार्थ—मैंने न जाना कि जवानी का मद कब उतर गया, काम चेष्टाएं कब चली गईं। जीव शरीर को छोड़ना चाहता है, शरीर ने जोर छोड़ ही दिया है। आते जाते दिनों को जरावस्था लीलती जाती है, रूप को जरावस्था ने लील ही लिया है। अब मैं राम नाम जपूं या न जपूं, (श्रवण, मनन, आसन, प्राणायामादि) साधनों को बिना साधेही जरावस्था ने मुझे सिद्धपुरुष बना दिया है।

नोट—जरावस्था (जो स्वयं निर्बल है) ने पूरा काम कर दिया, अन्य साधनों ने सहायता नहीं की। अतः अभाव हेतु है।

(विशेष)-यदि साधन न होता तो प्रथम विभावना होती। यदि साधनान्तर से काम होता तो दूसरी विभावना होती। यहां साधन तो है पर निर्बल है अतः अभाव हेतु है।

(सभाव अभाव हेतु का उदाहरण)

मूल—जा दिन तें वृषभानु ललीहि अली मिलये मुरलीधर तें ही।

साधन साधि अगाध सबै बुधि सोधि जो दूत अभूतन में ही ॥
ता दिन तें दिन मान दुहून के केशव आवत बात कहे ही।
पीछे अकाश प्रकाशै शशी, बढि प्रेम समुद्र रहै पहिले हीं ॥ १८

शब्दार्थ—अगाध = अति कठिन (साधन का विशेषण है)। अभूत दूत = अत्यंत अलौकिक चतुरता युक्त दूत । ही = थी। मान = अरमान का बढ़ना, अभिलाष की प्रबलता ।

भावार्थ—जिस दिन से सखी ने राधिका को, कठिन साधन साध कर, और अलौकिक दूतों की बुद्धिमानी से, कृष्ण से मिलाया था, उसी दिन से प्रति दिन दोनों की अभिलाषाएं ऐसी बढी चढ़ी हैं कि यह कहते ही बनता है कि आकाश में चंद्रमा पीछे निकलता है, पर उनके हृदय का प्रेम समुद्र पहिले ही से उमड़ा रहता है।

(विशेष)—"अगाध साधन साध कर, अलौकिक दूतत्व से" यह कथन सभाव हेतु है, "आकाश में चंद्रमा पीछे निकलता है प्रेम समुद्र पहले बढ़ता है" यह कथन अभाव हेतु है।

४—(विरोधालंकार वर्णन)

मूल केशवदास विरोध मय, रचियत बचन बिचारि।
तासों कहत बिरोध सब, कबिकुल सुबुधि सुधारि ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—रचियत बचन बिचारि = बिचार पूर्वक रचना करने से यह अलंकार कहते बनता है। असावधानी करने से बिभावना या विषम से मिलजायगा, अतः इसके कथन में बड़ी सावधानी चाहिये। सुबुधि सुधारि = बुद्धि को सुधार कर यह अलंकार कहते हैं।

(यथा)

मूल–सोभत सुबास हास सुधा सों सुवाऱ्यो विधि,
बिष को निवास जैसो तैसो मोहकारी है।
केशोदास पावन परम हंस गति तेरी,
पर हीय हरन प्रकृति कौने पारी है।
बारक बिलोकि बलबीर से बलीन कहँ,
करत बरहिं बश, ऐसी बैस वारी हैं।
एरी मेरी सखी तेरी कैसे कै प्रतीत कीजै,
कृशनानुसारी दृग करणानुसारी हैं ॥ २० ॥

शब्दार्थ—सुबास = सुगंधित। बिष को निवास = धतूरा इत्यादि बिषैले पदार्थ। मोहकारी = मूर्छित करने वाला। पावन परम हंस गति = (१) पवित्र परम हंसों की सी दशा (२) पैरों में सुन्दर हंस की सी चाल है। प्रकृति = सुभाव। बलबीर = कृष्ण। बरहिं = बल ही से। बारी बैस = लड़कपन ही में। कृशनानुसारी = कृष्ण के अनुगामी। करणानुसारी = (१) कानों तक फैले हुए अर्थात् बहुत बड़े (२) कर्ण के अनुगामी। (नोट) कृष्ण और कर्ण विरोधी थे, क्योंकि कृष्ण अर्जुन के सहायक थे और कर्ण अर्जुन का शत्रु था।

(विशेष)—इस कवित्त के पहले और तीसरे चरण में 'विरोध' अलंकार है, दूसरे और चौथे में 'विरोधाभास' अलंकार है। पर विरोधाभास को केशव ने 'विरोध' ही के अन्तर्गत माना है।

भावार्थ—हे सखी! तेरा हास्य सुगंधित है और बिधि ने उसे सुधा से बनाया है (अर्थात् तेरा सुगंधित और स्वच्छ मधुर

हास्य है) पर धतूरे की तरह मूर्च्छा लाने वाला है (है तो अमृतमय पर काम बिष का करता है, यही विरोध है) तेरे पावों में सुन्दर हंस की सी चाल है, परंतु दूसरों के मन हरण करने का स्वभाव न जाने उसे किसने सिखाया है (श्लेष से, जिसकी पवित्र परमहंसों की सी दशा हो वह पराया मन हरण करे, यह विरोध है) । एक बार देखने से कृष्ण के समान पराक्रमी पुरूष को बल से बश में कर लेती हो, ऐसी बलवती तो तुम बाल वयस में ही हो (बालावस्था में ही कृष्ण ऐसे बली को बश में कर लेना-यही विरोध है) । हे सखी ! तेरा विश्वास कैसे करूं, तेरे कृष्णानुसारी नेत्र अब कर्णानुसारी होते जाते हैं (आकर्ण लंबायमान होते जाते हैं)—(कृष्ण भक्त का कर्णानुसारी होना-यही विरोध है)

(नोट)—दूसरे तथा चौथे चरण में श्लेष के कारण विरोध नहीं रहा, बिरोधाभास होगया है ।

(पुनः)

मूल—आपु सितासित रूप, चितै चित श्यामशरीर रँगैं रँग राते ।
केशव कानन हीन सुनैं, सु कहैं रस की रसना बिन बातें ॥
नैन किधौं कोउ अंतरयामी री जानति नाहिंन बूझति तातें ।
दूर लौं दौरत हैं बिन पायन दूर दुरी दरसै मति जातें ॥२१॥

शब्दार्थ—सितासित = (सित—असित) सफेद और काले । श्यामशरीर = कृष्ण के तन को । रँगैं रँग रातें = अनुराग रंग से रँग देते हैं । अंतरयामी = सबके मन की बात जाननेवाले । दूर दुरी दरसै मति जातें = जिससे अति दूर मन में छिपी बात प्रगट हो जाती है ।

भावार्थ—(सखी बचन नायिका प्रति) तेरे नेत्र ऐसे हैं कि आप तो सफेद और काले हैं, पर कृष्ण की ओर देख कर कृष्ण के चित्त को अनुराग के रँग से रँग देते हैं (अनुराग का रंग लाल माना गया है)। कान हीन होने पर भी बात सुनते हैं, जीभ हीन होने पर भी रस की बार्ता करते हैं। मैं जानती नहीं, इसी से पूंछती हूं कि ये तेरे नेत्र हैं या कोई अंतर्यामी पुरुष हैं, ये पैरहीन होने पर भी दूर तक दौड़ते हैं, जिससे मन के कोने में छिपी हुई मति भी इनको मालूम हो जाती है।

(विशेष)—इस छंद के प्रथम चरण में बिषमालंकार और शेष तीन चरणों में विभावनालंकार दरसता है, पर बिचार करने से ये अलंकार ठहरते नहीं। क्योंकि प्रथम चरण में "रँगराते" से तात्पर्य प्रेम से है न कि वास्तविक कोई रंग जो सफेद और काले रंगों के मिलने से बनता है। शेष तीन चरणों में कानों, जीभ, तथा चरणों के संबंध में जो कहा गया है, वह अनिवार्य कारण कार्य संबंध में नहीं ठहरता—ज़रूरी नहीं है कि जिसके कान हों वह सब कुछ सुनही ले, जिसके जीभ हो वह बोला ही करे, जिसके पैर हों वह दौड़बै करे। विभावना में कारण कार्य का संबंध अनिवार्य होना चाहिये, ऐसा मत केशव का है। पर हाल के आचार्य तो इस छंद में बिषम और विभावना ही मानेंगे। हमें भी संदेह है कि क्या मानें। पर चूँकि पुस्तक में यह छंद 'विरोध' के उदाहरण में दिया है, अतः कोई चारा नहीं।

(नोट)—हमारा अनुमान है कि यह छंद प्रथम विभावना का उदाहरण है। लेखकों की असावधानी से यह छंद यहां लिख गया है।

(विरोधाभास लक्षण)

मूल-बरनत लगै बिरोध सो, अर्थ सबै अविरोध ।
प्रगट विरोधाभास यह, समझत सबै सुबोध ॥ २२ ॥

भावार्थ—विरोध सा भासै पर अर्थ करने पर विरोध न रहै, वही विरोधाभास कहलाता है ।

(यथा)

मूल-परम पुरुष कुपुरुष सँग शोभियत,
दिन दानशील पै कुदान ही सों रति हैं ।
सूर कुल कलश पै राहु को रहत सुख,
साधु कहैं साधु, परदार प्रिय अति हैं ॥
अकर कहावत धनुष धरे देखियत,
परम कृपाल पै कृपान कर पति हैं ॥
विद्यमान लोचन द्वै, हीन बाम लोचन सों,
केशोराय राजा राम अद्भुत गति हैं ॥२३॥

शब्दार्थ—कुपुरुष=(१) बुरे लोग (२) पृथ्वी के लोग । कुदान=(१) बुरादान (२) पृथ्वीदान । राहु=(१) राहु-ग्रह (२) रास्ता । परदार प्रिय=(१) पराई स्त्री पर प्यार करने वाले (२) सर्वोत्तम दारा (लक्ष्मी) के प्रिय । अकर=हस्तहीन । कृपान कर=(१) हाथ में तलवार रखने वाले (२) जो कृपा न करे । हीन बामलोचन=(१) जिसकी बाईं आंख न हो (२) बामलोचना अर्थात् कुलटा स्त्री से हीन ।

भावार्थ—श्री राम जी अद्भुत गति के राजा हैं। स्वयं परम पुरुष हैं पर कुपुरुषों के संग में रहते हैं (यह विरोध)—पृथ्वी के मनुष्यों के साथ रहते हैं (भालु बानरों के संग रहे, यह अविरोध)। प्रति दिन दान किया करते हैं पर (कुदान ही में प्रीति है—यह विरोध) पृथ्वी दान ही से प्रेम रखते हैं (यह अविरोध हुआ)। सूर्यकुल के कलश हैं पर राहु को सुखद हैं (यह विरोध हुआ) सूर्य कुल के कलश हैं उनके राज्य में मार्ग का सबं को अति सुख है—मार्ग प्रदर्शक हैं अथवा सुन्दर सड़कें बनवा दी हैं जिन पर चलकर लोग सुख पाते हैं (यह अविरोध हो गया)। साधु लोग उन्हें साधु चरित्र कहते हैं, परंतु वे परपत्नी पर प्रेम रखते हैं (यह विरोध) वे लक्ष्मी बल्लभ हैं (यह अविरोध)। अकर कहलाते हैं पर धनुष धारण किये हैं (कहलाने में और बास्तविक क्रिया में विरोध सा है), परम कृपाल हैं (पर कृपा नहीं करते—यह विरोध है) पर कृपाण धारियों के पति हैं (यह अविरोध)। दो लोचन वाले प्रत्यक्ष हैं (पर बामलोचन से हीन हैं, यह विरोध हुआ) कुलटा स्त्री से हीन हैं (यह अविरोध)।

(नोट) श्लेषार्थ से विरोध नष्ट होकर केवल आभास मात्र रह जाता है। इस आभास को भी केशव ने विरोध ही माना है॥ हाल के अन्य आचार्य इसे एक स्वतंत्र अलंकार मानते हैं।

५—(बिशेषालंकार)

मूल—साधक कारण बिकल जहँ, होय साध्य की सिद्धि।
केशवदास बखानिये, सो विशेष परसिद्धि ॥२४॥

भावार्थ—कार्य का साधक कारण अपूर्ण हो पर कार्य पूर्ण सिद्ध हो।

(यथा)

मूल—सांप को कंकन, माल कपाल, जटान को जूट, रही जटि आंतैं।
खाल पुरानी, पुरानोइ बैल, सु और की और कहै विष मातैं॥
पारवती पति संपति देखि, कहै यह केशव संभ्रम तातें।
आपुन मांगत भीख भिखारिन देत दई मुँह माँगी कहांतें॥२५॥

शब्दार्थ—रही जटि आंतैं = भूख से आतैं पेट में चिपक रही हैं। खाल = गजचर्म। विष मातें = बिष खाये, मतवाले से बने रहते हैं। पारवतीपति = शिव। संभ्रम = भारी भ्रम है। आपुन = आप खुद। दई = हे दई। मुँहमांगी = मनोवांछित संपत्ति।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(व्याख्या)—शिव के घर में जो सम्पत्ति है वह अपूर्ण (अपर्याप्त) है, स्वयं शिव भी मंगन और भूखे हैं, पर याचकों को वांछित संपत्ति देते हैं।

(पुनः)

मूल—तमोगुण ओप तन ओपित, विषम नैन,
लोकनि बिलोप करैं, कोप के निकेत हैं।
मुख बिष भरे, बिषधर धरे, मुंडमाल,
भूषित बिभूति, भूत प्रेतानि समेत हैं॥
पातक पिता के सुत, पातकी ही को तिलक,
भावै गीत काम ही को, कामिनि के हेत हैं।

योगिन की सिद्धि, सब जग की सकल सिद्धि,
केशोदास दासि ही ज्यों दासन को देत हैं ॥२६॥

शब्दार्थ—ओप = कांति। ओपित = पानी चढ़ाया हुआ। बिषम नैन = तीन नेत्र। लोकन विलोप करैं = प्रलयकारी हैं। विपधर = सर्प। बिभूति = भस्म। पातक पिता के सुत = ब्रह्मा का शिर काटने का पाप जिनको लगा है। पातकी ही को तिलक = कलंकी चन्द्रमा को तिलक बनाये हैं (मस्तक पर धरे हैं)। भावै गीत काम ही को = काम दहन की प्रशंसा जिसे भाती है। कामिनी के हेत हैं = गौरी के हितुवा हैं, प्रेम-सहित अर्द्धांगिनी बनाये है। दासी = लौंडी, बांदी।

भावार्थ—स्पष्ट है।

(व्याख्या)—महादेव जी स्वयं अमंगल रूप हैं, पर योगियों को सांसारिक दासों को सब प्रकार की सिद्धियां देते हैं। अपर्याप्त कारण से कार्य की पूर्ण सिद्धि।

(पुनः)

मूल–बाजी नहीं, गजराज नहीं, रथ पत्ति नहीं, बलगात बिहीनो।
केशवदास कठोर न तीक्षण, भूलि हू हाथ हथ्यार न लीनो॥
जोग न जानत, मंत्र न जंत्र, न तंत्र न पाठ पढ्यौ परबीनो।
रक्षक लोकन के, सु गँवारिनि एक बिलोकनि ही बश कीनो॥

शब्दार्थ—बाजी = घोड़ा। पत्ति = पैदल। बलगात बिहीन = अबला। रक्षक लोकन के = श्री कृष्ण जी। गँवारिनि = ग्वालिन (देहातिन)। एक बिलोकनि = एक नजर से।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(व्याख्या)—लोक रक्षक श्री कृष्ण को बिना हथियार और सेना अथवा बिना मंत्र यंत्र किये ही अबला, गँवारी गोपिका एक ही नजर से जीत लेती हैं। कारण काफी नहीं पर कार्य की सिद्धि पूर्ण है।

(पुनः)

मूल—ब्रज की कुमारिका वै लीने शुक शारिका,
पढावैं कोक कारिकान केशव सबै निबाहि।
गोरी गोरी, भोरी भोरी, थोरी थोरी वैस फिरि,
देवता सी दौरि दौरि आई चोरा चोरी चाहि॥
बिन गुन, तेरी आन, भृकुटी कमान तानि,
कुटिल कटाक्ष बान, यह अचरज आहि।
एते मान ढीठ, ईठ मेरे को अदीठ मन,
पीठ दै दै मारती पै चूकती न कोऊ ताहि॥२८॥

शब्दार्थ—कोक कारिका=कोक शास्त्र की परिभाषाएं। सबै निबाहि=पूर्ण रीति से अर्थ समझा कर। चोरा चोरी=लुक छिपकर। चाहि आई=देख आई। बिनु गुन=बिना प्रत्यंचा की। तेरी आन=तेरी शपथ है, तेरो कसम। कुटिल=टेढ़ा। एते मान ढीठ=इतनी ढीठ हैं, इतनी अभ्यस्त हैं। ईठ मेरे को=मेरे इष्ट (मित्र) का। अदीठ मन=मन जो अदृष्ट है। पीठ दै दै=पीछे से (निशाने की ओर पीठ किये हुए)।

भावार्थ—ब्रज की कुमारियां (अनब्याही बालिकाएं) शुक शारिकाओं को लिये कोक शास्त्र की परिभाषाएं पूर्ण अर्थ

समझा कर पढ़ातीं हैं (जैसे कोई ब्याही प्रौढ़ा पढ़ाती है)। गोरी गोरी हैं, भोली भाली हैं, थोड़ी उमर की हैं, वे दौड़कर छिपे छिपे कृष्ण को देख आईं जैसे कोई देवता छिपे छिपे सबको देखता है पर उसे कोई नहीं देख सकता। तेरी कसम है, विना प्रत्यंचा की भौंह कमान तानकर, कुटिल कटाक्ष के बाणों से—आश्चर्य है कि वे इतनी अभ्यस्त हैं—कि मेरे मित्र कृष्ण के अदृश्यमान मन को, पींठ दिये हुए मारती हैं, पर कोई भी निशाना नहीं चूकती।

(व्याख्या)—अल्पवय कुमारिका प्रौढ़ा का काम करती है। बिना प्रत्यंचा की कमान, बाण भी टेढ़ा, अदृश्य मन का निशाना, और पीठ देकर निशाना लगाना, तिस पर भी पूर्ण सिद्धि।

(नोट)—अनुमान होता है कि बिहारी ने नीचे लिखा दोहा इसी छंद को देखकर लिखा है।

"तिय कित कमनैती पढ़ी, बिनु जिहि भौंह कमान।
चल चित बेझो चुकति नहिं, बंक बिलोकनि बान" ॥

बिहारी ने कहा तो, पर केशव की उक्ति इस हेत बढ़ी चढ़ी है कि "पीठि दै दै मारतीं" हैं, जिसका ज़िक्र बिहारी नहीं कर सके।

(पुनः)

मूल—बाँचि न आवै, लिखि कछू, जानत छांह न घाम।
अर्थ, सुनारी, बैदई, करि जानत पतिराम ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—लिखना = सोनार लोग जिस औज़ार से नकासी का काम करते हैं उसे 'क़लम' कहते हैं, और नकासी के लिये

पहले जो रेखाएं बनाते हैं उसको 'लिखना' कहते हैं। जानत छांह न घाम = सरदी गरमी का ज्ञान नहीं है। अर्थ = कविता का अर्थ लगाना। सुनारी = सोनार का काम। बैदई = बैद्य का काम। पतिराम = पतिराम नाम क एक सोनार विशेष।

(नोट)—प्रवाद है कि 'पतिराम' नामक एक सोनार केशव दास के पड़ोस में रहता था। वह सुशिक्षित तो न था पर केशव की संगति से उसे ऐसी शक्ति प्राप्त हो गई थी कि कठिन से कठिन कविता का अर्थ लगा देता था। अपने काम में भी साधरण ही कारीगर था। जड़ी बूटी द्वारा बैद्य का भी काम करता था। एक बार उसने केशव से निवेदन किया कि महाराज ! किसी प्रसंग में कुछ कह कर राजा इन्द्रजीत जी तथा प्रवीणराय की तरह अपने कवित्व द्वारा मेरा नाम भी अमर कर दीजिये तो मैं आपका कृतज्ञ हूंगा। केशव ने एव-मस्तु कहकर उसी समय यह दोहा कहा था और समय पाकर इस अलंकार के उदाहरण में उस दोहे को यहां रख दिया। आगे भी प्रभाव १२ में छंद नं० १९ देखो।

भावार्थ—पतिराम सोनार को न कुछ पढ़ना आता है,न सोनारी के काम में नकासी की रेखा बनाना आता है, न सरदी गरमी का यथार्थ ज्ञान है, पर कबिता का अर्थ करना, सोनारी करना और बैदई करना पतिराम खूब जानता है।

(व्याख्या)—अपूर्ण साधनकारण से पूर्ण सिद्धि हुई।

९—(उत्प्रेक्षालंकार)

मूल-केशव औरै वस्तु में और कीजिये तर्क।
उत्प्रेक्षा तासों कहैं जिनको बुद्धि सँपर्क ॥ ३० ॥

भावार्थ—और बस्तु में और बस्तु की भावना करने को बुद्धि-मान लोग उत्प्रेक्षा कहते हैं।

(यथा)

मूल—हर को धनुष तोर्‌यो, रावण को बंश तोर्‌यो,
लंक तोरी, तोरैं जैसे बृद्ध बंश बात हैं।
शत्रुन के सेल शूल फूल तूल सहे राम,
सुनि केशोराय की सौं हिये हहरात हैं।
कामतीर हू ते तिच्छ तारे तरुणीन हू के,
लागि लागि उचटि परत ऐसे गात हैं।
मेरे जान जानकी तू जानति है जान कछू,
देखत ही तेरे नैन मैन से ह्वै जात हैं॥ २१॥

शब्दार्थ—बंश = परिवार। बंश = रीढ़ की हड्डी। बात = वायु। फूलतूल—फूल तुल्य, पुष्प समान। सौं = शपथ। तिच्छ = तीक्षण। तारे = नेत्र पुतली। उचटि परत = उछल कर पीछे लौटते हैं। जान = टोना, जादू। मैन = (सं० मदन) मोम।

भावार्थ—श्रीरामजी ऐसे बली हैं जिन्होंने शिव का धनुष तोड़ा, रावण के बंश को निःशेष कर दिया, और लंका तोरी जैसे वृद्ध मनुष्यों की रीढ़ को बातरोग तोड़ डालता है (टेढ़ी कर देता है)। बैरियों के भाले और त्रिशूल पुष्प समान सहे जिनका हाल सुनकर, ईश्वर की शपथ, हृदय हहर जाते हैं (ऐसे कठोर अंग हैं)। युवती नारियों के नेत्र तारे जो काम-बाण से भी अधिक तीक्षण हैं राम के शरीर पर लग लग कर उचट जाते हैं (कुछ प्रभाव नहीं कर पाते), पर हे जानकी! मेरी सम्मति में ऐसा आता है कि तू कुछ टोना जानती है जिससे तेरे नेत्र देखते ही (वही कठोर शरीर) मोम सा हो

जाता है (द्रवित हो जाता है—प्रेम से प्रभावित होता है) अर्थात् तेरा सौन्दर्य अतुलनीय है।

(व्याख्या)—यहां सौन्दर्य पर टोना की भावना की गई है। 'मेरे जान' शब्द उत्प्रेक्षा के वाचक हैं।

(पुनः)

मूल—अंक न, शशंक न, पयोधि हू को पंक न सु-
अंजन न रंजित रजनि निज नारी को।
नाहिनै झलक झलकति तमपान की, न
छिति छांह छाई, छिद्र नाहीं सुखकारी की।
केशव कृपानिधान देखिये बिराजमान,
मानिये प्रमान राम बैन बनचारी को।
लागति है जाय कंठ नाग दिगपालन के,
मेरे जान सोई कृच्छ्र कीरति तिहारी को॥ ३२॥

शब्दार्थ=अंक=निशानी, दाग। शशंक=मृग का दाग। पंक=कीचड़। रजनि=रात्रि। छिति=पृथ्वी। छिद्र=दोष, पाप। सुखकारी=चंद्रमा। बनचारी=बन्दर। नाग=दिग्गज। दिगपाल=इन्द्र, वरुण कुबेरादि अष्ट दिगपाल। कृच्छ्र=दुःख, ईर्षाजनित दुःख।

(विशेष)—चंद्र कलंक पर हनुमान जी की उक्ति श्रीराम प्रति। भावार्थ—यह न तो दाग है, न मृग का चिन्ह है, न समुद्र का कीचड़ लगा है, न निज स्त्री रात्रि के काजल से रँगा है। चंद्रमा ने जो अंधकार को पान कर लिया है यह उसकी

झलक भी नहीं है, न पृथ्वी की छाया है, न चंद्रमा में छेद है (जिसमें होकर आकाश की नीलिमा दिखाई देती हो)। हे कृपानिधान! जिस लगे हुए दाग को आप देख रहे हैं उसके संबंध में मुझ बनचारी (मूढ़) का वचन सत्य मानिये, मेरे जान में तो यह दिग्गजों और दिग्पालों के कंठ से मिलने वाली आपकी कीर्ति की ईर्षा से पैदा हुआ दुःख ही है—(आपकी कीर्ति से चंद्रमा को दुःख हुआ है, वही है)

(व्याख्या)—चंद्रमा की श्यामता पर ईर्षाजनित दुःख की भावना की गई है। ''मेरेजान' वाचक हैं।

(नोट)—इस प्रभाव में ६ अलंकारों का वर्णन है।

(नवां प्रभाव समाप्त)

दसवां प्रभाव

(इसमें केवल एक अलंकार का वर्णन है)

७—(आक्षेपालंकार)

मूल–कारज के आरंभ ही, जहँ कीजत प्रतिषेध।
आक्षेपक तासों कहत, बहु बिधि बरनि सुमेध ॥ १ ॥

शब्दार्थ—प्रतिषेध = बरजना। सुमेध = सुबुद्धि वाले।

मूल–तीनो काल बखानिये, भावी, भयो, जु होइ।
कविकुल कोऊ कहत हैं याहि प्रतिषेधहि दोइ ॥ २ ॥

भावार्थ—केशव का मत है कि तीनों कालों (भावी, भूत, वर्तमान) में प्रतिषेध का वर्णन हो सकता है, परंतु यह भी बतलाते हैं कि कोई कोई आचार्य केवल दोही कालों (भावी और वर्तमान) का प्रतिषेध वर्णन करते हैं।

(भूत काल प्रतिषेध)

मूल–बरज्यों हौं हरि, त्रिपुरहर, बारक करि भ्रूभंग।
सुनो मदन मोहनि ! मदन ह्वैही गयो अनंग ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—हरि = कामदेव। त्रिपुरहर = त्रिपुर को नाश करने वाले। मदन मोहनी = रति। अनंग = अंगहीन, भस्मीभूत।

भावार्थ—(रति की कोई सखी रति प्रति कहती है कि) मैंने कामदेव को मना किया था (कि) त्रिपुर मर्दन महादेव से बैर मत करो, पर वे नहीं माने और हे मदन मोहनी ! (रति)

शिव के तनक टेढ़ी भौहैं होते ही, मदन जी भसीभूत हो गये। (वरज्यों = यह भूत कालिक क्रिया है)।

(भावी प्रतिषेध)

मूल—ताते गौरि न कीजिये कौनहु बिधि भ्रूभंग।
को जानै ह्वै है कहा प्राण नाथ के अंग॥ ४॥

शब्दार्थ—ताते = गरम होकर, क्रुद्ध होकर। भ्रूभंग = क्रोध सूचक भौंहों का टेढा होना। प्राण नाथ = शिव।

भावार्थ—(पार्वती ने प्रणय मान किया है, सखी समझाती है कि) हे गौरी! क्रुद्ध होकर किसी प्रकार भौहें न तानो, न जान इस क्रोध से शिव के अँग पर क्या बीते। (कहा ह्वैहै = यह भविष्य सूचक क्रिया है)

(वर्तमान प्रतिषेध)

मूल—कोबिद! कपट नकारशर लगत न तजहि उछाह।
प्रतिपल नूतन नेह को पहिरैं नाह सनाह॥ ५॥

शब्दार्थ—नकारशर = नाहीं रूपी शर। न तजहि = न छोड़ो। सनाह = कवच।

(नोट)—रति समय नायिका नाही नाहीं करती है, नायक कुछ सकुचाता है, तब सखी उत्तेजित करती है—(न तजहि = वर्तमान कालिक क्रिया है)

भावार्थ—हे कोविद! (नायक) इसके नाहीं नाहीं रूपी शर लगने से हतोत्साह मत हो, क्योंकि नायक तो प्रतिपल नवीन नेह का कवच पहनते हैं (नाही करने से हतोत्साह मत हो, नवीन नेह प्रगट करते हुये तुम अपना काम जारी रखो, क्योंकि तुम तो कोविद हो, नवीन प्रेममय बातों से राज़ी कर लो)

(आक्षेप के प्रकार)

मूल-प्रेम अधरीज, धीरजहु, संशय मरण, प्रकास ।
आशिष, धरम, उपाय कहि, शिक्षा केशवदास ॥ ६ ॥

भावार्थ—आक्षेप अर्थात् बर्जन कार्य नौ प्रकार से प्रगट किया जाता है । यथा—

१—(प्रेमाक्षेप)

मूल-प्रेम बखानत ही जहां, उपजत कारज बाधु ।
कहत प्रेम आक्षेप तहँ, तासों केशव साधु ॥ ७ ॥

भावार्थ—जहां पूर्व ेम वर्णन करतेही आरंभित कार्य में बाधा उपस्थित हो, वह प्रेमाक्षेप है ।

(यथा)

मूल-ज्यों ज्यों बहु बरजी मै, प्राणनाथ मेरे प्राण,
अंग न लगाइये जू , आगे दुख पाइबो ।
त्यों त्यों हँसि हँसि अति शिर पर उर पर,
कीबो कियो आंखिन के ऊपर खिलाइबो ।
एकौ पल इत उत साथ तें न जान दीन्हे,
लीन्हे फिरे हाथ ही कहांलौं गुण गाइबो ।
तुमतो कहत तिन्हैं छांड़ि कै चलन अब,
छांड़त ये कैसे तुम्हैं आगे उठि धाइबो ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—अंग लगाना=प्रेम से अपने आश्रित बना लेना । कहां लौं गुण गाइबो=मैं कहां तक प्र ंसा करूं ।

छांडत'''धाइबो=आगे चले जाने के लिये ये प्राण तुम्हें कैसे छोड़ेंगे। हाथ लीन्हें फिरे=सदैव अति प्रसन्न रखा।

भावार्थ—(परदेस जाते हुए नायक से कोई स्त्री, उसे रोकने की गरज़ से, पूर्व प्रेम का वर्णन करती है) ज्यों ज्यों मैं अधिकता से मना किया करती थी कि हे प्राणनाथ मेरे प्राणों को आग अंग न लगाओ, इससे आगे दुःख होगा, त्यों त्यों हँस हँसकर आप मेरे प्राणों को सिर हृदय और आंखों पर खेलाते रहे। एक पलमात्र के लिये साथ से अलग न किया सदैव मेरे प्राणों को हाथही में लिये रहे (अत्यन्त प्रसन्न रखा) इसकी मैं कहां तक प्रशंसा करूं। अब उन प्राणों को छोड़ कर तुम परदेस जाने कहते हो, सो ये तुम्हें आगे कैसे जाने देंगे, ये तो तुमसे आगे उठ भागेंगे।

(इस में पूर्व प्रेम वर्णन से नायक के गमन को रोकने की चेष्टा की गई है)

२—(अधैर्याक्षेत)

मूल—प्रेम भंग बच सुनत ही, उपजत सात्विक भाव।
कहत अधीरज को सुकवि, यह आक्षेप सुभाव॥ ९॥

भावार्थ—प्रेम भंग के वचन सुनकर जहां सात्विक भाव (आंसू, कंप, स्वरभंगादि) पैदा हों, उसे सुकवि जन अधैर्याक्षेप कहते हैं।

(यथा)

मूल—केशव प्रात बड़ेही बिदा कहँ आये प्रिया पहँ नेह नहे री।
आऊं महाबन ह्वै जु कह्यौ, हँसि बोल द्वै ऐसे बनाय कहे री॥

को प्रतिउत्तर देय सखी सुनि लोल विलोचन यों उमहे री।
सौंहै ककै हरि हारि रहे अधरातिक लौं असुवाँ न रहे री१०

शब्दार्थ—केशव = कृष्ण। प्रात बड़ेही = बड़े प्रातःकाल। नेह नहे = प्रेम पूर्ण। उमहे = उमड़े। सौंहैं = शपथ। ककै = करके। न रहे = न थमे।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(व्याख्या) बोल बनाय कहे (वास्तव में जाने का इरादा न था) प्रतिउत्तर न दे सकी (स्वरभंग हुआ), आंसू तो प्रत्यक्ष ही हैं। आधी रात तक रोई (प्रातःकाल से अर्द्धरात्रि तक नायक न जा सका गमन रुक गया)। रोने से अधीरता प्रगट ही है।

३—(धैर्याक्षेप)

मूल—कारन करि कहिये बचन, काज निवारण अर्थ।
धीरज को आक्षेप यह, बरणत बुद्धि समर्थ ॥११॥

भावार्थ—दुःखमय व्यंग युक्त बिधि क्रिया में बचन कहै, पर उसमें 'निषेध का' भाव हो।

(यथा)

मूल—चलत चलत दिन बहुत व्यतीत भये,
सकुचत कत चित चलत चलाये ही।
जात हैं ते कहौ कहा नाहिनै मिलत आनि,
जानि यह छांड़ौ मोह बढ़त बढ़ाये ही॥
मेरी सौं तुमहिं हरि रहियौ सुखहिं सुख,
मोहूँ है तिहारी सौहँ रहौं सुख पाये ही।

चलेही बनत जो तो चालिये चतुर पीय,

सोवत ही जैयो छाँड़ि जागौं गी हौं आये हाँ॥१२॥

शब्दार्थ—चित चलत चलाये ही = चित्त हटाने से ही हटता है॥

भावार्थ—विदेश जाने की चर्चा करते बहुत दिन हो गये, अच्छा तो अब संकोच किस बात का है (जाइये) क्योंकि चित्त तो हटाने ही से हटता है। जो विदेश जाते हैं क्या वे फिर कर नहीं आ मिलते? ऐसा समझ कर मोह छोड़ो मोह तो बढ़ाये ही से बढ़ता है। हे हरि! तुम्हें मेरी ही शपथ है, तुम विदेश में खूब आनन्द से रहना (मेरी चिन्ता में न रहना) और मैं भी तुम्हारी शपथ करके कहती हूं कि मैं सुखी ही रहूंगी। अगर जाने ही से काम बनता है, तो हे चतुर प्रियतम! जाइये, मगर ऐसा कीजियेगा कि मुझे सोती हुई छोड़ जाइयेगा, और मैं फिर तभी जागूंगी जब आप आवेंगे।

(व्याख्या)—विधि क्रिया में जाने की आज्ञा देती है, पर तात्पर्य मना करने का है।

४—(संशयाक्षेप)

मूल—उपजाये संदेह कछु, उपजत काज बिरोध।

यह संशय आक्षेप कहि बरणत जिनहिं प्रबोध॥१३॥

भावार्थ—कोई संदेह उत्पन्न कराकर कार्यारंभ में बाधा दी जाय वह संशयाक्षेप है।

(यथा)

मूल—गुनन बलित, कल सुरन कलित गाय,

ललित ललित गीत श्रवण रचाइहै॥

चित्रिनी हौं चित्रन में परम विचित्र तुम्हैं,
चित्रन में देखि देखि नैनन नवाइहै ॥
काम के बिरोधी मत शोधि शोधि साधि सिद्धि,
बोधि बोधि अवधि के बासर गँवाइहै ।
केशोराय की सौं मोहि काठिन महै है वा की,
रसनै रसिक लाल पान को खवाइहै ॥१४॥

भावार्थ—(कृष्ण प्रति राधिका की चित्रा सखी का कथन)—हे कृष्ण ! आप के गुण वर्णन के गीत अच्छे स्वर और सुन्दर ढंग से गाकर ललिता जी उसके कानों को प्रसन्न रखेगी। मैं चितेरिनी हूं, चित्र खींचने में परम चतुर हूं, अतः तुम्हारे सुन्दर सुन्दर चित्र खींच खींच कर उसे दिखलाया करूंगी जिन्हें देखकर लज्जा से वह नेत्र नीचे कर लिया करैगी। सिद्धि नाम्नी सखी काम विरोधी मत (ज्ञान विवेकमय उपदेश) ढूंढ २ कर उसे सुना कर प्रबोध दे दे कर किसी प्रकार अवधि के दिन बितावेगी, परंतु ईश्वर की शपथ है, मुझे यह कठिनाई जान पड़ती है कि हे लाल ! उसकी रसीली जीभ को पान कौन खिलावैगा ?

(नोट)—वह आपही के हाथ का लगाया पान पसंद करती थी, सो अब आप विदेश जा रहे हैं, अब यह काम कौन कर सकैगा, अतः तुम विदेश न जाओ, यह बाधा सूचक संशय बचन हैं)

५—(मरणाक्षेप)

मूल मरण निवारण करत जहं, काज निवारण होत।
जानहु मरणाक्षेप यह, जो जिय बुद्धि उदोत ॥१५॥

भावार्थ—अमरता सूचक शब्दों से मरण सूचक व्यंग द्वारा कार्यारंभ मे बाधा दीजाय वह मरणाक्षेप है।

(यथा)

मूल नीके कै किवांर देहौं द्वार द्वार दर वार,
केशोदास आस पास सूरज न आवैगो।
छिन में छवाय लेहौ ऊपर अटानि आजु,
आंगन पटाय देहौ जैसे मोहिं भावैगो॥
न्यारे न्यारे नारिदान मूंदिहौं झरोखे जाल
जाइहै न पानी, पौन आवन न पावैगो।
माधव तिहारे पीछे मोपहँ मरण मूढ़,
आवन कहत सो धौं कौन पैंड़े आवैगो॥१६॥

शब्दार्थ—दर=छोटा द्वार (खिड़की)। बार=बड़ा द्वार (फाटक)। नारिदान=नाबदान, पनारा। पैड़ा=रास्ता।
भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।
(व्याख्या)—शब्दार्थ तो यह है कि मौत आने न पावैगी, पर व्यंग यह है कि तुम्हारे जाते ही प्राण छोड़ दूंगी। मरण का भय दिखाकर गमन को रोकना यही मरणाक्षेप है।

६—(आशिषाक्षेप)

मूल-आशिष पिय के पंथ को, दीजै दुःख दुराय।
आशिष को आक्षेप यह, कहत सकल कविराय॥१७॥

भावार्थ—अपना दुःख छिपाकर, कार्य के लिये अपनी प्रसन्नता प्रकट करना आशिषापक्षेप है।

'भावै सो करहु' तो उदास भाव प्राणनाथ,
'साथलै चलहु' कैसे लोक लाज बहनो।
केशोराय की सौं तुम सुनहु छबीले लाल,
चलेही बनत जोपै नाहीं राजा रहनो।
तैसियै सिखाओ सीख तुमही सुजान पिय,
तुमहिं चलत मोहि जैसो कछू कहनो॥ २०॥

भावार्थ—(नायिका वचन नायक प्रति)—तुम बिदा मांगते हो, यदि मैं कहूं कि 'न जाओ यहीं रहो' तो इन बचनों से मेरी प्रभुता प्रगट होगी (जो उचित नहीं) यदि कहूं कि 'चले जाओ' तो अप्रेम सूचित होता है (जिसे मैं सहन नहीं कर सकती)। जो कहूं कि 'जैसा मन माने वैसा करो' तो इन बचनों से आपके प्रति मेरी उदासीनता प्रगट होती है (यह बात तो गैर से कही जाती है, तुम तो मेरे प्राणनाथ हो) यदि कहूं कि 'मुझे साथ ले चलिये' तो यह बात हो कैसे सकती है, क्योंकि लोकलज्जा का निर्वाह करना है। हे नाथ! (राजा) यदि आपको अब यहां नहीं रहना और जानेही से काम बनता है, तो आप सुजान हैं आपही सिखाइये कि आपके जाते समय मुझे क्या कहना चाहिये।

(व्याख्या)—नायिका अपने धर्म का चिंतवन करती है, यह वार्ता सुनकर नायक अपना गमन रोक देता है—यही धर्माक्षेप है।

८—(उपायाक्षेप)

मूल—कौनहु एक उपाय कहि, रोकै प्रिय प्रस्थान।
तासों कहत उपाय कबि, केशवदास सुजान॥ २१॥

भावार्थ—कार्यारंभ में बाधा डालने के लिये किसी ऐसे उपाय की शर्त लगाई जाय जिसका पूरा होना असंभव हो। इसे उपायाक्षेप कहते हैं।

(यथा)

मोको सबै ब्रज की युवती हर, गौरि समान सोहागिनि जानै।
ऐसी को गोपी गोपाल तुम्है बिन गोकुल में बसिबो उर आनै।
मूरति मेरी अदीठ कै इठ चलौ, कै रहौ जो कछू मन मानै।
प्रेमिनि छेमिनि आदि दै केशव, कोऊ न मोहिं कहू पहिचानै॥२२॥

शब्दार्थ—हर गौरि समान = शिव पार्वती वत् अर्द्धांग रूप। मूरति ··चलौ = हे मित्र यदि जाना है तो मेरी मूर्ति को अद्रष्ट करके जाओ अर्थात् ऐसा करके जाओ जिसमें मुझे कोई देख न सके, अर्थात् लोपांजन देकर या मारकर और जलाकर, क्योंकि तुम्हारे बिना यहां रहते मुझे लोग देखेंगे तो मेरी निंदा होगी और वह निंदा मैं सह न सकूंगी। प्रेमिनी = मुझपर प्रेम करने वाली सखियां। छेमिनि = मेरी छेम चाहने वाली परिवार की गुरु नारियां।

भावार्थ—हे प्रियतम तुम विदेश जाना चाहते हो, और मेरी दशा यह है कि मुझे सब ब्रज युवतियां आपकी अर्द्धांगिनी समझती हैं, और ऐसी कौन गोपी है जो आपके बिना इस गोकुल में रहना पसंद करे, अतः उपाय यह है कि मेरी मूर्ति को अद्रष्ट करके (चाहे लोपांजन से चाहे अन्य किसी प्रकार) जैसा आप का जी चाहै वैसा कीजिये, मनमाने रहिये मनमाने जाइये। पर मुझे इस प्रकार लोप कीजियेगा कि मेरी प्रेममय

सखियां और कुशलाकांक्षिणी गुरुस्त्रियां (सास ननंद इत्यादि) इत्यादि भी मुझे न देख सकें।

(व्याख्या)—नायिका, जाने का ऐसा उपाय बताती है जो नायक का किया नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि न वह उपाय हो सकेगा न नायक जायेगा, गमन रुक जायगा। इसी को उपायाक्षेप कहते हैं।

(नोट)—लोपांजन=एक प्रकार का अंजन है। जो इसे आंख में लगा लेता है वह सबकी आंखों से अदृष्ट हो जाता है। वह सबको देखता है, पर उसे कोई नहीं देखता।

९—(शिक्षाक्षेप)

मूल सुख ही सुख जहँ राखिये, सिखही सिख सुखदानि।
शिक्षाक्षेप कह्यौ बरणि, छप्पय बारह बानि ॥२३॥

शब्दार्थ—सुख ही सुख=तसल्ली दे दे कर। सिखही सिख= समझा बुझाकर। सुखदानि=प्रियतम। बानि=(वर्ण) तरह, प्रकार।

भावार्थ—तसल्ली दे दे कर, समझा बुझा कर अपने प्रियतम को कार्यारंभ से रोके, वही शिक्षाक्षेप है। इसपर केशव ने बारह मासा के ढंग पर बारह छप्पय कहे हैं।

(चैत्र वर्णन)—छप्पय।

मूल—फूलीं लतिका ललित तरुणितर, फूले तरुवर।
फूली सरिता सुभग, सरस फूले सब सरवर ॥
फूलीं कामिनि, कामरूप करि कंतनि पूजहिं।
शुक सारो कुल हँसै, फूलि कोकिल कल कूजहिं ॥

कहि केशव ऐसी फूल महँ फूलहिं शूल न लाइये।
पिय आपु चलन की का चली चित्त न चैत चलाइये ॥२४॥

शब्दार्थ—तरुणि तर=पूर्ण युवती होकर। फूल=आनंद। पिय आपु चलन की का चाली=क्या चर्चा चलाते हैं, अपने जाने की क्या चर्चा चलाते हैं। फूलहिं शूल न लाइये= आनंद में कांटे न चुभाइये, रंग में भंग न करो।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट ही है।

(व्याख्या)—चैत की कामोद्दीपक सामग्री का वर्णन सुनाकर नायक को समझा बुझाकर उसका गमन रोक दिया। इसी प्रकार बारहो महीनों का तात्पर्य समझिये।

(बैशाष वर्णन)—छप्पय।

मूल- केशवदास अकाश अवनि बासित सुबास करि।
बहत पवन गति मंद गात मकरंद-बुंद धरि ॥
दिसि विदिसानि छबि लागि, भाग पूरित पराग बर।
होत गंध ही अंध बौर भौंरा विदेशि नर ॥
सुनि सुखद, सुखद सिख सीखियत,
रति सिखई सुख-साख मैं।
बर-बिरहिन बधत बिशेष करि
काम बिशिष बैशाख मैं ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—छबिलागि=छबि लिपटी हुई है, शोभा युक्त हैं। भाग=दिशायें। बौर=बावले, पागल। विदेशि=प्रवासी। सुखद=सुखदायक अर्थात् नायक—(संबोधन में है)। सुखद सिख=सुखदाई शिक्षा। सीखियत=सीख लेनी

चाहिये। रति सिखई=प्रीति ने सिखाई है। सुख-साख मैं=(सिखई शब्द का क्रिया विशेषण है) अत्यंत आनन्द के समय में। बर-बिरहिनि=पति से वियुक्त, पति हीना। सुनि सुखद=हे सुखद नायक! सुनिये। सुखद सिख सीखियत=यह सुखद शिक्षा आपको सीख लेनी चाहिये। रति सिखई सुख-साख में=जो शिक्षा प्रीति ने आनंद के समय में सिखाई है (जिसका अनुभव मैने संयोग समय में किया है)

भावार्थ—बैशाख में आकाश और पृथ्वी सुगंध से बासित होते हैं। मंदगति से बायु बहती है क्योंकि उसका शरीर पुष्प मकरंद से लदा हुआ होता है (मकरंद के बोझ से पवन वेग से नहीं चल सकता)। सब दिशायें सुशोभित लगती हैं, और प्रत्येक दिशा-विभाग उत्तम पराग से परिपूर्ण रहता है। गंध ही के कारण भौंरे और प्रवासी नर अंधे और बावले हो जाते हैं (मद से मस्त होकर कामातुर हो उठते हैं)। अतः हे सुखद! यह सुखद शिक्षा आपको सीख लेनी चाहिये जो प्रीति ने मुझे आनंद के समय में सिखाई है (संयोग समय में जो मैं ने अनुभव किया है) कि पति वियोगिनी नारी को बैशाख मास में काम के बाण विशेष रूप से लगते हैं। अतः बैशाख में आपका विदेश गमन उचित नहीं।

(ज्येष्ठ वर्णन)

मूल—एक भूत मय होत भूत, भजि पंचभूत भ्रम।
अनिल, अंबु, आकाश, अवनि ह्वै जात आगि सम॥
पंथ थकित, मद मुकित सुखित सर सिंधुर जोवत।
काकोदर करकोष, उदर तर केहरि सोवत॥

प्रिय! प्रबल जीव यहि विधि अबल, सकल बिकल जलथल रहत।
तजि केशवदास उदास मति, जेठ मास जेठे कहत ॥२६॥

शब्दार्थ—भूत = तत्व। भजि पंचभूत भ्रम = "पंचभूत मय संसार है" यह भ्रम भग जाता है। अनिल = पवन। अंबु = जल। पंथ थकित = रास्ता चलना बंद हो जाता है (जेठ में सफर करना वैद्यक से मना है)। मद मुकित = मस्ती छोड़-कर (प्रवाद है कि हाथी वसंत में कामातुर होकर मस्ताता है, और ग्रीष्म में उसका मद उतर जाता है)। सुखित = सूखे हुए। (अन्वय) सुखित सर जोवत सिंधुर मद मुकित (होत) = सूखे सरोवर देखकर हाथी भी मस्ती छोड देता है। काकोदर = सर्प। कर कोष = सूंड़ की कुंडली। तजि = छोड़ दीजिये (विधि क्रिया है)। उदास मति = घर से उदास होकर विदेश जाने की राय। जेठे = गुरु जन।

भावार्थ—जेठ में, यह पंच तत्व मय सृष्टि एक भूतमय हो जाती है, पंचभूत मय होने का भ्रम छूट जाता है। पवन, पानी, आकाश और पृथ्वी सब अग्निवत (गर्म) हो जाते हैं। रास्ता चलना बंद हो जाता है, सूखे तड़ाग देख कर हाथी भी मस्ती छोड़ देता है। हाथी की सूंड़ की कुंडली में सर्प सोता है और हाथी के पेट के नीचे सिंह आराम करता है (मारे गर्मी के स्वाभाविक बैर विरोध भूल जाते हैं)। हे प्रिय! थल के ऐसे प्रबल जीवगण इतने निर्बल हो जाते हैं, और जलस्थल के जीव भी सब बिकलही रहते हैं (क्योंकि जल भी तो अग्निवत गर्म हो जाता है), अतः जेठे लोग ऐसा कहते हैं कि जेठ में घर से उदास होकर विदेश जाने की सम्मति छोड़ देना चाहिये।

(आषाढ़ वर्णन)—छप्पय ।

मूल—पवन चक्र परचंड चलत चहुँ ओर चपल गति ।
भवन भामिनी तजत भँवति मानहु तिनकी मति ॥
संन्यासी यहि मास होत इक आसन बासी ।
मनुजन की को कहै भये पच्छियो निवासी ॥
यहि समय सेज सोवन लियो श्रीहि साथ श्रीनाथ हू ।
कहि केशवदास अषाढ़ चल मैं न सुन्यों श्रुतिगाथ हू ॥२७

भावार्थ—अषाढ़ में जो प्रचंड वर्षंडर चपलगति से चारो ओर चलते हैं, वे ऐसे मालूम होते हैं मानो उनकी मति चक्कर लगाती फिरती है जिन्होंने इस मास में अपने घरों में अपनी स्त्रियां छोड़ कर विदेश को गमन किया है। सन्यासी भी इस मास में एक स्थान बासी होते हैं। मनुष्यों की कौन कहे, पक्षी भी इस मास में एक स्थान में रहने का प्रबन्ध करते हैं (बहुत से पक्षी घोंसले बनाते हैं)। इसी मास में विष्णु महराज लक्ष्मी को साथ लेकर सेज पर सोना अख्तियार करते हैं। अषाढ़ मास में तो मैंने वेद में भी विदेश गमन नहीं सुना। (अतः आप कैसे जायँगे)

(सावन वर्णन)

मूल—केशव सरिता सकल मिलत सागर मन मोहैं ।
ललित लता लपटात तरुन तन तरवर सोहैं ॥
रुचि चपला मिलि मेघ चपल चमकत चहुँ ओरन ।
मन भावन कहँ भेंटि भूमि कूजत मिस मोरन ।

यहि रीति रमन रमनी सकल लागे रमन रमावनै।
पिय गमन करन की को कहै गमन सुनिय नहिं सावनै॥२८॥

शब्दार्थ—छवि=चमक दमक। मन भावन...मोरन=पृथ्वी अपने मनभावन (जल) को भेंटकर मोरों-मिस कूजती है। रमनी रमन=स्त्री पुरुष। रमन रमावन लागे=रमन लगे और रमाने लगे (मिलने जुलने लगे, समागम करने लगे)। गमन=विदेश गमन। गमन=द्विरागमन, गौना।
(हिन्दू आचार के अनुसार सावन में द्विरागमन नहीं होते)

भावार्थ—सरल है।

(भादौं वर्णन)

मूल-घोरत घन चहुँ ओर घोष निर्घोषनि मंडहिं।
धाराधर धरि धरनि मुसलधारनि जल छंडहिं॥
झिल्लीगन झंकार पवन झुकि झुकि झकझोरत।
बाघ सिंह गुंजरत पुंज कुंजर तरु तोरत॥
निशिदिन विशेष निःशेष मिटि जात,सु ओली ओढ़िये।
निजदेश पियूष बिदेश बिष भादौं भवन न छोंड़िये॥२९॥

शब्दार्थ—घोरत=गरजते हैं। घोष=शब्द (झिल्ली दादुर आदि का) निर्घोष=बादल का शब्द। धरि धरणि= पृथ्वी को पकड़ कर (अति निकट आकर)। विशेष=विशेषता। निःशेष मिटि जात=बिल्कुल मिटि जाती है। ओली ओड़ना= अंचल फैलाकर भिक्षा माँगना। निज देश......विष=(चूँकि 'पीयूष' और 'बिष' दोनों नाम जल के हैं अतःभाव यह है कि) निज देश में रहै तो पानी अमृतवत है, विदेश में वही जल विषवत है। निशदिन विशेष निःशेष मिटिजात=रात दिन

की विशेषता बिल्कुल मिट जाती है, रात दिन का भेद मिट जाता है।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट।

(आश्विन वर्णन)

मूल—प्रथम पिंड हित प्रगट पितर पावन घर आवैं।
नव दुर्गा नर पूजि स्वर्ग अपवर्गहु पावैं॥
छत्रनि दै छितिपतिहु लेत भुव लै सँग पंडित।
केशवदास अकास अमल, जल जलजनि मंडित॥
रमणीय रजनि रजनीश रुचि रमारमनहू रासरति।
कल केलि कलपतरु क्वांर महँ कंत न करहु बिदेश मति॥३०॥

शब्दार्थ—लेत भुव लै सँग पंड़ित=पंडित (पुरोहित) को संग लेकर निज राज्य की पृथ्वी का पूजन करते हैं अर्थात् निज पृथ्वी का सम्मान करते हैं। रजनीश रुचि=चंद्रमा की चांदनी से। रमारमन=कृष्ण जी। केलि कल्प तरु=केलिकी समस्त कामनाएं पूर्ण करने को कल्प वृक्षवत् (यह 'क्वांर' का विशेषण है)। जल जलज़नि मंडित= जलाशय कमलों से मंडित हो जाते हैं। रमणीय रजनि रजनीश रुचि=चंद्रमा की चांदनी से रात्रि सुन्दर हो जाती है। रमा रमन हू रास रति=कृष्ण को भी रास में प्रीति होती है।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(कार्तिक वर्णन)

मूल—बन, उपवन, जल, थल, अकास दीसंत दीप गन।
सुखही सुख दिनरात जुवा खेलत दंपति जन॥

देव चरित्र विचित्र चित्र चित्रित आंगन घर।
जगत जगत जगदीश जोति, जगमगत नारि नर ॥
दिन दान न्हान गुनगान हरि जनम सुफल करि लीजिये।
कहि केशवदास बिदेशमति कंत न कातिक कीजिये ॥३१॥

शब्दार्थ—दंपति = (जाया + पति) पत्नी और पति। देव चरित्र .....घर = देवताओं के चरित्रों के चित्रों से घरों के आंगन चित्रित होते हैं (दिवारी, गोवर्धन पूजा, यम द्वितिया तथा उद्बोधिनी एकादशी को आंगनों में विविध चरित्रमय चित्र बनते हैं)। जगत जगत जगदीश जोति = जगदीश की ज्योति से सारा संसार जग उठता है (विष्णु जी जग उठते हैं, और जग जन भी वर्षा कालीन आलस्य से छुट्टी पाकर चैतन्य हो जाते हैं)। न्हान = (स्नान) कार्तिक स्नान। गुन गान = ग्वालों का दिवारी गान।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(मृगसिर वर्णन)

मूल-मासन में हरि अंश कहत यासों सब कोऊ।
स्वारथ परमारथ हु देत भारथ गहँ दोऊ ॥
केशव सरिता सरनि फूल फूले सुगंध गुर।
कूजत कल कलहंस, कलित कलहंसनि को सुर ॥
दिन परम नरम शीत न गरम करमकरम यह पाय ऋतु।
करि प्राननाथ परदेस कहँ मारगसिर मारग न चितु॥३२॥

शब्दार्थ—हरि अंश = ईश्वर का अंश (मासा नां मार्गशीर्षोऽहम्—गीता) गुर = (फा० गुल) फूल। कूजत ···· सुर

=कल हंस और कल हंसिनी मधुर सुर से कूजती हैं (प्रवाद है कि इसी मास में हंसिनी गर्भवती होती है)। नरम = सुखद। करम करम यह पाय ऋतु = अच्छे कर्मों की करतूत से यह ऋतु पाकर। मारग चितु न करि = मार्ग चलने को मन न करो।

भावार्थ—इस महीने को सब लोग हरिअंश मानते हैं। इस भारतवर्ष में यह मास स्वार्थ और परमार्थ दोनों का देने वाला है (खान पान, काम काज, रति समागमादि अधिक सुखद होते हैं, और यज्ञ कर्मादि भी अधिक होते हैं। विवाह दुरागमनादि होना भी आरंभ हो जाते हैं)। नदियों और सरोवरों के किनारे सुगन्धित फूल फूलते हैं। कलहंस और कल हंसिनियाँ प्रेममय होकर कूजती हैं। दिन बड़ा सुखमय होता है, न बहुत शीतल न गर्म। हे प्राणनाथ ! अच्छे कर्मों के पुण्य से यह ऋतु पाकर अगहन में विदेश जाने की इच्छा न कीजिये।

(पूस वर्णन)

मूल—शीतल जल, थल बसन, असन शीतल अनरोचक।
केशवदास अकाश अवनि शीतल अशु मोचक॥
तेल, तूल, तामोर, तपन तापन, नव नारी।
राज रंक सब छाँड़ि करत इनहीं अधिकारी॥
लघु दिवस दीह रजनी रमन होत दुसह दुख रूस में।
यह मन क्रम बचन विचारि पिय पंथ न बूझिय पूस में॥३३॥

शब्दार्थ—अनरोचक = जो न रुचै। तूल = रुई। तामोर = (ताम्बूल) पान। तपन = सूर्य। तापन = अग्नि। रूस = रूठना।

भावार्थ—पूस मास में शीतल जल, स्थल, वस्त्र और शीतल भोजन नहीं रुचते। आकाश और जमीन शीतलता के कारण अति कष्ट दायक हो जाते हैं। राजा और रंक सब छोड़ कर, तैल, रूई, पान, सूर्य (घाम) अग्नि, और नवीन स्त्री को ही अधिक सेवन करते हैं। दिन छोटे होते हैं, और रमनार्थ रात्रि बड़ी होती है, रूठने में बड़ा दुःख होता है। मन, बचन, कर्म से इन बातों पर बिचार करके, हे कंत! पूस में सफर न करना चाहिये।

(माघ वर्णन)

मूल—बन, उपबन, केकी, कपोत, कोकिल कल बोलत।
केशव भूले भँवर भरे बहु भायन डोलत॥
मृगमद, मलय, कपूरधूर, धूसरित दसौ दिसि।
ताल, मृदंग, उपंग सुनत संगीत गीत निसि॥
खेलत बसंत सतत सुघर संत असंत अनंत गति।
घर नाह न छांड़िय माह में जो मन माहि सनेह मति॥३४॥

शब्दार्थ—केकी = मोर। भरे बहु भायन = बहुत भावों से भरे। डोलत = इधर उधर घूमते हैं। मृगमद = कस्तूरी। मलय = चंदन। धूसरित = पूर्ण, रंजित। ताल = मँजीरा। उपंग = नसतरंग। सुघर = प्रवीण। संत असंत = भले बुरे लोग। अनंत गति = अनेक प्रकार से।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(फागुन वर्णन)

मूल—लोक लाज तजि राज रंक निरसंक बिराजत।
जोइ भावत सोइ कहत करत पुनि हास न लाजत॥

घर घर युवती युवन जोर गहि गांठिन जोरहिं ।
बसन छीनि मुख मांड़ि, आंजि लोचन तिन तोरहिं ॥
पटवास सुवास अकास उड़ि भुवमंडल सब मंडिये ।
कह केशवदास विलास निधि ! फागुन कागुन छांडिये ॥ २५॥

शब्दार्थ—युवन = जवान मनुष्य । जोर गहि = ज़बर दस्ती पकड़ कर । मुख मांड़ि = मुख पर काजल इत्यादि लगाकर । तिन तोरहिं = तिनका तोड़ती हैं कि इनको किसी की नज़र न लगै, व्यंग यह है कि बड़ी सुन्दर शकल है । पटवास = सुगंधित चूर्ण (गुलाल अबीर इत्यादि) । सुवास = सुगंधित । विलासनिधि = हे विलास निधि नायक । कागुन = किस कारण । फागुन कागुन छांड़िये = फागुन में मुझे किस कारण अकेली छोड़ जायँगे ।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है ।

(नोट)—इस प्रभाव भर में केशव ने केवल 'आक्षेप' अलंकार का वर्णन किया है और सब उदाहरण शृंगार रस ही के दिये हैं । इससे यह न समझ लेना चाहिये कि अन्य रसों में आक्षेप अलंकार का प्रयोग नही हो सकता ।

[दसवां प्रभाव समाप्त]

ग्यारहवां प्रभाव

(क्रम से अपन्हुति तक १३ अलंकार)

८–(क्रम अलंकार)

मूल आदि अंत भरि बरणिये, सो क्रम केशवदास ।
गणना गणना सों कहत जिनके बुद्धि प्रकास ॥१॥

(नोट)—केशव कृत यह परिभाषा साफ नहीं है। पर उदाहरणों से ज्ञात होता है कि जिसे केशव ने क्रम अलंकार माना है, उसे परवर्ती आचार्यों ने 'शृंखला' वा 'एकावली' नाम दिया है और यों परिभाषा दी है ।

किये जंजीरा जोर पद एकावली प्रमान । और
जिसे केशव 'गणना' अलंकार मानते हैं, उसे हाल के आचार्य अलंकार ही नहीं मानते ।

(क्रम के उदाहरण)

मूल—धिक मंगन बिन गुणहिं, गुण सु धिक सुनत न रीझिय ।
रीझ सु धिक बिन मौज, मौज धिक देत जु खीझिय ॥
दीबो धिक बिन सांच, सांच धिक धर्म न भावै ।
धर्म सु धिक बिनु दया, दया धिक अरि कहँ आवै ॥
अरि धिक चित्त न सालई, चित धिक जहँ न उदार मति ।
मति धिक केशव ज्ञान बिनु, ज्ञान सु धिक बिनु हरि भगति ॥२॥

शब्दार्थ—मंगन = मांगना, याचना करना । मौज = बकसीस ।
दयाधिक'''आवै = वह दया किस काम की जो शत्रु हमारे

ऊपर करै। शत्रु की दया का पात्र बनना वीर के लिये इष्ट नहीं। चित्त न सालई = जो चित को दुखित न किये रहै।

भावार्थ—यदि कोई जन बिना अपना गुण दिखाये किसी से कुछ मांगे, तो ऐसी याचना को धिक्कार है, वह गुण धिक्कार योग्य है जिसे देख सुनकर लोग न रीझें। उस रीझ को धिक्कार है जो बकसीस न दिलवावे, वह बकसीस धिक है जिसे देते समय क्रोध आजाय, वह देना धिक है जो सत्य के लिये न हो, वह सत्य धिक है जिसे धर्म न भावै, वह धर्म धिक है जिसमें दया न हो, वह दया धिक है जो हमारा शत्रु हमपर करै, वह शत्रु धिक है जो चित्त में खटकता न रहे, वह चित्त धिक है जिसमें उदार मति न हो, वह मति धिक्कार योग्य है जिसमें ज्ञान न हो, वह ज्ञान धिक है जिसमें हरिभक्ति न हो।

(पुनः)

मूल—सोभति सो न सभा जहँ बृद्ध न, बृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधुन साधित दीह दया न दिपै जिय माहीं॥
सो न दया जु न धर्म धरै धर, धर्म न सो जहँ दान बृथाहीं।
दान न सो जहँ सांच न केशव, सांच न सो जु बसै छल छाहीं॥३॥

शब्दार्थ—ते न पढ़े... जियमाहीं = (अन्वय) ते पढ़े न (शोभत) जिन जिय माही साधुन साधित दीह दया न दिपै। (अर्थ)—वे पढ़े लोग शोभा नहीं पाते जिनके हृदय में साधु-जन साधित दीह दया दीप्तमान न हो। साधुन साधित = साधुओं द्वारा की हुई, जैसी साधु लोग किया करते हैं।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(पुनः)

मूल-तजहु जगत विन भवन, भवन तजि तिय बिन कीने ।
तिय तजि जु न सुख देय, सुख सु तजि संपति हीने ॥
संपति तजि बिन दान, दान ताजि जहँ न विप्र मति ।
विप्र तजहु विन धर्म, धर्म ताजि जहाँ न भूपति ॥
ताजि भूप भूमि बिन, भूमि तजि दीह दुर्ग बिन जो बसै ।
ताजि दुर्ग सु केशवदास कवि, जहां न जल पूरण लसै ॥४॥

शब्दार्थ—मति = मति मान, बुद्धिमान (विप्र का विशेषण)। दीह दुर्ग = बड़ा परकोटा (रक्षार्थ बड़ी ऊंची चहार दीवारी)
भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

१—(गणना अलंकार)

(नोट)—इसकी परिभाषा ऊपर क्रम अलंकार की परिभाषा के साथ ही है। वहीं देख लीजिये। इसमें केशव ने एक से दस तक की गणना की वस्तुओं को बतलाया है। केशव के मत के साथही साथ हम यहां वैसेही अन्य शब्दों को भी लिखते जायेंगे।

(एक सूचक)

मूल-एकै आतम, चक्र रवि, एक शुक्र की दृष्टि ।
एकै दसन गणेश को, जानति सिगिरी सृष्टि ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—आतम = ब्रह्म। चक्ररबि = सूर्य के रथ का पहिया। शुक्रदृष्टि = शुक्राचार्य की आंख। दसन = दांत।
(विशेष)—चंद्रमा, भूमि और गजमुक्ता भी।

(दो सूचक)

मूल–लेखनि डंक, भुजंग की रसना, अयननि जानि।
गजरद, मुख चुकरैंड़ के, कक्षाशिखा बखानि ॥ ६ ॥
नदीकूल द्वै, राम सुत, पक्ष, खड़ग की धार।
द्वै लोचन, द्विजजन्म, पद, भुज, अश्विनीकुमार ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—अयन = उत्तरायन, दक्षिणायन। चुकरैंड़ = दोमुहाँ साँप। कक्षाशिखा = काकपक्ष, पाटी। रामसुत = कुश और लव। पक्ष = कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष।

(विशेष)—कुच, कान, शकटचक्र, नाक के नथने (नासारंध्र), भी।

(तीन सूचक)

मूल–गंगा मग, गंगेशदृग, ग्रीवरेख, गुणलेखि।
पावक, काल, त्रिशूल, बलि, संध्या तीनि विशेखि ॥ ८ ॥
पुष्कर, बिक्रम, राम, बिधि, त्रिपुर, त्रिवेणी, बेद।
तीनि पाप, परिताप, पद ज्वर के तीन, सखेद ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—गंगामग = गंगा के तीन पथ (इसी से गंगा त्रिस्रोता या त्रिपथगा कहलाती हैं) गगेशदृग = शिव नेत्र। गुण = सत, रज, तम। पावक = अग्नि तीन दक्षिणाग्नि, गार्हस्पत्ति, आह्वनीय। काल = भूत, भविष्य, वर्तमान। त्रिशूल = त्रिशूल के तीन फल। बलि = त्रिबली की रेखा तीन।

पुष्कर = पुष्करक्षेत्र के तीन कुंड (वृद्धपुष्कर, शुद्धवाय, ज्येष्ठकुंड)। विक्रम = तीन बल (तन, मन, धन)। राम = तीन (परशुराम, दासरथीराम, बलराम)। विधि = क्रिया (वेदविधि, लोकविधि, कुलविधि)। वेद = ऋगु, यजुर,

साम। ताप=दैहिक, दैविक, भौतिक। परिताप=तीन (जैन मत के अनुसार—मन परिताप, बलपरिताप, बीर्य परिताप)। ज्वरपद=ज्वर के तीन पैर (वैद्यक से—बात, पित्त, कफ)
(विशेष)—लोक (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल), कांड (कर्म, ज्ञान, भक्ति), देव (त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश), गणेश नेत्र, कालिका नेत्र भी तीन हैं।

(चार सूचक)

मूल-बेद, बदन बिधि, बारिनिधि, हरिबाहन, भुज चार।
सेना अंग, उपाय, युग, आश्रम, बरण बिचारि ॥ १० ॥
सुरनायक-बारन-रदन, केशव दिशा बखानि।
चतुरब्यूह रचना चमू चरण, पदारथ जानि ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—वेद=ऋगु, यजुर, साम, अथर्व। वदन बिधि= ब्रह्मा के मुख। वारिनिधि=समुद्र (चारो दिशा के) हरि-बाहन=कृष्ण के रथ के घोड़े। हरिभुज=विष्णु के हाथ। सेना अंग=रथ, हाथी, घोड़ा पैदल। उपाय=साम, दाम, दंड, भेद। सुरनायक बारन रदन=ऐरावत के दंत। चतुर ब्यूह रचना चमू=सेना की चार प्रकार की ब्यूह रचना (शकटब्यूह, क्रौंच ब्यूह, धनुष ब्यूह, चक्र ब्यूह)। चरण=छंद के चार चरण। पदारथ=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।
(विशेष)—अवस्था=(जाग्रत, स्वप्न, सषोप्ति, तुरीय)। फल= धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। धाम=बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारका। वर्ग=चतुर्वग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)।
(नोट)—वेद तीन भी माने जाते हैं और चार भी। समुद्र— चार भी और सात भी। दिशा=चार भी, आठ भी और दस

भी। 'चतुर्व्यूह' का अर्थ कोई २ कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, तथा कोई राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी लेते हैं।

(पांच सूचक)

मूल पंचभूत, इंद्रिय, कवल, रुद्रबदन, गति, बाण।

लक्षण पंच पुराण के, पच अग अरु प्राण ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—कवल = पंच कौल(भोजन करने समय पहले पांच कौर खाये जाते हैं (तुलसी)—'पंच कवल करि जेवन लागे'। गति = मुक्ति—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य, सान्निध्य। पंच पुराणलक्षण = सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, देवताओं की उत्पत्ति और वंश परंपरा, मन्वन्तर, मनु-वंश के विस्तार का वर्णन। पंच अंग = तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण। पंच-प्राण। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान।

मूल-पचवर्ग, तरुपच, अरु पच शब्द परमान।

पंच संधि, पंचाग्नि भनि, कन्या पांच समान ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—पंचवर्ग = क, च, ट, त और प। पंचतरु = (स्वर्ग के पांच वृक्ष) मंदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन। पंच शब्द = १—(मंगल सूचक)—तंत्री, ताल, झांझ, नगाड़ा और तुरही। २—(व्याकरण से) सूत्र, वार्तिक, भाष्य, कोश और कवि प्रयोग। ३—(पंचध्वनि) वेदध्वनि, वंदीध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि और निशानध्वनि। पंचसंधि = (व्याकरण में) स्वरसंधि, व्यंजनसंधि, विसर्गसंधि, स्वादिसंधि और प्रकृतिभाव। पंचाग्नि = अन्वहार्य, पचन, गार्हपत्य, आहवनीय और सभ्य। पंचकन्या = अहल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी।

मूल-पंचभूत, पातक, प्रगट पंच यज्ञ, जिय जानि।
पंच गव्य माता, पिता, पंचामृतनि बखानि ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—पंचभूत = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।
पंच पातक = ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण चोरी, गुरु शय्या-गमन और इनका संग।
पंच यज्ञ = ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ (अतिथि सत्कार)।
पंच गव्य = दूध, दही, घी, गोबर और मूत्र।
पंच माता = निज जननी, आचार्यपत्नी, राजपत्नी, सास, मित्र पत्नी।
पंच पिता = जनक, उपनेता, ससुर, अन्नदाता और भयत्राता।
पंच अमृत = दूध, दही, घी, मधु, मिश्री।

(षट सूचक)

मूल-कुलिश कोण षट, तर्क षट, दर्शन, ऋतु, रस, अंग।
चक्रवर्ति, शिवपुत्र मुख, सुनि षटराग प्रसंग ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—कुलिश कोण = बज्र के छः कोण माने जाते हैं।—
षटतर्क = बेदान्त, सांख्य, पातंजलि, न्याय, मीमांसा, वैशेपिक।
षट दर्शन = वैष्णव, ब्राह्मण, योगी, सन्यासी, जंगम और सेवरा।
षट रस = खट्टा, मीठा, नमकीन, कटु, अम्ल, कसैला।
षट ऋतु = बसंत, ग्रीष्म, बर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर।
षट अंग = (बेद के) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष, निरुक्ति।
षट चक्रवर्ती = बेणु, बलि, धंधुमार, अजपाल, प्रवर्तक, और मानधाता।

षट राग = भैरव, मालकौस, हिंडोल, दीपक, श्री, मेघ।

(पुनः)

मूल—षटमाता षट बदन की, षट गुण बरनहु मित्त।
आततार्इ नर षट गनहु, षटपद मधुप, कवित्त ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—षटमाता = कृतिका नक्षत्र के ६ तारे।
षट गुण = परराष्ट्र संबंधी नीति के छः अंग—संधि, विग्रह, मान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय।
षट आततार्इ = आगलगानेवाला, बिषदेनेवाला, शस्त्र प्रहारी, धनहर्ता, क्षेत्र हर्ता, स्त्री हर्ता।
(विशेष)—ज्वरबाहु, त्रिशिरा नेत्र भी छः के बोधक हैं।

(सात सूचक)

मूल—सात रसातल, लोक, मुनि, द्वीप, सूरहय, बार।
सागर, स्वर, गिरि, ताल, तरु, अन्न, ईति, करतार ॥१७॥

शब्दार्थ—सात रसातल = तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल।
लोक = भूः, भुवः, स्वः, महः, जन, तप, सत्य।
मुनि = (वैदिक)—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्य, पुलह, क्रतु, बशिष्ठ।
द्वीप = जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर।
सूर्य के घोड़े =
बार = रवि, सोम, मंगल, बुद्ध, गुरु, शुक्र, शनि।
सागर = क्षीर, क्षार, दधि, मधु, घृत, सुरा, इक्षुरस।
स्वर = स, री, ग, म, प, ध, नि।

गिरि=मेरु, हिमालय, उदयाचल, विंध्या, लोकालोक, गंध-माद्न, कैलास।

ताल=चार ताल मेरु पर हैं, मानसर, विंध्यसर, पंपासर।

तरु=स्वर्ग के पांच तरु (कल्पवृक्षादि), अक्षयवट, कैलासवट।

अन्न=अरहर, गेहूं, धान, यव, चना, मूंग, माष।

ईति=अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, शुक, शलभ, स्वचक्र, परचक्र।

सातकरतार=प्रकृति, सत, रज, तम, ब्रह्मा, विष्णु, शिव।

मूल—सात छंद, सातो पुरी, सात त्वचा सुख सात।
चिरंजीव, ऋषि, सात नर, सप्तमातृका, धात॥ १८॥

शब्दार्थ—सात छंद=(वेद के) गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप, जगती। पुरी=अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवंतिका, द्वारका। त्वचा=शरीर में सात त्वचा मानी जाती है (वैद्यक)। सुख=खान, पान, परिधान, ज्ञान, गान, शोभा, संयोग (देखो प्रभाव ८, छंद नं० ४३) चिरंजीव=अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम। ऋषि=(सप्तर्षि) कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, विश्वामित्र, वशिष्ठ, भरद्वाज, गौतम। सात नर=(मानव जाति) ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, संकर, अंत्यज, यवन। मातृका=ब्राह्मी माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, बाराही, इंद्राणी, चामुण्डा। धात=रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य।

(विशेष)—अग्निशिखा, गोत्र, और राजअंग भी सात ही माने जाते हैं। अग्निशिखाओं के सातो नाम हमें ज्ञात नहीं। 'गोत्र' वही हैं जो सप्तर्षि हैं। राज अंग=रानी, युवराज, मंत्री, मित्र, देश, कोष, सेना, ये सात अंग हैं।

(आठ सूचक)

मूल योग अंग, दिगपाल, बसु, सिद्धि, कुलाचल चारु।

अष्टकुली अहि, ब्याकरण, दिग्गज, तरुणि बिचारु ॥१९॥

शब्दार्थ—योग अंग = यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि। दिगपाल = इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, बरुण, वायु, कुबेर, ईशान। अष्टबसु = जल, ध्रुव, सोम, धरा, अनिल, अग्नि, प्रत्यूष, प्रभास। अष्टसिद्धि = अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, बशित्व। कुलाचल = हिम, मलय, महेन्द्र, सह्य, शुक्ति, ऋक्ष विंध्य, परियात्र। अष्ट कुल नाग = तक्षक, महापद्म, शंख, कुलिक, कंबल, अश्वतर, धृतराष्ट्र, बलाहक। अष्टव्याकरण = इन्द्र, चंद्र, गार्ग्य, साकल्य, सकट, कात्यायन, जयनेन्द्र और पाणिनि। दिग्गज = ऐरावत, पुंडरीक, बामन, कुमुद, अंजन पुष्पदंत, सार्वभौम, सुप्रतीक। अष्टनायिका = स्वाधीनपतिका, उत्कंठिता, बासकसज्जा, कलहंतरिता, खंडिता, प्रोषित पतिका, विप्रलब्धा, अभिसारिका (देखो रसिक प्रिया, प्रभाव सप्तम)

(विशेष)—अष्टयाम, ब्रह्मा के कान, दिशा, धातु (सोना चांदी इत्यादि) भी आठ मानते हैं।

(नव सूचक)

मूल- अंगद्वार, भूखंड, रस, ब्राह्मिनि कुच निधि जानि।

सुधाकुंड, ग्रह, नाटिका, नवधा भक्ति बखानि ॥२०॥

शब्दार्थ—अंगद्वार = शरीर के नव छेद। भूखंड = पृथ्वी के नव खंड। इलावर्त रम्यक, कुरु, हरि, किंपुरुष, भरत, केतुमाल,

भद्राश्व, हिरण्य। रस = काव्य के नव रस। निधि = नव निधियाँ (पद्म, शंख, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील, खर्व)। सुधाकुंड = अमृत के नवकुण्ड माने गये हैं। नवग्रह = प्रसिद्ध हैं। नाटिका = नव नाडी शरीर की मुख्य हैं (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गंधारी, पूषा, गजजिह्वा, पसाद, शनि, शंखिनी)। भक्ति = श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, बंदन, दास्य, सख्य, आत्म निवेदन।

(विशेष)—अंक (१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९), दुर्गा, और द्रव्य भी नव हैं। ब्राह्मणों के गुण भी नव मानते हैं।

(दस सूचक)

मूल-रावण सिर, श्री बिष्णु के. दश अवतार बखानि।

विश्वेदेवा, दोष दस, दिसा, दशा, दस जानि ॥२१॥

शब्दार्थ—विश्वेदेवा = दस माने गये हैं। दोष = मनुष्य के दस दोष—यथाः—

चोर, जुवारी, अज्ञ अरु कायर, मूक, कुरूप।

अंध, पंगु, अरु बधिर पुनि, क्लीव दोष दस रूप ॥

दिसा = दस प्रसिद्ध हैं। दशा = (वियोग की दस दशाएं) अभिलाष, चिंता, स्मरण, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्छा।

(विशेष)—केशव ने गणना सूचक शब्द इतने हीं कहे हैं, पर अब नीचे लिखे शब्दों का भी प्रचार है:—

११ के लिये शिव, रुद्र। १२ के लिये, भानु, भूपण, राशि, मास। १३ के लिये परम भागवत, नदी। १४ के लिये भुवन, मनु, रत्न और विद्या। १५ के लिये तिथि। १६ के लिये, कला,

संस्कार, श्रृंगार। १८ के लिये पुराण। २० के लिये नख। २७ = नक्षत्र। ३२ = लक्षण। ४९ = पवन। ६४ = कला। ८४ = आसन।

(उदाहरण)

मूल—एक थल थित पै बसत प्रति जन जीय,
द्विकर पै देश देश कर को धरनु है।
त्रिगुन कलित बहु बलित ललित गुन,
गुनिन के गुनतरु फलित करनु है॥
चारही पदारथ को लोभ चित नित नित,
दीबे को पदारथ समूह को परनु है।
केशोदास इन्द्रजीत भूतल अभूत, पंच-
भूत की प्रभूति भवभूति को शरनु है॥२२॥

शब्दार्थ—त्रिगुण कलित बहु बलित ललित गुण = सत रज तम से उत्पन्न अनेक सुन्दर गुणों से युक्त हैं। परनु = प्रण, प्रतिज्ञा = पंच भूत की प्रभूति = पंच तत्वों से उत्पन्न। भव-भूति = सृष्टि। शरण = रक्षक।

भावार्थ—राजा इन्द्रजीत रहते तो एक स्थान पर हैं, परन्तु प्रत्येक जीवधारी के जी में बास किये हैं। उनके हैं तो दो ही हाथ, पर देश देश के लोगों के हाथों को पकड़े हैं (मित्रता किये हैं)। वे त्रिगुण से उत्पन्न अनेक अच्छे गुणों से युक्त हैं, और गुणियों के गुण रूपी वृक्षों को सफल करने वाले हैं। वे चाहते हैं केवल चारही पदार्थ, पर पदार्थ समूह देने का प्रण किये हुये हैं। केशवदास कहते हैं कि राजा इन्द्रजीत जू

इस पृथ्वी पर एक अभूतपूर्व राजा हैं, क्योंकि वे पंच तत्व से बनी सृष्टि के रक्षक हैं।

(पुनः)

मूल—दरश न सुर से नरेश सिर नावैं नित,
षट दरशन ही को सिर नाइयतु है।
केशोदास पुरी पुर पुंजन को पालक, पै
सात ही पुरी सों पूरो प्रेम पाइयतु है॥
नाइका अनेकन को नायक नागर नव,
अष्ट नायकान ही सों मन लाइयतु है।
नवधाई हरि को भजन इन्द्रजीत जू को,
दश अवतार ही को गुन गाइयतु है॥ २३॥

भावार्थ—राजा इन्द्रजीत जू के सामने देव सम राजा सिर नवाते हैं, पर वह उनकी ओर देखता तक नहीं, केवल षट दर्शन ही को अपना सिर नवाता है। वह अनेक पुरियां और गावों का पालक है, पर उसके चित्त में सात पुरियों का ही पूर्ण प्रेम है। वह अनेक स्त्रियों का चतुर और युवा पति है, पर केवल अष्टनायिकाओं पर ही मन लगाता है (नायिका भेद के ग्रन्थों में अष्टनायिकाओं के वर्णन में ही उनका मन लगता है) वे हरि का भजन नवही प्रकार से करते हैं, पर दशौ अवतारों का गुण गाते हैं।

(नोट)—ऊपर के दोनों कवित्तों में गणना द्वारा तो हमें कोई चमत्कार नहीं जान पड़ता, हां विरोधाभास द्वारा कुछ चमत्कार आता है।

१०-(आशिषालंकार वर्णन)

मूल-मातु, पिता, गुरु, देव, मुनि कहत जु कछु सुख पाय ।
ताही सों सब कहत हैं आशिष कबि कबिराय ॥२४॥

(यथा)

मूल-मलय मिलित बास, कुंकुमकलित, युत
जावक, कुसुम नख पूजित, लालित कर ।
जटित जराय की जँजीर बीच नील मणि,
लागि रहे लोकन के नैन मानो मनहर ॥
हयपर, गयपर, पलिका सुपीठ पर,
अरि उर पर, अवनीशन के शीश पर ।
चिरु चिरु सोहौ रामचंद्र के चरण युग,
दीबो करै केशोदास आशिष अशेष नर ॥२५॥

शब्दार्थ—कर = किरण । जँजीर = पग भूषण विशेष जिसे तोड़ा कहते हैं । मनहर = (नील मणि का विशेषण) मनोहर । पलिका = पलंग । सुपीठ = सिंहासन । अशेष = सब, समस्त । 'कुसुमपूजित' नख का विशेषण है ।

भावार्थ—चंदन की सुगंध से युक्त, केसर और महावर से रँगे हुए, जिनके नख फूलों से पूजित और सुन्दर किरण वाले है । उन पैरों में जड़ाऊ तोड़े हैं जिनमें मनोहर नीलम जड़े हैं, वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो लोगों के नेत्र है । केशवदास कहते हैं कि सभी मनुष्य ऐसा आशिर्वाद देते हैं कि राम जी के ऐसे चरण युगल चिरकाल तक हाथी, घोड़े, पलंग, आसन, शत्रु हृदय और, राजशिरों पर सोभित होते रहैं ।

(पुनः)

मूल-होय धौं कोऊ चराचर मध्य में उत्तम जाति अनुत्तम ही को।
किन्नर कै नर नारि बिचारि कि बास करै थल कै जल ही को॥
अंगी अनंग कि मूढ़ अमूढ़ उदास अमीत कि मीत सही को।
सो अथवै कबहूं जनि केशव जाके उदोत उदौ सबही को॥२६॥

शब्दार्थ—अनुत्तम = निकृष्ट। अमीत = शत्रु। सही को = सत्य-वादियों का। अथवै = मरै, नष्ट हो। उदोत = उदय। उदौ = उदय।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(नोट)—यह छंद हस्त लिखित प्रति में नहीं है।

११—(प्रेमालंकार वर्णन)

मूल-कपट निपट मिटि जाय जहँ, उपजै पूरण छेम।
ताही सों सब कहत हैं, केशव उत्तम प्रेम॥ २७॥

भावार्थ—किसी मनोभाव का कपट रहित वर्णन ही प्रेमालंकार कहलाता है।

(नोट)—केशव ने उदाहरण में 'प्रेमभाव' का ही वर्णन किया है। इससे यह कदापि न समझना चाहिये कि प्रेम वर्णन ही में प्रेमालंकार होगा, वरन् यह जानना चाहिये कि किसी भी मनोभाव का सत्य और यथार्थ वर्णन ही प्रेमालंकार है। हाल के आचार्य इस नाम का कोई अलंकार नहीं मानते।

(यथा)

मूल-कछु बात सुनै सपनेहु वियोग की होन चहै दुइटूक हियो।
मिलि खेलिय जा सँग बालक तें, कहि तासों अबोलो क्यों जात कियो॥

कहिये कह केशव नैननि सों बिन काजहिं पावक पुंज पियो।
सखि तू बरजै अरु लोग हँसैं सब, काहे को प्रेम को नेम लियो॥२८॥

शब्दार्थ—बालकतें = बालकपन से। तासों अबोलो क्यों कियो जात = ऐसा कैसे हो सकता है कि उससे न बोलूं। कहि = तू ही कह (बतला)। पावक पुञ्ज पियो = उसे न देख कर जलते हैं। "काहे को…लियो" = यह बात कह कर सब लोग हँसते हैं।

भावार्थ—वियोग की बात सुनते ही हृदय फट जाना चाहता है। तू ही बतला कि जिसके साथ बालपन से मिलकर खेल करती रही उससे कैसे न बोलूं,। नेत्रों को मैं क्या कहूं, इन्होंने तो ऐसी बानि ली है कि अकारण ही जला करते हैं (उसे न देखकर)। हे सखी तू मना करती है कि उससे मत बोलाकर, और "प्रेम क्यों किया" कहकर सब लोग भी हँसते हैं (पर मैं प्रेम तोड़ नहीं सकती)

(नोट)—अपने प्रेम भाव का निष्कपट वर्णन कर दिया, अतः प्रेमालंकार है। परिभाषा में "कपट निपट मिटि जाय जहँ" इतने ही शब्द काम के हैं।

१२—(श्लेषालंकार)

मूल—दोय तीनि अरु भांति बहु आनत जामें अर्थ।
श्लेष नाम तासों कहत. जिनकी बुद्धि समर्थ॥२९॥

भावार्थ—दो तीन वा अधिक प्रकार के अर्थ जिसमें निकलें वह श्लेष है।

(नोट)—संस्कृत साहित्य में इस अलंकार की अधिक प्रतिष्ठा है, अतः उसमें इसकी अधिक भरमार भी है। 'राघव पाँड-

चीय' नामक एक महा काव्य ही इस अलंकार में लिख डाला गया है। हिन्दी वालों ने भी इसका यथोचित सम्मान किया है। केशव ने तो इसके लिखने में कमाल कर डाला है। इस अलंकार के लिखने में केशव की समता कोई भी हिन्दी कवि नहीं कर सका।

(दो अर्थ का श्लेष)

मूल—धरत धराणि, ईश शीश चरणोदकानि,
गावत चतुरमुख सब सुख दानिये।
कोमल अमल पद कमला कर कमल,
लालित, बलित गुण, क्यों न उर आनिये॥
हिरणकशिपु दानकारी प्रहलाद हित,
द्विजपद उरधारी बेदन बखानिये।
केशोदास दारिद दुरद के बिदारिबे को,
एकै नरसिंह कै अमरसिंह जानिये॥३०॥

शब्दार्थ—(नरसिंह पक्ष)—ईश = महादेव। चतुरमुख = ब्रह्मा। लालित = सेवित। दानकारी = खंडन कर्त्ता, हन्ता। दुरद = हाथी।

भावार्थ—श्री नृसिंह जी दरिद्ररूपी हाथी को मारने में समर्थ हैं। वे कैसे हैं कि पृथ्वी को धारण करते हैं (कच्छपरूप से) और उनके चरणोदक को महादेव जी शीश पर धरते हैं, और उनको ब्रह्मा जी सर्व सुख दानी बतलाते हैं। जिनके कोमल अमल चरण लक्ष्मी के कर कमलों से सेवित हैं, जो अनेक गुण युक्त हैं, उनको हृदय में क्यों नहीं लाते (हृदय से उनका

सरग क्यों नहीं करते)। जो नृसिंह हिरण्यकश्यप के हंता और प्रहलाद के हितू हैं, भृगु चरण चिन्ह को वक्ष पर धारण किये हैं, और बेदों में जिनका बखान है। ऐसे नृसिंह जी ही दरिद्र रूपी हाथी को मारने में समर्थ हैं (क्योंकि सिंह ही हाथी को मारता है।

शब्दार्थ—(राना अमरसिंह पक्ष)—धरणि—ईश = राजा। चतुरमुख = चारो ओर। कमला = सुन्दर स्त्रियां। हिरण = (हिरण्य) सोना। कशिपु = शैय्या, सेज, आसन। प्रहलाद = बड़ा आनंद। द्विज = ब्राह्मण।

भावार्थ—दरिद्र रूपी हाथी को मारने में राना अमरसिंह ही समर्थ हैं। जिनके चरणोदक को बड़े बडे राजा मस्तक पर धारण करते हैं, और चारो ओर सब लोग जिसको सुख दाता बताते हैं। जिनके कोमल अमल चरण वरांगनाओं के कर कमलों से सेवित हैं, अनेक गुण युक्त हैं, उन्हें क्यों न हृदय में स्थान दीजिये। जो सोने की शय्या दान करते हैं और बड़े आनंद के हितू हैं (सदैव आनंदित रहते हैं), और जो ब्राह्मणों के चरणों को हृदय में रखते हैं और वेदों के व्याख्याता हैं (बड़े विद्वान हैं), ऐसे राना अमरसिंह ही दरिद्र रूपी हाथी को मारने में समर्थ हैं (एक तो 'सिंह', दूसरे 'अमर', फिर क्यों न हाथी को मारेगा)

(नोट)—राना अमरसिंह की प्रशंसा में इस पुस्तक में कई छंद हैं। इन छंदों से जान पड़ता है कि केशव किसी समय राना जी के दरबार में गये थे और रानाजी ने इनका अच्छा सम्मान किया था। ये अमरसिंह, चित्तौर पति महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र ही थे।

(तीन अर्थ का श्लेष)

मूल—परम बिरोधी अविरोधी ह्वै रहत सब,
दानिन के दानि, कबि केशव प्रमान है।
अधिक अनंत आप, सोहत अनंत संग,
अशरण शरण, निरच्छक निधान है
हुतभुक हित मति, श्रीपति बसत हिय,
भावत है गंगाजल, जग को निदान है।
केशौराय की सौं कहैं केशोदास देखि देखि,
रुद्र की समुद्र की अमरसिंह रान है॥ २१॥

शब्दार्थ—(रुद्रपक्ष)—परम विरोधी = अग्नि, जल, अमृत, गरल इत्यादि अथवा सर्प मयूर, सर्प मूषक, सिंह वृषभ इत्यादि (शिव की समाज के) अनंत = शेष नाग। निरक्ष = अरक्षित। क = सुख। हुतभुक = अग्नि। निदान = आदि कारण। सौं = सौगंद, शपथ।

भावार्थ—परम विरोधी जीव वा वस्तुएं जिसके प्रताप से मित्र होकर एकत्र रहते हैं (शिव की समाज में सर्प, मयूर, मूषक, वृषभ, सिंहादि विरोधी जीव, तथा शिव के अंग में गंगा, अग्नि, सुधाधर और विष इत्यादि वस्तुएं), जो बड़े बड़े दानियों के भी दानी हैं (देवताओं को भी बरदान देते हैं) और जो नारायण के सच्चे कवि हैं (ईश्वर के गुण सदा गाते हैं)। आप खुद अनंत से भी अधिक हैं, पर अनंत (शेष) को साथ रखते है, अशरण के शरण और अरक्षित जीवों के लिये सुख के भंडार हैं। अग्नि के हित पर बुद्धि रखते हैं (यज्ञ,

हवनादि को पसंद करते हैं), जिनके हृदय में नारायण बसते हैं जिन्हे जान्हवीजल भाता है और जो संसार का आदि कारण हैं। ईश्वर की शपथ है, केशवदास देख देख कर कहता है कि ये राना अमरसिंह हैं, या शिव हैं।

(नोट)—वास्तव में राना अमरसिंहजी की प्रशंसा से तात्पर्य है।

शब्दार्थ—(समुद्र पक्ष)—परम विरोधी···रहत सब = (इसी ग्रंथ के ७वें प्रभाव में समुद्र वर्णन में समुद्र को "पन्नग देव अदेव ग्रह" और "है किधौं केशव कश्यप को घर देव अदेवन को मन मोहै" कहा है। दानिन के दानि = कल्पवृक्ष, कामधेनु, लक्ष्मी इत्यादि दूसरों को मन चाहे पदार्थ देते हैं, पर संसार को समुद्र ही ने ये वस्तुएं दी हैं, अतः समुद्र दानियों का भी दानी है। कवि केशव = नारायण जिसके कबि हैं, नारायण भी जिसका प्रशंसामय वर्णन करते हैं। प्रमान है = यह बात अति सत्य है। आप = जल। अनंत = शेषनाग। निरक्ष = अरक्षित। क = जल। निधान = खज़ाना। हुतभुक = बड़वानल। श्रीपति = नारायण। निदान = आदि कारण (जलही से पृथ्वी की उत्पत्ति मानी जाती है)

भावार्थ—जहां परम विरोधी (देव, दैत्य, विष, सुधादि) भी मित्र सम रहते हैं, जो कल्पवृक्ष कामधेनु आदिक का भी उत्पादक है, जिसकी सत्य प्रशंसा स्वयं केशव (जलशाई नारायण) वर्णन करते हैं, जिसका जल अनंत से भी अधिक है (शेषनाग 'अनंत' कहला कर भी जिसमें डूबे रहते हैं), जिसमें अनंत (शेषनाग) भी रहते हैं, जो अशरणों को शरण देता है (मैनाक, बड़वाग्नि को शरण दी है) अथवा अशरण जो नारायण हैं (जिनको कोई शरण नहीं दे सकता) उनका

भी शरण (सुरक्षित रहने का स्थान) है। और जो अरक्षित जल का भांडार है (जो जल कहीं नहीं समाता वह समुद्र में रहता है) जो बड़वाग्नि का हितू है, नारायण जिसके भीतर बसते हैं (अनंत कोटि ब्रह्मांडों का नायक जिसमें बसता है), जिसको गंगाजल बहुत भाता है (गंगाजी समुद्र की अति प्रिय पत्नी मानी जाती हैं) और जो जगत का आदि कारण है (बिना जल तत्व के जंगम जीवों की उत्पत्ति नहीं हो सकती) ।

शब्दार्थ—(अमरसिंह राना पक्ष) परम विरोधी = शत्रु। प्रमान = (प्र + मान) सबसे अधिक प्रतिष्ठा वाले । अधिक = (अ + धिक) जिसको कोई धिक्कार न सकै, अनिंद्य। अनंत = (अन + अंत) जिसका कोई अंत (भेद) न पा सके। निरक्ष = अरक्षित । क = सुख । निधान = प्रवीण । हुतभुक = देवता । भावत है गंगाजल = गंगाजल के समान शुद्ध सोहते हैं। जग को निदान है = जग का अंत है अर्थात् संसार में सबसे बढ़ कर प्रतिष्ठित हैं, उनसे बढ़कर कोई भी प्रतिष्ठा पात्र नहीं (क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी के बंशज हैं) । केशोराय = नारायण । सौं = शपथ ।

भावार्थ—राना अमरसिंह जी कैसे हैं कि जिसके यश और प्रताप के प्रभाव से उनके परम विरोधी शत्रु भी विरोध छोड़ कर उनके वशवर्ती होकर रहते हैं, जो दानियों के भी दानी हैं (जिसको दान देते हैं वह स्वयं इतना धनी हो जाता है कि औरों को देने लगता है) जो नारायण के गुण कवि वत् वर्णन करते हैं और जिनकी प्रतिष्ठा अति उत्कृष्ट है। जो अनिंद्य हैं, और जो स्वयं ऐसे गंभीर हैं कि असंख्य जन

साथ रहते हुए भी कोई जिनका भेद नहीं जान सकता। जो अशरण के लिये शरण और अरक्षित जनों के लिये सुख का भांडार हैं। देवताओं के हित (यज्ञादि) में जिनकी मति है (यज्ञादिक में मन लगाते हैं), नारायण जिनके हृदय में बसते हैं (ईश्वर के परम भक्त हैं), जो गंगाजलवत् शुद्ध हैं, संसार में सर्वाधिक सम्मानित है (हिन्दू कुल सूर्य कहलाते हैं)। ईश्वर की शपथ है, केशव उनको देख देखकर कहता है कि ये राना अमरसिंह हैं या रुद्र हैं या समुद्र हैं।

(चार अर्थ का श्लेष)

मूल—दानवारि सुखद, जनकजातनानुसारि,
करषत धनु गुन सरस सुहाये हैं।
नरदेव क्षयकर करम हरन, खर,
दूषन के दूषन सु केशोदास गाये हैं।
नागधर प्रियमानि, लोकमाता सुखदानि,
सोदर सहायक नवल गुन भाये हैं।
ऐसे राजा राम, बलराम, कै परशुराम,
कैधों है अमरसिंह मेरे उर माये हैं॥ ३२॥

शब्दार्थ—(राजारामचंद्र पक्ष)—दानवारि = इन्द्र। जनकजातनानुसार = जनक की पीड़ा के अनुसार। सरस = सुन्दर। नर-देव-क्षयकर = रावण। खरदूषन के दूषन = खर और दूषण नामक राक्षसों के विनाशक। नागधर = शिव। लोकमाता = लक्ष्मीजी। सोदर = भाई।

भावार्थ—केशवजी कहते हैं कि मेरे विचार में ऐसा आता है है कि ऐसे (इन) गुणों से युक्त या तो राजा रामचंद्र हैं, या बलरामजी हैं, या परशुराम जी हैं, या राना अमरसिंहजी हैं। राजा रामचंद्र जी इन्द्र जी को सुख देने वाले हैं, जनक राजा को जब प्रतिज्ञा भंग की पीड़ा हुई तब उनकी प्रतिज्ञा के अनुसार धनुष की प्रत्यंचा को खींचते समय जिनकी बड़ी सुन्दर शोभा हुई थी। नर और देवताओं को क्षय करनेवाले रावण के कर्मों के हरनेवाले और खर तथा दूषण नामक राक्षसों को मारने वाले हैं, केशव कहते हैं कि जिनके गुणानुवाद उनके दासों द्वारा गाये गये हैं, शिव को जो अपना प्रिय मानते हैं, लक्ष्मी को सुख देने वाले हैं, भाई जिनके सहायक हुए (राजाओं के भाई सहायक नहीं होते, पर इनके भाई सहायक हुये) ऐसे मनभावन नवीन गुण जिनमें हैं ऐसे राजा रामचंद्र हैं।

शब्दार्थ—(बलराम पक्ष)—दानवारि = श्रीकृष्णजी। जनक जातनानुसारि = पिता की यातना में उनके अनुकूल कार्य करने वाले (देवकी के गर्भ से रोहणी के गर्भ में चले जाने वाले)। धनु = गोधन। करषत धनु = गोधन को खींचते फिरते हैं (जहां तहां गायें चराये फिरते हैं) गुन सरस सुहाये हैं = जो सुन्दर गुणों से शोभित हैं। नरदेव = राजा। नरदेव क्षयकर = रुक्मी नामक राजा को बलदेवजी ने चौपर खेलते समय मारा था। करम हरन = कर्म को नाश करने वाले (मोक्षदाता)। खर = धेनुक नामक राक्षस जो गदहे का शरीर धरकर ताल वन में बलराम से लड़ा था। दूषन = मारने वाला। नागधर = सर्प का शरीर (प्रभासक्षेत्र में सर्प के शरीर से समुद्र में चले गये, क्योंकि

शेष के अवतार थे)। लोकमाता=लौकिक माता अर्थात् यशोदा, रोहिणी देवकी इत्यादि। सोदर सहायक=कृष्ण के सहायक (कुवलया तथा कंस बध में)। नवल=सदा नवीन अवस्था के रहते है। गुण=सौन्दर्यादि।

भावार्थ—बलरामजी कैसे हैं कि कृष्ण को सुख देने वाले हैं, पिता को पीड़ा निवारणार्थ उनके अनुकूल कार्य करने वाले हैं, गोधन चराते फिरते हैं, और जिनमें और भी अनेक रसीले गुण हैं। दुष्ट राजाओं के बध करने वाले है, मोक्ष दाता हैं, धेनुक राक्षस के अत्याचारों के विनाशक हैं, केशव कहते हैं कि जिन का यश दासों द्वारा गाया गया है, जिनको नाग का शरीर प्रिय है, लौकिक माता को सुख देने वाले हैं, भाई के सहायक हैं, सदैव नवल वय वाले हैं, और मन को भानेवाले सौंदर्य माधुर्य गुण भी जिनमें हैं, ऐसे बलरामजी हैं।

शब्दार्थ—(परशुराम पक्ष)—दान-वारि सुखद=दान देते समय संकल्प का जल जिसे सुखद है। जनक जातनानुसारि= पिता जमदग्नि के कष्ट के अनुसार। नरदेव क्षयकर=राजाओं के क्षयकारी (क्षत्रिय विनाशक)। करम हरन=कर्म के विनाशक (मोक्षदाता) खर दूषन के दूषन=तीक्ष्ण दोषों (महा पापों) के नाशक। नागधर=शिव। लोकमाता=पार्वती। सोदर सहायक न=भाई जिसके सहायक नहीं (जो अकेला ही सब कार्य करता रहा) बलगुन भाये है=जिसका बल और जिसके गुण सबको भाये हैं।

भावार्थ—परशुराम कैसे हैं कि (दान संकल्प का जल जिसे सुखद है (जितना ही अधिक दान दें उतना ही अधिक सुख हो—२१ वार पृथ्वी विप्रों को दी), पिता की पीड़ा के अनु-

नहीं होने देते, (केशव कहते हैं कि) श्री रामजी के प्रसिद्ध भक्त हैं। हाथी पकड़ने वाले वीर भीलों को प्रिय मानते हैं, निज माता को सुखद हैं (क्षत्राणी वीर पुत्र से प्रसन्न होती है) अर्थात् बड़े वीर हैं। निज प्रजा के भाई सम सहायक हैं और और भी अनेक नवीन गुण हैं (जो अन्य राजाओं में नहीं है) ऐसे राना अमरसिंह हैं। मैंने उन्हें ऐसा ही समझा है।

(पांच अर्थ का श्लेष)

मूल—भावत परम हंस जात गुण सुनि सुख,
पावत संगीत मीत बिबुध बखानिये।
सुखद सकति धर समरसनेही बहु,
बदन बिदित यश केशोदास गानिये।
राजै द्विजराज पद भूषन विमल कम-
लासन प्रकास परदार प्रिय मानिये।
ऐसे लोकनाथ कै त्रिलोकनाथ नाथ नाथ
कैधौं रघुनाथ कै अमरसिंह जानिये॥ २३॥

(सूचना)—इसके अर्थ लोकनाथ (ब्रह्मा), त्रिलोकनाथ (कृष्णजी), नाथनाथ (शिवजी) रघुनाथ (रामजी) तथा अमरसिंह पर लगायें जायेंगे।

शब्दार्थ—(ब्रह्मापक्ष)–भावत परम = (परम भावत) परम प्रकाश के समान है शरीर जिसका। हंस = हंसावतार नारायण। जात = पुत्र (सनकादिक)। गुण = क तूत (वादविवाद) (नोट) कथा है कि एक समय सनकादिक ने ब्रह्मा से कुछ प्रश्न किये। उनका उत्तर ब्रह्मा न दे सके तब नारायण का

स्मरण किया। नारायण हंसरूप धरकर आये और वादविवाद में सनकादिक को परास्त करके ब्रह्मा को प्रसन्न कर दिया। सगीत = सामवेदादि। सुखद सकति = सुख देने वाली शक्ति अर्थात् सरस्वती। समर सनेही = (स्मर) काम है मित्र जिसका—काम ही की सहायता से ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना में सुफल हैं। बहुबदन = चार मुख वाले हैं। द्विजराज = हंस। राजै द्विजराज पद भूषण विमल = जिसके पैर हंस पर भूषणवत् राजते हैं, हंस जिसकी सवारी है। कमलासन = कमल ही आसन है जिसका। परदार प्रिय = सर्वोपरि उत्कृष्ट दारा जिसे प्रिय है अर्थात् ब्रह्माणी जिसे प्रिय है।

भावार्थ—लोकनाथ (ब्रह्माजी) ऐसे हैं कि परम प्रकाशवत् उनका शरीर है, नारायण के हंसावतार और निज मानस जात पुत्र सनकादि की करतूत (वादविवाद) सुनकर सुखी होते हैं, संगीतमय वेदों के मित्र हैं, विशेष बुद्धिमान हैं। सुखदशक्ति सरस्वती का धारण करने वाले हैं, और कामदेव उनका मित्र है। बहुमुख है (चार मुख वाले हैं), उनका यश सबको विदित है, केशव (नारायण) के दास हैं अतः उनका गुण गाया करते हैं। उनके पैर हंस पर भूषणवत् शोभा पाते हैं, कमल पर बैठते हैं यह प्रत्यक्ष ही है, और अति उत्कृष्ट दारा (ब्राह्मणी) ही उन्हें प्रिय है।

शब्दार्थ—(त्रिलोकनाथ—कृष्ण पक्ष)—हंसजा = सूर्यपुत्री यमुना (कृष्ण की एक पटरानी)। त गुण = (ता गुण) उसकी प्रशंसा। (नोट)—'त' को 'ता' मान लेना ह्रस्व को दीर्घ मान लेना कवि प्रथानुसार दोष नहीं। संगीत मीत = गान कला के मित्र हैं। विबुध बखानिये = देवता जिनकी

प्रशंसा करते हैं। सुखद शक्ति = ईश्वर की सुखदायिनी 'लीला' नामक शक्ति जिसका अवतार राधिकाजी हैं। समर सनेही = काम के स्नेही है (पुत्ररूप से काम को जन्म दिया है—प्रद्युम्न काम के अवतार थे)। बहुबदन विदित = सबको विदित है कि रास लीला में जिन्होंने अनेक शरीर (बदन) धारण किये थे। यश केशोदास गानिये = केशव कहते हैं कि जिनका यश अनेक दास गाते हैं। द्विजराज पद = भृगु जी के लात का चिन्ह। कमला = श्रेष्ठ स्त्री। सन = संग। प्रकाश = जाहिर है। कमलासन प्रकाश = जाहिर है कि ब्रज में श्रेष्ठ स्त्रियों के संग रमण किया करते थे। परदार प्रिय = पराई दारायें प्रिय थीं (परकीया नायिकाओं के उपपति थे)। मानिये = तिसपर भी मानी नायक थे।

भावार्थ—कृष्ण कैसे हैं कि उनको सूर्यपुत्री यमुना बहुत भाती है, अतः उसके गुण सुनकर सुखी होते है, संगीत कला के मित्र हैं, देवता उनका यश बखानते है, लीला शक्ति (राधिकावतार से) को धारण करने वाले हैं अर्थात् राधिका के साथ बिलास करने वाले हैं, काम के बड़े सनेही हैं (कि पुत्र रूप से पैदा किया), रासलीला में अनेक शरीर धारण किये यह बात सबको विदित ही है, दास लोग उनका यश गाते हैं, भृगु जी के चरण का चिन्ह जिनके हृदय पर बिमल भूषणवत् शोभा देता है, श्रेष्ठ नारियों के साथ रहते थे यह जाहिर ही है। पर नारियां उन्हें प्रिय थीं, तो भी मानी नायक होकर ही रहते थे।

शब्दार्थ—(नाथ नाथ शिव पक्ष)—भावत = प्रभावान हैं। परम हंस = परम हंस वृत्ति वाले हैं। जात = पुत्र (गणेश वा

कार्तिकेय)। संगीत मीत=संगीत के आचार्य हैं। सुखद शक्ति=लोकोपकारिणी शक्ति पार्वती जी। समर सनेही=काम के बड़े भारी मित्र (कि पहले जलाकर पुनः ऐसा वर-दान दिया कि "बिन वपु व्यापै सकल जग"। पहले काम को शरीर धारण करके कष्ट उठाना पड़ता था, वह कष्ट मिटा दिया)। बहु बदन=पंचमुख हैं। यश केशोदास गानिये=केशव का यश दास भाव से गान किया करते हैं। द्विजराज पद=चन्द्रमा की दो कला (द्वितीया का चंन्द्रमा)। (नोट) 'पद' शब्द 'दो' का बाचक—देखो गणना अलंकार में दो सूचक शब्द। कमलासन=पद्मासन लगाकर बैठते हैं। परदार प्रिय=सर्वोत्कृष्ट स्त्री अर्थात् विष्णु प्रिया लक्ष्मी के प्रियपात्र हैं (जब शिव जी किसी को संपत्ति प्रदान करते हैं, तब लक्ष्मी जी शिव के बचनानुसार उसके यहां निवास करती हैं)। मानिये=बड़े मानी हैं—अकिंचन होने पर भी किसी से कुछ मांगते नहीं।

भावार्थ—शिव जी कैसे हैं कि बड़े प्रभावान हैं, परमहंस वृत्ति से रहते हैं, तो भी निज पुत्रों के गुण सुनकर सुखी होते हैं, संगीत के मित्र हैं, देवता उनकी प्रशंसा करते है। संसार को सुख देने वाली परोपकारिणी (पार्वती को अन्नपूर्णा रूप से) शक्ति को साथ रखते हैं (अर्द्धांगिनी बनाये हुए हैं) कामदेव के बड़े सनेही हैं (कि शरीर धारण के कष्टों को मिटाकर जगत व्यापी बना दिया), पंचमुख हैं, नारायण का यश दास भाव से गाया करते हैं। द्वितीया का चंन्द्रमा भूषण-वत सिरपर शोभा देता है, पद्मासन लगाकर बैठते हैं, यह बात जाहिर ही है कि वे लक्ष्मी जी के प्रियपात्र हैं (तब

तो लक्ष्मी जी उनकी आज्ञा के अनुसार जहां वे कहते हैं वहां निवास करती हैं) और अकिंचन होकर भी बड़े मानी हैं किसी से कुछ मांगते नहीं।

शब्दार्थ—(रघुनाथ पक्ष)—भावत = भला लगता है। परम हंस जात = परमहंसों का समूह (सनकादिक अथवा कोई भी साधु समूह)। गुण सुनि सुख पावत = साधुओं के गुण सुनकर सुख पाते हैं, अपने भक्तों के गुण सुनकर सुखी होते हैं (प्रमाण तुलसी कृत विनय पत्रिका में) "सकृत प्रणाम करत यश गावत सुनत कहत फिरि गाउ"। संगीत भीत = संगीत कला प्रिय है जिनको। सुखद शक्ति = आह्लादिनी शक्ति का अवतार अर्थात् सीता जी। समर सनेही = युद्ध प्रिय हैं। बहु बदन विदित यश = बहु मुख वाले रावण को मारने से जिनका यश विदित हुआ है। केशोदास गानिये = केशव कवि कहता है कि दास जन गाते हैं। द्विजराजपद = चंद्र की पदवी। ('रघुनाथ' शब्द से स्पष्ट नहीं होता कि कौन राजा, क्योंकि रघुवंश में अनेक राजा नामी हुए हैं, अतः केशवदास कहते हैं कि वे रघुनाथ जिनके नाम के साथ 'चंद्र' की पदवी (Title) लगी हुई है अर्थात् "रामचन्द्र" कमलासन प्रकास = जो लक्ष्मी के साथ प्रकाशित हैं, जो अति धनी प्रसिद्ध हैं। 'सन' शब्द का अर्थ है "साथ या संग"। परदार प्रिय = अति उत्कृष्ट दारा के प्रिय, परम सती सीता के प्रियतम हैं।

भावार्थ—श्री रामचन्द्र जी कैसे हैं कि उनको परमहंसों का समूह (शिव, शुक, सनकादि परमहंस वृत्ति वाले जन) खूब भाता है, उनकी प्रशंसा सुनकर सुखी होते हैं, संगीत के प्रेमी

हैं, देवगण उनकी प्रशंसा बखानते हैं। अहलादिनी शक्ति को धारण किये हैं (साथ में सीता हैं), बड़े युद्ध प्रिय हैं, रावण को मारने से जिनकी प्रसिद्धि है, जिनका यश दासगण गाते हैं। जिनके नाम के साथ चन्द्र की पदवी लगी है (जिनका नाम रामचन्द्र है), जो जवाहर जटित जगमगे भूषणों से युक्त हैं, लक्ष्मीज्ञान प्रसिद्ध हैं, और सीता के अति प्रिय पति हैं।

शब्दार्थ—(राना अमरसिंह पक्ष)—परम = शिव (उदयपूर के राना वंश के इष्टदेव 'एक लिंग' नामक महादेव जी हैं)। हंसजात = सूर्यपुत्र कर्ण। हंस जात गुण = कर्ण के गुण अर्थात् युद्ध बीरता और दान बीरता। बिबुध = विशेप पंडित। अति बुद्धिमान। सकनि = (शक्ति) बरछी। समर सनेही = युद्ध प्रिय। द्विजराज = ब्राह्मण। कमलासन प्रकास = लक्ष्मी से जिसका प्रकाश है अर्थात् जो अति धनी है। परदार प्रिय = शत्रु की दारा प्रिय है जिसे, अर्थात् शत्रु भूपतियों की भूमि (राज्य) को जीतने की इच्छा वाले।

भावार्थ—राना अमरसिंह कैसे हैं कि जिन्हें एक लिंग शिव भाते हैं, शिव जी के अनन्य भक्त हैं, कर्ण के गुण युद्ध बीरता और दान बीरता सुनकर सुख पाते हैं (और वैसाही करते भी हैं), संगीत शास्त्र के जानकार हैं, और विशेष बुद्धिमान कहे जाते हैं। बिजय देने वाली सुखद बरछी धारण करते हैं (बरछी चलाने में उदयपुर के राना का बंश बहुत प्रसिद्ध रहा है), बड़े युद्ध प्रिय हैं, बहुत लोग उनका यश बर्णन करते हैं और केशवदास भी यश गाता है। ब्राह्मण के चरण ही उनके लिये बिमल भूषण हैं अर्थात् ब्राह्मणों पर बड़ी भक्ति रखने

हैं, बड़े लक्ष्मीवान हैं और शत्रु की भूमि के इच्छुक रहते हैं।
(सूचना) किसी किसी प्रति में अमरसिंह के स्थान में रामसिंह पाठ है। रामसिंह जी इन्द्रजीत के जेठे भाई थे जो चंदेरी में रहा करते थे। इस छंद के, लोग और भी कई प्रकार के अर्थ करते हैं, पर वे अर्थ हमें नहीं जँचे। उन्हें लिखकर पाठकों को भ्रमजाल में डालना हमें पसंद नहीं। परिभाषा के अनुसार श्लेष अलंकार का ज्ञान करा देना ही हमारे लिये अलम् है।

(श्लेष के भेद)

मूल–तिन में एक अभिन्न पद, अपर भिन्न पद जानि।
श्लेष सुबुद्धि दुभेद के केशवदास बखानि ॥३४॥

भावार्थ—हे सुबुद्धि पाठक ! श्लेष दो प्रकार का होता है एक अभिन्नपद दूसरा भिन्न पद।

(अभिन्न पद का वर्णन)

(सूचना)—परिभाषा केशव ने नहीं दी, पर उदाहरण से ज्ञात होता है कि भिन्न पक्षों के हेत श्लिष्ट शब्दों के अर्थों में भिन्नता न आवे अर्थात् जो अर्थ एक पक्ष में लिया गया है वही अर्थ अन्य में भी लग सकै, उसे अभिन्नपद श्लेष कहते हैं।

(उदाहरण)

मूल–सोहति सुकेशी मंजुघोषा रति उरबसी,
राजाराम मोहिबे को सूरति सोहाई है।
कलरव कलित सुरभि राग रग युत,
बदन कमल षटपद छवि छाई है॥
भृकुटी कुटिल धनु, लोचन कटाक्ष शर,
भेदियत तन [illegible] अति सुखदाई है।

प्रमुदित पयोधर दामिनी सी नाथ साथ,
काम की सी सेना काम सेना बनि आई है ॥३५॥

(व्याख्या)—इस कवित्त में कामसेना नाम्नी राजा रामसिंह की वेश्या की उपमा कामदेव की सेना से दी गई है। शब्द ऐसे रखे हैं कि काम की सेना और कामसेना (वेश्या) दोनों पक्षों में बिना अर्थ बदले ही लग सकते हैं। यथा :—
काम की सेना में सुकेशी, मंजुघोषा, रति, और उरवसी होती हैं, यह काम सेना वेश्या भी सुकेशी, मंजुघोषा और रति क्रीड़ा प्रवीणता से उर में बसने वाली है। उस सेना की भी सूरत सोहावनी होती है, इस वेश्या की भी सुहावनी सूरत है। वह सेना भी मधुर ध्वनि, तथा सुगंध और राग रंग युक्त होती है, यह वेश्या भी कलरव, सुगंध और राग रंग युक्त है। काम की सेना का बदन कमल है जिसपर भँवर गुंजारते हैं, इस वेश्या का भी मुख कमल है जिसपर भँवर मँडराते हैं। उस सेना में भी बंक भौंहें धनुष का और कटाक्ष बाण का काम करते हैं, इस वेश्या में भी वैसीही बात है। काम सेना में भी उन्नत कुच और दामिनि वर्ण वाली नायिका होती है, यह वेश्या भी पीन पयोधरा और दामिनि वर्ण की अपने नाथ (नायक राजारामसिंह) के साथ है। अतः यह काम सेना वेश्या ठीक कामसेना ही है।

(सूचना)—विचार पूर्वक देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिस प्रकार छंद नं ३१, ३२, ३३ में प्रत्येक पक्ष के अर्थ में शब्दार्थ भिन्न होते गये हैं वैसा इसमें नहीं है। अतः यह अभिन्नपद श्लेष है।

(भिन्नपद श्लेष वर्णन)

मूल—पदही में पद काढ़िये ताहि भिन्न पद जानि।

भिन्न अर्थ पुनि पदन के, उपमा श्लेष बखानि ॥३६॥

भावार्थ—एक पद को काटकर दो या तीन पद करैं अथवा पदों के भिन्न भिन्न अर्थ लें उसे भिन्नपद वा उपमाश्लेष कहते हैं। इसे उपमाश्लेष इस हेतु कहते हैं कि ऐसे श्लेष प्रायः उपमा के लिये लिखे जाते हैं। यथा;—

मूल—बृषभ बाहिनी अंग उर, बासुकि लसत प्रवीन।

शिव सँग सोहै सर्वदा शिवा कि राय प्रवीन ॥३७॥

(सूचना)—इसके अर्थ के लिये देखो प्रभाव १ छंद नं ६०। यहां केवल यह बतलाना है कि इसमें वृषभ, बासुकि, प्रवीन और शिव शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थ लगेंगे। वह कारीगरी केवल प्रवीण राय की उपमा (समता) पार्वती से देने के लिये की गई है।

(पुनः)

मूल—रजै रज केशोदास टूटत अरुण लार,
प्रतिभट अंकन ते अंक पै सरतु है।
सेना सुन्दरीन के बिलोकि मुख भूषणानि,
किलकि किलकि जाही ताही को धरतु है॥
गाढ़े गढ़ खेलही खिलौननि ज्यौं तोरि डारै,
जग जय जश चारु चंद्र को अरतु है।
चंद्रसेन भुवपाल आंगन विशाल रण,
तेरो करवाल बाल लीला सी करतु है ॥३८॥

शब्दार्थ—रजै रज=(१) धूल से अपने को रंगता है (२) रजो गुण से अर्थात् बीरता से अपने को रंगता है। अरुण-लार=रक्त । सरतु है=जाता है। मुख भूषण=(१) मुख के भूषण अर्थात्, नथ, वेसर, विन्दी, वन्दी, टीका लौंगादि (२) मुख्य और भूषणवत योद्धा। अरतु है=हठ करता है। करवाल=(सं० पुं०) तलवार, तेगा।

भावार्थ—हे राजा चंद्रसेन जी ! विशाल रणभूमि रूपी आँगन में तुम्हारा तेगा बालक्रीड़ा सी करता है। जैसे बालक अपने अंग को धूल से धूसरित कर लेता है वैसे ही तुम्हारा तेगा रजोगुण से अपने अंग को रँग लेता है अर्थात् राजपूतीशान (बीरता) उसमें आ जाती है। जैसे बालक के मुँह से लार टपकती है वैसेही इसके मुँह से लाल लाल लार टपकती है (खून टपकता है) जैसे बालक एक की गोद से दूसरे की गोद में जाता है वैसेही यह तेगा एक शत्रु की गोद से दूसरे के अंक में जाता है (एक शत्रु के बाद दूसरे को काटता है) जैसे बालक स्त्रियों के मुखभूषणों को पकड़ता है वैसेही यह तेगा किलक किलक कर सेना सुन्दरी के मुख्य २ और भूषण रूपी बीरों को पकड़ता है। जैसे बालक खेलौना तोड़ता है वैसे यह बडे मज़बूत गढ़ों को तोड़ देता है (जीत लेता है) जैसे बालक चंद्रमा पकड़ने को हठ करता है वैसेही यह तेगा जय और यशरूपी चंद्रमा को लेने के लिये हठ करता है।

(व्याख्या)—इस छंद में रज, मुख भूषण, और अंगन शब्दों के दो भिन्न भिन्न अर्थ लिये गये हैं और करवाल की समता बालक से की गई है, अतः भिन्न पद श्लेष या उपमा श्लेष अलंकार है।

(और भेद)

(सूचना)—केशवदास जी श्लेष के पांच भेद और भी बतलाते हैं, पर अर्वाचीन आचार्य इन भेदों को नहीं मानते।

(यथा)

मूल-बहुर्‍यौ एक अभिन्न क्रिय और भिन्न क्रिय जान।

पुनि विरुद्ध कर्मा अपर नियम विरोधी, मान ॥ ३९ ॥

भावार्थ—(१)—अभिन्न क्रिया श्लेष, (२) भिन्न क्रिया श्लेष, (३) विरुद्ध कर्मा श्लेष, (४) नियम श्लेष और (५) विरोधी श्लेष, ये पांच प्रकार के श्लेष भी केशव ने लिखे, परंतु परिभाषा नहीं दी। अतः उदाहरण से ही जो तात्पर्य हमारी समझ में आया है उसी के अनुसार हमने परिभाषा दी है।

१—(अभिन्न क्रिया श्लेष)

मूल-प्रथम प्रयोगियतु बाजि द्विजराज प्रति,

सुवरण सहित न विहित प्रमान है।

सजल सहित अंग विक्रम प्रसंग रग,

कोष ते प्रकाशमान धीरज निधान है।

दीन को दयाल प्रतिभटन को शाल करै,

कीरति को प्रतिपाल जानत जहान है।

जात हैं विलीन ह्वै दुनी के दान देखि राम-

चन्द्र जू को दान कैधौं केशव कृपान है ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—(दान पक्ष में)—प्रयोगियतु=प्रयोग में लाते हैं

सुवरण = सोना। न विहित प्रमान है = जिसका प्रमाण विहित नहीं है अर्थात् बे प्रमाण, बेहद। सजल = जल सहित। सहित = सप्रेम (श्रद्धा से)। (नोट) अंग और विक्रम के साथ भी 'स' का अन्वय लगाइये, जैसे सजल और सहित में है। अतः अंग = सांग और विक्रम = सविक्रम। सांग का अर्थ हुआ सविधान। सविक्रम = उत्साह सहित, वीरता पूर्वक। प्रसंग रंग = दान के प्रसंग में अनुरक्त होकर। कोषते प्रकाशमान = प्रत्यक्ष खज़ाने से निकाल कर। प्रतिभट = बराबरी वाला दाता। विलीन ह्वै जात हैं = लुप्त हो हो जाते हैं। दुनी = संसार।

भावार्थ—(दान पक्ष में) पहले तो प्रत्येक श्रेष्ठ ब्राह्मण को सोने से लदे हुए असंख्य घोड़े देते हैं (तदनंतर अन्य दान पात्रों को देते हैं) और दान कैसे देते हैं कि जल सहित (संकल्प बोला कर) प्रेम सहित, सविधान और उत्साह पूर्वक दान प्रसंग पर प्रेम रखकर, प्रत्यक्ष खजाने से धन निकलवाकर और धैर्य पूर्वक। ब्राह्मणों को दान देकर तब दीनों पर दयाल होते हैं (दीन को देते हैं) और इतना देते हैं कि बराबरी करने वाले दाता को शालता है, वह दान कीर्ति का प्रतिपालन करता है यह बात सारा संसार जानता है। रामचंद्रजी का ऐसा दान देखकर संसार के सब दान (अन्य दानियों के दान) लुप्त हो जाते हैं। श्रीरामजी का ऐसा दान है या यह कृपाण है।

शब्दार्थ—(कृपाणपक्ष में) प्रयोगियतु = प्रयोग में लाते हैं, घालते हैं। द्विजराज = क्षत्री राजाओं पर।

सजल = आबदार, पानीदार। सहित अंग = मूठ सहित। विक्रम प्रसंग रंग = युद्धकार्य में चाव रखने वाला अर्थात् खूब चलता हुआ (अति तीक्ष्ण धार वाला। कोष = म्यान। दीन = कायर। प्रतिभट = शत्रु। दुनी = दुनिया, संसार। दान = गजमद (यहां केवल) मद, मस्ती।

भावार्थ—रामजी की तलवार कैसी है कि पहले तो घोड़सवार क्षत्री राजाओं पर चलती है (फिर इतर सेनानी पर), सुन्दर रंगवाली (चमकीली) और बहुत लम्बी है। पानीदार है, मूठ सहित है, बल प्रयोग के समय रंग दिखलाती है (प्रयोग के समय खूब काम करती है) म्यान से चमचमाती हुई निकलती है और अपने दल को धैर्य दिलाने वाली है। कायरों पर दया दर्शाती है, शत्रुओं को शालती है, कीर्ति का प्रतिपालन करती है, सारा संसार उसको जानता है। दुनिया के लोगों का समस्त मद उसको देखकर लुप्त हो जाता ह (उसके सामने किसी शस्त्र का बल नहीं चलता)

(व्याख्या)—केशव ने इसका नाम अभिन्न क्रिया इस हेतु रखा है कि इसमें दोनों पक्षों के लिये "प्रयोगियतु" एकही क्रिया आई है। परंतु दोनों पक्षों का फल विरुद्ध है, दान का फल पालन करना, कृपाण का फल प्राण हरण करना। अतः मेरी सम्मति से इसकी परिभाषा यों होनी चाहियेः—

श्लेष में जहां विविध पक्षों के लिये क्रिया एकही हो, पर उसका फल विरुद्ध हो वह अभिन्न क्रिया श्लेष कहलावेगा।

२—(भिन्न क्रिया श्लेष)

कछु कान्ह सुनौ कल कूकति कोकिल कामकी कीरति गावति सी।
पुनि बातैं कहै कल भाषिनि कामिनि केलि कलानि पढ़ावति सी ॥

सुनि बाजति बीन प्रबीन नवीन सुराग हिये उपजावति सी।
कहि केशवदास प्रकास बिलास सबै बन शोभ बढ़ावति सी ॥४१॥

(व्याख्या)—अर्थ तो इसका स्पष्ट है। इसमें 'बन' शब्द श्लिष्ट है जिसके तीन अर्थ यहां लेना चाहिये (१) जंगल, (२) घर, (३) बाग। तात्पर्य यह है कि कोकिल का कूकना (बाग में) मंजु भाषिणी कामिनी का बातें करना (घर में) और किसी प्रबीण के हाथ से नवीन बीन का बजना (जंगल में), उस स्थान की शोभा ही बढ़ावैगा। अर्थात् अनेक क्रियाओं का फल एकही होगा। अतः इसकी परिभाषा यों होनी चाहियेः—

जहां क्रियायें भिन्न भिन्न हों, पर उनका फल एक हो और श्लेष भी हो, उसे भिन्न क्रिया श्लेष कहेंगे।

(सूचना)—किसी किसी प्रति में इसका नाम 'विरुद्ध क्रिया श्लेष' पाया जाता है। यदि यही नाम शुद्ध माना जाये, तो 'विरुद्ध' का अर्थ यहां पर 'भिन्न' ही लेना उचित होगा, क्योंकि उदाहरण में कूकना, बोलना और बजना क्रियायें न तो परस्पर विरोधी हैं और न फल की क्रिया "शोभा बढ़ाना" के ही बिरुद्ध हैं। यदि क्रियायें परस्पर विरोधी होती तो यह अलंकार अर्वाचीन ब्याघात अलंकार का दूसरा भेद होजाता।

३—(विरुद्ध कर्मा श्लेष)

मूल—दोऊ भगवंत तेजवंत बलवंत दोऊ,
दुहुन की बेदन बखानी बात ऐसी है।
दोऊ जानैं पुन्य पाप, दुहुन के ऋषि बाप,
दुहुन की देखियत मूरति सुदेसी है।

सुनौ देवदेव बलदेव, कामदेव प्रिय,
केशोराय कौ सौं तुम कहौ तैसी जैसी है ।
बारुणी को राग होत सूरजु करत अस्त,
उदौ द्विजराज को जु होत यह कैसी है ॥४२॥

शब्दार्थ—भगवंत = किरण धारी । दोऊ = सूर्य और चंद्रमा । दुहुन के ऋषि बाप = सूर्य के पिता कश्यप, चंद्र के पिता अत्रि । सुदेसी = सुन्दर । देव देव = यह 'बलदेव' का विशेषण है । कामदेव प्रिय = यह 'केशवराय' का विशेषण है । केशव-राय = कृष्णजी । सौं = शपथ । तुम'' है = बलदेवजी प्रसिद्ध शराबी थे, अतः प्रश्नकर्ता उन्हें अनुभवी समझ कर उन्हीं से पूंछता है कि कृष्ण की शपथ करके तुम्हीं यथार्थ बात कहौ । बारुणी = (१) पच्छिम दिशा (२) शराब । रागहोत = (१) लाल होते ही (२) अनुराग पैदा होतेही । सूर = (१) सूर्य (२) शूरपुरुष, शूरबीर क्षत्री । दिजराज = (१) चंद्रमा (२) ब्राह्मण । अस्त (१) = डूबना (२) नष्ट होना । उदौ = (१) उदय होना (२) बढना ।

भावार्थ—दोनो (सूर्य और चंद्रमा) किरणधारी, प्रकाशवान और बली हैं, दोनों का वर्णन वेद में है, दोनों पुन्य पाप जानते हैं, दोनों ऋषि सन्तान हैं, दोनों सुन्दर हैं । हे देवदेव बलदेव जी ! तुम्हें काम प्रिय कृष्ण की शपथ है तुम्हीं यथार्थ बात बतलाओ कि पच्छिम दिशा में लालिमा छातेही सूर्य का अस्त और चंद्रमा का उदय क्यों होता है (अथवा शराब का अनुराग होते ही शूरक्षत्री का बिनाश और ब्राह्मण की बढ़ती हो यह कैसी अद्भुत बात है) ।

(व्याख्या)—ऊपर के दो चरणों में जो विशेषण सूर्य और चंद्रमा के हेत हैं वे क्षत्री और ब्राह्मण के लिये भी हो सकते हैं। "राग होत" क्रिया एक है, पर उसके फल दोनों के लिये (सूर्य और चंद्रमा के लिये) परस्पर अति विरुद्ध हैं अर्थात् एक का 'अस्त' दूसरे का 'उदय', अतः इसकी परिभाषा यों होगी कि:—

"जिस श्लेष में एक क्रिया के दो विरुद्ध कर्म (फल) हों, उसे विरुद्ध कर्माश्लेष कहेंगे।

४—(नियम श्लेष)

मूल—बैरी गाय ब्राह्मन को काले सब काल जहां,
कवि कुल ही को सुबरणहर काज है।
गुरु सेजगामी एक बालकै विलोकियत,
मातँगनि ही को मतवारे को सो साज है।
अरि नगरीन प्रति होत है अगम्या गौन,
दुर्गन ही केशोदास दुर्गति सी आज है।
राजा दशरथ सुत राजा रामचंद्र तुम,
चिरु चिरु राज करौ जाको ऐसो राज है॥ ४३॥

(नोट)—इसका अर्थ हम केशवकौमुदी में लिख चुके हैं (देखो प्रकाश २७ छंद नं० ३)

(व्याख्या)—इसमें सुबरणहर, गुरुसेजगामी, मतवारे, अगम्यागौन, दुर्गति इत्यादि शब्द श्लिष्ट हैं। इनके प्रचलित अर्थों को नियमन करके एक विशेष अर्थ में बद्ध (सीमित) कर दिया गया है, अतः इसका नाम केशव ने नियम श्लेष

रखा है। अर्वाचीन आचार्य इसे 'परिसंख्या' अलंकार कहते हैं।

५—(विरोधी श्लेष)

मूल—कृष्ण हरेहरये हरैं संपत्ति, शंभु बिपत्ति यहै अधिकाई।
जातक काम अकामन के हितु, घातक काम सकाम सहाई॥
छाती में लच्छि दुरावत वेतो, फिरावत ये सब के सँग धाई।
यद्यपि केशव एक तऊ हरि ते हर सेवक को सत भाई॥४४॥

शब्दार्थ—हरे हरये = धीरे धीरे। जातक काम = काम को पैदा करने वाले। अकामन के हितु = निष्काम भक्तों के हितू हैं। घातक काम = काम को मारने वाले। सकाम सहाई = सकाम भक्तों के सहायक हैं। लच्छि = लक्ष्मी। सेवक को सतभाई = सेवक के साथ अधिक सद्भाव रखते हैं।

भावार्थ—(हरि और हर दोनों एकही हैं—समान ही है, पर हरि की अपेक्षा हर में ये अधिकतायें हैं कि) हरि (कृष्ण) तो धीरे धीरे अपने दासों की संपत्ति हरलेते हैं और हर (शिवजी) विपत्ति हरते हैं। हरि काम के पिता और कामी भक्तों के हितू हैं, शिवजी काम के घातक और अकाम दासों के सहायक हैं। वे (हरि) लक्ष्मी को छाती में लुकाते हैं, (अतिप्यार से छाती में दबाये रखते हैं—जैसे बंदरी अपने बच्चों को छाती से लगाये रहती है) अर्थात् श्री वत्सलांछन हैं, और ये (शिव) अपने सब दासों के संग लक्ष्मी को फिराते हैं (दासों को अचल लक्ष्मी प्रदान करते हैं)। यद्यपि हरि और हर एकही हैं, तो भी हरि की अपेक्षा हर में दासों की ओर अधिक सद्भाव है।

(व्याख्या)—इसमें काम, अकाम, सकाम, इत्यादि शब्द श्लिष्ट हैं। इन्हीं के द्वारा हरि और हर में विरोध निकाला गया है। अतः इस अलंकार की परिभाषा यों होगी कि:—जहां श्लिष्ट शब्दों द्वारा दो पदार्थों में विभिन्नता, विरोध' न्यूनाधिकता दिखलाई जाय उसे विरोधी श्लेष कहते हैं। हमारी सम्मति में तो यह एक प्रकार का अर्वाचीन व्यतिरेकालंकार ही है।

१३—(सूक्ष्मालंकार)

मूल—कौनहु भाव प्रभाव ते, जानै जिय की बात।
इंगित तें आकार तें, कहि सूक्षम अवदात॥४५॥

भावार्थ—किसी भाव, चेष्टा वा आकार से दूसरे के मन की बात समझ ली जाय, ऐसे वर्णन में सूक्ष्मालंकार माना जायगा।

(यथा)

मूल—सखि सोहत गोप सभा महँ गोबिंद बैठे हुते दुति को धरिकै।
जनु केशव पूरण चंद लसै चित चारु चकोरन को हरिकै॥
तिनको उलटो करि आनि दियो केहु नीरज नीर नयो भरिकै।
कहु काहे ते नेकु निहारि मनोहर फेरि दियो कलिका करिकै॥४६॥

(व्याख्या)—अर्थ तो स्पष्ट है। सभा में बैठे हुए कृष्ण को किसी ने कमल पुष्प में पानी भरकर और उलटा करके दिया। इससे कृष्ण ने यह समझ लिया कि कोई प्रेमिका हमारे विरह में कमलवत मुहँ लटकाये, निज कमल रूपी नेत्रों से जलढार रही है (आंसू बहा रही है)। उसी प्रफुल्लित कमल को कृष्ण ने कलीवत बनाकर-संकुचित करके-

लौटा दिया। इससे कृष्ण ने यह इशारा किया कि रात्रि में जब कमल सकुचित हो जाते हैं मिलूंगा। बस इसी प्रकार का कथन सूक्ष्मालंकार है।

(नोट)—एक हस्त लिखित प्रति में इस उदाहरण के स्थान पर नीचे लिखा सवैया मिलता है:—

मूल—बैठी हुती वृषभानु कुमारि सखीन के मंडल मध्य प्रवीनी।
लै कुम्हिलानो सो कंज परी जू कोऊ इक ग्वालिनि पायँ नवीनी॥
बंदन सों छिरक्यो वह वाकहँ पान दये करुना रस भीनी।
चंदन चित्र कपोल बिलेपि कै अंजन आँजि बिदा करि दीनी॥

(व्याख्या)—इसमें भी वही बात है। सखी मंडल में बैठी हुई राधिका के पास एक नवीन ग्वालिन आई वह हाथ में एक कुम्हिलाया हुआ कमल लिये हुए राधिका के पैरों पड़ी जिसका अर्थ यह हुआ कि कृष्ण का कमल मुख तुम्हारे विरह में मुरझा रहा है, मैं पैरों पड़ती हूं तुम उनसे मिलो। राधिका ने मुरझे कमल पर सिंदूर छिड़का, ग्वालिन को पान दिया, एक कपोल पर चंदन लगाकर एक आंख में अंजन लगाकर बिदा कर दिया—इससे यह सूचित किया कि
बंदन सों छिरक्यो = मेरा अनुराग कृष्ण पर है।
पान दये = मैं अपना हाथ (पाणि) उन्हें देती हूं।
चंदन कपोल विलेपिकै = आधी रात तक चांदनी है। उसके अस्त होने पर।
अंजन आंजि बिदा कीनी = अंधेरे समय में मिलूंगी।

१४—(लेशालंकार)

मूल-चतुराई के लेश ते, चतुर न समझै लेश।

बरनत कवि कोबिद सबै ताको केशव लेश ॥४७॥

भावार्थ—कोई घटना वा कोई दशा चतुराई से किसी क्रिया द्वारा छिपाना जिससे चतुर आदमी भी न समझ सकै—यही 'लेश' है। हाल के आचार्य इसे 'युक्ति' अलंकार कहते हैं।

(यथा)

मूल—खेलत हे हरि बागे बने जहँ बैठी प्रिया रति ते अति लोनी।
केशव कैसेहुँ पीठिमें दीठिपरी कुच कुंकुम की रुचि रौनी ॥
मातु समीप दुराई भले तिहि सात्विक भावन की गति होनी।
धूरि कपूर की पूरि विलोचन सूँघि सरोरुह ओढ़ि ओढ़ौनी ॥४८॥

(विशेष)—इस छंद में वर्णित घटना कभी हो चुकी है कि प्रणय कलह में कृष्ण ने नायिका को पीठ दी है और नायिका ने प्रेमवश नायक को पीछे ही से आलिंगन करके जबरदस्ती मुख चूम लिया है। ऐसा करने में नायिका के कुचों पर लगी केसर नायक के बागे में पीठ की ओर लग गई है। उस केसर के चिन्ह अबतक बागे में मौजूद हैं।

शब्दार्थ—खेलत हे = खेलते थे। बागे बने = बागा पहने बने ठने। लोनी = लावण्यमयी, अति सुन्दर। कैसेहु = किसी प्रकार। रौनी = रमणीय। रुचि = चमक। सात्विक भावन की गति होनी = सात्विक भावों का होना अर्थात् अश्रु, कंप और रोम उठना वा स्वेद आना। सरोरुह = कमल। ओढ़ौनी = ओढ़नी, उपरना।

भावार्थ—कृष्णजी बागा पहने बने ठने वहीं खेल रहे थे जहाँ रति से भी अति सुंदर प्रियतमा गुरुजनों में बैठी थी। किसी प्रकार नायिका की दृष्टि (पूर्व घटना में कही हुई) निज कुच कुंकुम की रमणीय चमक पर पड़ गई। उसे सारी कथा याद आगई, अतः उसके अंग में सात्विक भाव उदय हुए, पर माता समीप ही थी, इससे उसने चतुराई से उन भावों के होने को इस प्रकार छिपाया कि आंख में कपूर की धूर छिड़क ली (जिससे अश्रु पर माता को संदेह न हो) कंपभाव को कमलफूल सूंघ कर छिपाया (फूल सूंघकर लोग तारीफ में सिर हिलाने लगते हैं, इससे कंप का संदेह न होगा) और रोमांच को अच्छी तरह उपरना ओढ़कर छिपाया। चतुराई से अपना प्रेमभाव माता पर प्रगट न होने दिया।

१५—(निदर्शनालंकार)

मूल—कौनहु एक प्रकार ते, सत अरु असत समान।
करिये प्रगट, निदर्शना, समुझत सकल सुजान॥ ४६॥

भावार्थ—भले काम से भली शिक्षा और बुरे काम से बुरी शिक्षा प्रगट की जाय उसे निदर्शनालंकार कहते हैं।

(यथा)

मूल—तेई करैं चिर राज, राजन में राजैं राज,
तिनहीं को यश लोक लोक न अटतु है।
जीवन, जनम तिनहीं के धन्य केशोदास,
औरन को पशु सम दिन निघटतु है।
तेई प्रभु परम प्रसिद्ध पुहुमी के पति
तिनहीं की प्रभु प्रभुताई को रटतु है।

सूरज समान सोम मित्र हू अमित्र कहँ,

सुख दुख निज उदै अस्त प्रगटतु है ॥ ५० ॥

शब्दार्थ = न अटतु है = नहीं समाता। दिन निघटतु है = समय बीतता है। पुहुमी = पृथ्वी। सोम = चंद्रमा।

भावार्थ—वे ही राजा चिरकाल तक राज करते हैं, वेही अच्छे राजा गिने जाते हैं, उन्हीं का यश संसार में नहीं समाता, जीवन जन्म उन्ही के धन्य हैं, और तो पशु समान दिन बिताते हैं, वे ही प्रसिद्ध राजा कहे जाते हैं, उन्हीं की प्रभुताई को सब लोग स्मरण करते हैं, जो सूर्य और चंद्रमा के समान अपने उदय और अस्त से अपने मित्रों और अमित्रों को सुख और दुःख देते हैं।

(व्याख्या)—इसमें सूर्य और चंद्रमा के उदय और अस्त से यह शिक्षा दी गई है कि (१)—उदय वही अच्छा है जिससे मित्रों को सुख और शत्रुओं को दुःख हो (यह अच्छे काम से अच्छी शिक्षा हुई) और (२)—अस्त वही अच्छा है जिससे मित्रों को दुःख और शत्रुओं को सुख हो (यह बुरे काम से बुरी शिक्षा हुई)

१६—(ऊर्जालंकार)

मूल—तजै न निज हंकार को, यद्यपि घटै सहाय।

ऊर्ज नाम तासों कहैं, केशव सब कबिराय ॥ ५१ ॥

(यथा)

मूल-को बपुरा जो मिल्यौ है बिभीषण

ह्वै कुल दूषण जीवैगो कौलौं।

कुंभ करन्न मर्यौ मघवा रिपु
　　तौहु कहा न डरौं यम सौं लौं।
श्री रघुनाथ के गातन सुंदरि
　　जानहि तूं कुशलात न तौ लौं।
शाल सबै दिगपालन को कर
　　रावण के करवाल है जौ लौं॥ ५२॥

शब्दार्थ—बपुरा = बेचारा। मघवारिपु = मेघनाद। न डरौं जम सौ लौं = मैं शत यमराज से भी नही डरता। सुंदरि = (संबोधन है, मंदोदरी के लिये) करवाल = तलवार।

भावार्थ—रावण मंदोदरी से कहता है, हे सुंदरी! क्या हुआ जो बिभीषण शत्रु से जा मिला, कुंभकर्ण और मेघनाद मारे गये, मैं एक तो क्या सौ यमराजों से नहीं डरता। जब तक दिगपालों को शालने वाली मेरी तलवार मेरे पास है तब तक तू राम की कुशल मत समझ।

(व्याख्या)—सहाय हीन होने पर भी रावण अपने अहंकार स्वाभिमान को नहीं छोड़ता। ऐसे ही वर्णन में ऊर्जालंकार माना जायगा।

१७—(रसवत अलंकार)

मूल-रसमय होय सु जानिये, रसवत केशवदास।
　　नव रस को संक्षेपही, समुझौ करत प्रकाश॥५३॥

(व्याख्या)—जहां कोई रस किसी अन्य रस वा भाव का अंग होकर उसे पोषण करे, उसकी शोभा बढ़ावे वहां उस पोषण कारी रस के बर्णन को (गुणीभूत वा अप्रधान व्यंग

होने के कारण) रसवत अलंकार कहते हैं, यह हाल के आचार्य कहते हैं। परन्तु केशव ने तो रस वर्णन ही को रसवत मान कर 'रसमय होय' परिभाषा की है। उदाहरण भी वैसे ही दिये हैं। बहुत लोग इसे अलंकार ही नहीं मानते, क्योंकि अन्य अर्थालंकारों के अभाव में ही इसकी ओर दृष्टि जाती है अन्यथा नहीं।

(शृंगार रसवत्)

मूल-आन तिहारी, न आन कहौं,
तन में कछु, आनन आन ही कैसो।
केशव स्याम सुजान सुरूप न
जाय कहो मन जानत जैसो॥
लोचन शोभहिं पीवत जात,
समात, सिहात, अघात न तैसो।
ज्यों न रहात विहात तुम्हें,
बलिजात, सुबात कहौ टुक बैसो॥५४॥

(विशेष)—कोई नायिका जिसका पति विदेश में है किसी दूसरे पुरुष से, जो उसके पति की अनुहार का है कहती है कि :—

भावार्थ—मैं तुम्हारी ही शपथ करके कहती हूं कि मैं तुमसे कोई अन्य बात न कहूंगी, केवल इतना ही कहती हूं कि "सुबात कहो टुक बैसो"—थोड़ी देर मेरे पास बैठो और मुझसे कुछ बातें करो (जिससे मन बहल जाय) क्योंकि तुम्हारे तन में कुछ वैसी ही शोभा है जैसी मेरे पति के तन

में है और तुम्हारा मुख तो ठीक वैसा ही है जैसा अन्य का (मेरे पति का) है—(स्त्रियां अपने पति को अन्य, कोई, दूसरे या इसी प्रकार के किसी दूसरे शब्द से स्मरण करती हैं, यह भारत की शिष्ट रीति है)—उस सुजान श्याम का सुरूप कहा नही जा सकता, जैसा है वैसा मन ही जानता है। (मगर तुम्हारा रूप भी उसी अनुहार का है अतः) मेरे लोचन तुम्हारी शोभा को पीते जाते हैं, उसमें समाते जाते हैं, सिहाते जाते हैं कि हमारा सा सौभाग्य किसी का नही, पर वैसी तृप्ति नहीं प्राप्त होती (जैसी निजपति के दर्शनों से होती थी, पर खैर जो कुछ है वही ग़नीमत है) तुमसे बिलग होकर मेरा जी न रह सकैगा (तुम्हारे दर्शनों से कुछ तसल्ली है) अतः मैं बलि जाती हूं, थोड़ी देर मेरे पास बैठो कुछ बातें करो, बस इतना ही चाहती हूं।

(व्याख्या)—नायिका निजपति से वियोगिनी है अतः मुख्यता वियोग शृंगार की हुई। "आन तिहारी, ज्यो न रहात विहात तुम्हैं, बलिजात" इत्यादि वाक्य उसकी रति उस पुरुष प्रति भी प्रगट करते हैं जिससे वह बातें कर रही है, और उससे संयोग भी है, क्योंकि दोनों एकत्र हैं। अतः संयोग की गौणता हुई। यही गौण संयोग वियोग का पोषक होने के कारण रसवत है। इस संयोग की वार्ता से हो उसकी विरह प्रबलता अधिक स्पष्ट होती है।

(वीर रसवत्)

मूल—जेहि सर मधु मद मर्दि महा मुर मर्दन कीनो।
मार्‍यो कर्कश नरक शंख हनि शंख सुलीनो।

निष्कंटक सुर कटक कन्यौ कैटभ वपु खंडयो।
खरदूषण त्रिशिरा कबंध तरुखंड बिहंड्यो॥
कुंभकरण जेहि मद हन्यौं, पल न प्रतिज्ञा ते टरौं।
तेहि बाण प्राण दसकंठ के कंठ दसौ खंडित करौं॥५५॥

(विशेष)—रामचंद्रिका के उन्नीसवें प्रकाश में (छंद ५१) यह बात श्रीराम जी उस समय कह रहे हैं जब रावण के युद्ध से लक्ष्मण सरीखे बांके बीर भी घबरा कर हतोत्साह हो रहे थे। यह बात बीरों के उत्साह को उत्तेजित करने को कही गई है। इससे राम जी का उत्साह प्रगट होता है। उत्साह स्थाई होने से बीर रस है।

भावार्थ—रामजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण! तुम हतोत्साह मत हो, मैंने जिस बाण से मधु, मुर, नरक, शंख और कैटभ को मारा है, खर दूषण, त्रिशिरा, कबंध सौर सप्तताल को काटा है, कुंभकर्ण का मद जिस बाण से हरण किया है, मैं प्रतिज्ञा करता हूं और प्रतिज्ञा से पल मात्र न हटूंगा, मैं उसी बाण से रावण के दशौ सिर काट कर उसके प्राण हरण करूंगा।

(रौद्र रसवत्)

मूल—करि आदित्य अदृष्ट नष्ट यम करौं अष्ट वसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु॥
बलित अबेर कुबेर बलिहिं गहि देउँ इन्द्र अब।
विद्याधरन अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥
लै करौं दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिट जाय जल।
सुनि सूरज सूरज उगत ही करौं असुर संसार बल॥५६॥

शब्दार्थ—बलित = सहित। अबेर = वरुण। अविद्य करौं = अस्तित्व मिटा दूं। सूरज = सूरपुत्र (सुग्रीव)। असुर = (अ + सुर) देवों से रहित। बल = निजबल से।

(विशेष)—यह राम जी का कथन उस समय का जब उनसे कहा गया कि लक्ष्मण जी ब्रह्मशक्ति से घायल हुए हैं और सूर्योदय होते ही मर जायेंगे। राम को देवताओं पर क्रोध आगया कि इन्हीं के फायदे के लिये हम कष्ट उठा रहे हैं और यही लोग अपने बरदानों द्वारा हमारा अनिष्ट करने को तैयार हैं।

भावार्थ—बारहो आदित्यों को गायब करके चौदहो जमों और आठो बसुओं को नष्ट करदूंगा, रुद्रों को समुद्र में डुबाकर, गंधर्वों को बलिपशु बनाकर काट डालूंगा, बरुण समेत कुबेर और इन्द्र को पकड़ कर राजा बलि के हवाले कर दूंगा। विद्याधरों का अस्तित्व ही मिटादुंगा, सब सिद्धों को सिद्धि रहित कर दूंगा। अदिति को लेकर दिति की दासी बना डालूंगा। वायु, अग्नि और जल मिट जायेंगे। हे सुग्रीव! यदि सूरज निकले तो मैं अपने बल से समस्त संसार को देव बिहीन कर डालूंगा।

(व्याख्या)—इस कथन से तथा समय के बिचार से स्पष्ट है कि रामजी को 'कोप' हो आया है, अतः 'कोप' स्थाई होने के कारण रौद्र रस है।

(करुणा रसवत)

मूल—दूरते दुंदुभि दीह सुनी न गुनी जन पुंज की गुंजन गाढ़ी।
तोरन तूर न ताल बजैं बरम्हावत भाट न गावत ढाढ़ी॥
बिप्र न मंगल मंत्र पढ़ैं अरु देखी न बारवधू ढिग ठाढ़ी।
केशव तात के गात, उतारति आरति, मात्रहिं आरति बाढ़ी ५७॥

(विशेष)—भरत जी मामा के देश से आये हैं, केकई आरती उतारती है, उस प्रसंग का बर्णन है। राजा दशरथ की लाश घर में रखी है अतः मंगलाचार नहीं होते।

शब्दार्थ—तोरन = पुर के बाहर का सजीला द्वार। तूर = तुरही, सिंहा। ताल = मंजीरा। बरम्हाना = आशिर्वाद देना। ठाढ़ी = गायक॥ बारबधू = मंगलामुखी (पुर प्रवेश वा गृह प्रवेश समय इनका दर्शन मंगल सूचक माना गया है) तात = पुत्र। आरति = दुःख, करुणा।

भावार्थ—भरत जी नानिहाल से अयोध्या में आये तो बड़े नगाड़ों का शब्द दूर से नहीं सुना, गुणी गायकों का शब्द भी नहीं सुना, तोरण नहीं सजा, सिंहा और मंजीरे नहीं बजे, भाटोंने आशिर्वाद नहीं दिया, ढाढ़ियों ने गुणगान नहीं किया। ब्राह्मणों ने स्वस्ति बाचन नहीं किया, न वेश्याएं ही द्वार के निकट खड़ी देखी। केशव कहते हैं कि किसी प्रकार की मंगल सामग्री न देखकर और केवल माता को आरती मात्र उतारते देख कर (तात के गात आरति बाढ़ी) पुत्र के चित्त में दुःख बढ़ा।

(व्याख्या)—शोक स्थायी है, मंगल सामग्री का अभाव उद्दीपन है, अतः करुणा रस है।

(भयानक रसवत)

मूल—राम की बाम जो आनी चोराय
सो लंक में मीचु की बेलि बई जू।
क्यों रण जीतहु गे तिन सों
जिनकी धनु रेख न नाखी गई जू।

बीस बिसे बलवंत हुते, जु हुती दृग केशव रूप रई जू।
तोरि शरासन शंकर को पिय सीय स्वयंबर क्यों न लई जू ५८॥

शब्दार्थ—न नाखी गई=लांघी नहीं गई। बीसबिसे=बीसो बिस्वा (निश्चय ही)। हुते=थे। हुती=थी। रूपरई=रूप से रँगी (रूपवती) बीसबिसे...रई जू=यदि तुम निश्चय बलवान थे और सीता तुम्हारी दृष्टि में रूपवती जँचती थी। जु=जो।

भावार्थ—(मंदोदरी का कथन रावण प्रति) सीता को चोरा लाकर तुमने लंका में मृत्यु की बेल बोई है, तुम उनसे रण में कैसे जीतोगे जिनके धनुष से खिंची हुई रेखा को लांघने का तुम साहस नहीं कर सके। यदि तुम निश्चय बलवान थे और सीता तुम्हें अति रूपवती जँची थी, तो शंकर का धनुष तोड़कर स्वयंबर में ही उसको क्यों नहीं बरण किया।

(व्याख्या)—इसमें मंदोदरी के चित्त में भय का होना पाया जाता है। सीता आलंबन विभाव है, ये वचन ही अनुभाव हैं, 'भय' स्थायीभाव है, अतः भयानक रस है। बालक, स्त्री, अबल, नीच, तथा अयोग्य जनों को भय होता है।

(पुनः)

मूल—बालि बली न बँच्यो पर खोरि सु
क्यों बाचिहौ तुम कै निज खोरहिं।
केशव छीर समुद्र मथ्यौ कहि
कैसे न बांधिहै सागर थोरहिं।
श्री रघुनाथ गनो असमर्थ न,
देखि बिना रथ हाथिन घोरहिं।

तोऱ्यो शरासन शंकर को जेहि
सोऽबं कहा तुव लंक न तोरहिं ॥५६॥

भावार्थ—(यह भी मंदोदरी का बचन रावण प्रति है)- बली बालि दूसरे का (सुग्रीव का) दोष करके राम से नहीं बच सका, तो तुम खास उन्हीं का दोष करके (सीता हरण करके) कैसे बच सकोगे। जिसने छीर समुद्र मथ डाला था वह इस छोटे से समुद्र को कैसे न बांध लेगा। श्री रघुनाथ को बिना रथ, हाथी, घोड़ों के देखकर असमर्थ मत समझो, जिसने शंकर का धनुप तोड़ा है (जो तुम से उठा तक न था) वह अब क्या तुम्हारी लंका न तोड़ेगा। अर्थात् निश्चय तोड़ेगा (जीतेगा)।

(व्याख्या)—मंदोदरी को भय, राम आलंबन, उनके अद्भुत कार्य उद्दीपन, बचन ही अनुभाव, अतः भयानक रस।

(बीभत्स रसवत)

मूल—सिगरे नरनायक असुर विनायक राकस पति हिय हारि गये।
काहू न उठायो, गहि न चढ़ायो, टऱ्यो न टारे भीत भये॥
इन राजकुमारन अति सुकुमारन लै आए हौ, पैज करै।
व्रत भंग हमारो भयो तुम्हारो ऋषि तप तेज न जानि परै॥६०॥

भावार्थ—(जनक बचन विश्वामित्र प्रति) जब सब राजा, असुरपति और राक्षस पति इत्यादि हृदय से हार गये, न किसी ने उठाया, न चढ़ाया, न स्थान ही छोड़ा सके, डरकर चले गये। जब हमारी प्रतिज्ञा भंग हो चुकी तब इन अति सुकुमार राजकुमारों को हमारी पैज पूरी करने को लाये हो,

हे ऋषि तुम्हारे तप तेज से चाहे जो कुछ हो जाय, पर इन राजकुमारों से तो प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो सकती।

(व्याख्या)—प्रतिज्ञा भंग से ग्लानि, राजकुमारों की सुकुमारता उद्दीपन, बचन ही अनुभाव हैं। 'ये राजकुमार क्या तोड़ेंगे' यह भावना ग्लानि सूचित करती है (कभी कभी निंदात्मक शब्दों से ग्लानि सूचित होती है)। अतः वीभत्स रस।

(अद्भुत रसवत्)

मूल—आशीविष, सिंधुबिष, पावक सों नातो कछू,
हुतो प्रहलाद सों, पिता को प्रेम टूटो है।
द्रौपदी की देह में खुथी ही कहा दुःशासन,
खरोई खिसानो खैंचि बसन न खूँटो है।
पेट में परीछित की पैठि कै बचाई मीचु,
जब सबही को बल बिधिबान लूटो है।
केशव अनाथन को नाथ जो न रघुनाथ,
हाथी कहा हाथ कै हथ्यार करि छूटो है॥ ६१॥

शब्दार्थ—आशीबिष = सर्प। सिंधुबिष = हलाहल। खुथी = थाती। ही = थी। न खूँटो है = कम नहीं हुआ। बिधिबान = ब्रह्मास्त्र। हाथकै = हाथ से। हथ्यार करि = शस्त्र चला कर।

भावार्थ—(कोई ईश्वर भक्त कहता है) जब पिता शत्रु होगया था, तब प्रहलाद का क्या सर्प, हलाहल, औ अग्नि से कोई रिश्ता था (जो वह बच गया)। द्रौपदी की देह में क्या बस्त्रों की थाती गड़ी थी कि दुःशासन खींचते खींचते हार गया और वस्त्र कम न हुआ। जब अश्वत्थामा द्वारा प्रेरित ब्रह्मास्त्र

ने सबका बल नष्ट कर दिया था, तब कृष्ण ने उत्तरा के गर्भ में प्रवेश करके चक्र द्वारा परीक्षित की रक्षा की थी। केशव कहता है कि यदि राम जी अनाथों के नाथ (रक्षक) नहीं हैं, तो क्या हाथी (गजेन्द्र) अपने हाथ से हथियार करके ग्राह से छूटा था।

(व्याख्या)—ऊपर लिखी घटनाओं से सुननेवाले के चित्त में विस्मय पैदा है कि ये सब बातें कैसे हुईं, बड़े आश्चर्य की बातें हैं, अतः अद्‌भुत रस है।

(पुनः)

मूल—केशोदास बेद विधि व्यर्थही बनाई विधि,
ब्याध शवरी को कौने संहिता पढ़ाई ही।
बेषधारी हरि बेष देख्यो है अशेष जग
तारका को कौने सीख तारक सिखाई ही॥
बारानसी बारन कन्यो हो बसोवास कब,
गनिका कबाहिं मनिकनिका अन्हाई ही।
पतितन पावन करत जो न नंदपूत,
पूतना कबाहिं पति देवता कहाई ही॥ ६२॥

शब्दार्थ—ब्याध = बाल्मीक। संहिता = वेद। ही = थी। बेषधारी हरि = एक राजकुमार ने झूठ मूठ अपने को कृष्णरूप बनाकर एक राजकुमारी से ब्याह किया था। परीक्षा होने पर कृष्ण ने केवल निज भेष धारी की लज्जा रखने के लिये उसको चतुर्भुज कर दिया था। भक्तमाल में कथा प्रसिद्ध है। तारक सीख = तारक मंत्र का उपदेस। वारानसी = काशी।

बारन = हाथी, गजेन्द्र। कर्यौ हो = किया था। बसोबास = निवास। मनिकनिका = काशी का प्रसिद्ध मणिकर्णिका कुंड वा घाट। नंदपूत = कृष्ण। पतिदेवता = पतिव्रता, सती।

भावार्थ—ब्रह्मा ने वेद की पद्धति व्यर्थ ही बनाई है। यदि वेद पद्धति ही से मुक्ति मिलना निश्चित है, तो बाल्मीकि और शबरी को किसने वेद पद्धति पढ़ाई थी। वेशधारी की भी जैसी लज्जा रखी उसे सारे संसार ने देखा था। ताड़का को किसने तारकमंत्र की दीक्षा दी थी। गजेन्द्र ने कब काशी वास किया था, गणिका ने कब मणिकर्णिका में स्नान किये थे। यदि कृष्ण पतितपावन न होते तो पूतना को मुक्ति कैसे मिलती क्योंकि वह कब पतिव्रता नाम से प्रसिद्ध थी।

(व्याख्या)—पहले छंद की तरह इस छंद में वर्णित घटनाएं भी सुननेवाले के चित्त में आश्चर्य पैदा करती हैं कि ब्रह्मा के रचे विधान ही व्यर्थ हैं या ये घटनाएं झूठी हैं। यदि विधान सत्य है तो ये घटनाएं कैसे हुईं। अतः अद्भुत रस।

(हास्य रसवत)

मूल—बैठति है तिनमें हठि कै जिनकी तुमसों मति प्रेम पगी है।
जानति हौ नलराज दमैंती की दूत कथा रस रंग रँगी है॥
पूजैगी साध सबै मन की तन भाग की केशव जोति जगी है।
भेद की बात सुने ते कछू वह मासक ते मुसकान लगी है॥६३॥

शब्दार्थ—जिनकी···पगी है = जो तुम्हारे प्रेमी हैं। नलराज··· रँगी है = राजा नल और दमयंती की दूत कथा (विवाह से पहले की हंस द्वारा दूतत्व की कथा) बड़े प्रेम से कहा सुना करती है। तनभाग = शरीर के सब अवयव। भेद की बात = कोई रसमय वार्ता। मासक ते = लगभग एक महीने से।

भावार्थ—सरल है (दूती का बचन नायक प्रति)

(व्याख्या)—"मुसुकान लगी है" प्रत्यक्ष ही हास्य का ज़िक्र है। इसे सुनकर नायक भी ज़रूर हँस दिया होगा।

(शांत रसवत)

मूल—देइगो जीवन वृत्ति वहै प्रभु, है सिगरे जग को जेहि दइयै।
आवत ज्यों अन उद्यम तें सुख त्यों दुख पूरब के कृत पइयै॥
राज औ रंक सुराज करौ सब काहे को केशव काहु डरइयै।
मारनहार जियावनहार सु तौ सबके सिर ऊपर हइयै॥ ६४॥

शब्दार्थ—जीवनवृत्ति = जीविका, रोज़ी। अन उद्यम = बिना कोशिश किये। कृत = कर्म। दइयै है = दीही है। हइयै = है ही।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(व्याख्या)—ईश्वर पर विश्वास, कर्मफल और जगत से निर्वेद प्रत्यक्ष है। अतः शांत रस है।

१८–(अर्थान्तरन्यास अलंकार)

मूल–और आनिये अर्थ जहँ औरै बस्तु बखानि।
अर्थान्तर को न्यास यह चार प्रकार सुजान॥ ६५॥

भावार्थ—और कुछ कहकर और कुछ अर्थ लेना, यही अर्थान्तर-न्यास है। यह चार भांति का होता है।

(साधारण उदाहरण)

मूल–भोरेहुँ भौंह चढ़ाय चितै डरपाइये कै मन क्यों हूं करेरो।
ताको तो केशव कोरि हिये दुख होत महा, सु कहाँ इत हेरो॥

कैसो है तेरो हियो हरि में रहि छोरो नहीं तनु छूटत मेरो।
बूंदक दूध को मार्यो है बांधि सु जानति हौं माई जायो न तेरो।६६॥

भावार्थ—कोई ब्रजनारी यशोदा प्रति कहती है कि मैं तो कभी धोखे से भौंह चढ़ाकर मन कड़ा करके अपने बच्चे को डरवाती हूं तो इस बात का मुझे कोटि भांति से महा दुःख होता है। सो मैं कहती हूं, ज़रा इधर देख, तेरा हृदय हरि के प्रति कैसा है, ज़रा ठहर, बड़ी कड़ी गांठ लगाई है छोरने से ज़रा भी नही छूटती। थोड़ा दूध लुढ़का देने के वास्ते तूने पुत्र को बांध कर मारा है, अतः मैं जानती हूं कि यह तेरा जन्माया नहीं है।

(व्याख्या)—"जायो न तेरो" कहा गया, पर अर्थ यह निकलता है कि कृष्ण प्रति तेरी प्रीति नहीं है। यही अर्थान्तरन्यास है।

(चार भेद वर्णन)

मूल–युक्त अयुक्त बखानिये और अयुक्तायुक्त।
केशवदास बिचारिये चौथो युक्त अयुक्त ॥ ६७ ॥

भावार्थ—१–युक्त अर्थान्तरन्यास। २–अयुक्त अर्थान्तरन्यास। ३–अयुक्त युक्त अर्थान्तरन्यास। ४–युक्त अयुक्त अर्थान्तरन्यास। ये चार प्रकार हैं।

१—(युक्त अर्थान्तर न्यास)

मूल–जैसो जहां जु बूझिये, तैसो तहां सु आन।
रूप शील गुण युक्ति बल, ऐसे युक्त बखान ॥ ६८ ॥

(यथा)

मूल-गरुवो गुरू को दोष दूषित कलंक करि,
भूषित निशाचरीनि अंक न भरत हैं ।
चंडकरमंडल तें लैलै बहु चंडकर,
केशोदास प्रतिमास मास निसरत हैं ॥
बिषधर बंधु हैं, अनाथिनि को प्रतिबंधु,
बिष को विशेष बंधु हिये हहरत है ।
कमलनयन की सौं, कमल नयन मेरे,
चंद्रमुखी ! चद्रमा तें न्याय ही जरत हैं ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ—निशाचरी = रात को विचरने वाली व्यभिचारिणी स्त्रियां । चंडकर मंडल = सूर्य । बिषधर = शंकर । बंधु = हितू । अनाथिनी = पति से वियुक्त विरहिनी । प्रतिबंधु = अहितू, विरोधी । कमलनयन = कृष्ण । सौं = शपथ । चंद्रमुखी = सखी के लिये संबोधन है । न्याय ही = उचित रीति से ।

भावार्थ—कोई विरहिनी सखी से कहती है कि हे चंद्रमुखी ! कृष्ण की शपथ करके कहती हूं कि मेरे नेत्र कमल चंद्रमा को देखकर जलते हैं सो उचित ही है (क्योंकि कमल और चंद्रमा का वैर है) अलावा इसके अच्छे आदमी बुरे पर जलते ही हैं । सो चंद्रमा ऐसा बुरा है कि गुरु के भारी दोष से दूषित है, निशाचरियों को अंकमाल देता है, इससे कलंक से भूषित है, सूर्यमंडल से बहुत सी प्रचण्ड किरणें चोराकर प्रतिमास निकलता है, बिषधर शिव इसके हितू हैं, और यह विरहिनियों का अहितू (प्रतिबंधु) है और बिष का तो

सगा भाई ही है, जिससे सब के कलेजे हहर जाते हैं। अतः चंद्रमा को देखकर यदि मेरे नेत्र जलते हैं तो अनुचित क्या है, उसमे जलाने की शक्ति है ही।

(व्याख्या)—कहा यह गया है कि "मेरे नेत्र चंद्रमा को देखकर जलते हैं" और युक्ति बल से चंद्रमा का रूप शील गुण कहकर उसमें जलाने की शक्ति भी प्रमाणित कर दी गई, परंतु वास्तव में तात्पर्य यह है कि मैं विरहिनी हूं अतः चंद्रमा मुझे दुखप्रद है और तू भी चंद्रमुखी है अतः तू भी मेरे सामने से दूर हो।

(नोट)—अबके आचार्य तो इसे काव्यलिंग अलंकार कहेंगे।

२—(अयुक्तअर्थान्तरन्यास)

मूल—जैसो जहां न बूझिये तैसो तहां जु होय।
केशवदास अयुक्त कहि बरणत हैं सब कोय॥ ७०॥

मूल—केशो दास होत मारासिरी पै सुमार सी री,
आरसी लै देखि देह ऐसियै है रावरी।
अमल बतासे ऐसे ललित कपोल तेरे,
अधर तमोल धरे दृग तिलचावरी।
येही छबि छकि जात छन में छबीले छैल,
लोचन गँवार छीनि लैहैं इत आव री।
बारबार बरजति, बारबार जाति कत,
मैले बार वारों आनिवारी है तू बावरी॥७१॥

शब्दार्थ—मारसिरी = (मारश्री) कामदेव की शोभा। सुमार = अच्छी मार पीट। तिलचावरी = सफेद और काले, सिता

(नोट)—हाल के आचार्यगण ऐसा कोई अलंकार नहीं मानते। इनके मतानुसार इसे अप्रस्तुत प्रशंसा का 'कारण निबंधना' भाग मान सकते हैं।

३—(अयुक्त-युक्त अर्थान्तरन्यास)

मूल—अशुभै शुभ ह्वै जात जहँ, क्योंहूं केशवदास।
इहै अयुक्तैयुक्त कबि बरणत बुद्धि विलास॥ ७२॥

भावार्थ—जहां अशुभ वर्णन में अर्थान्तर से शुभ वार्ता प्रगट हो।

(यथा)

मूल—पातक हानि, पिता सँग हारिबो, गर्भ के शूलन तें डरिये जू।
तालन को बँधिबो, बध रोर को, नाथ के साथ चिता जरिये जू॥
पत्र फटैं ते कटै ऋण केशव, कैसहु तीथर में मरिये जू।
नीकी सदा लगै गारि सनेह की, डांड़ भलो जो गया भरिये जू॥७३॥

शब्दार्थ—रोर=दारिद्र, निर्धनता। नाथ=पति। डांड़=दंड, जुर्माना। गया=गया तीर्थ जहां पित्रों को पिंडदान किया जाता है। 'भलो' शब्द का अन्वय सबके साथ समझना चाहिये।

भावार्थ—पापों की हानि भली है, पिता से हारजाना भला है, गर्भबास के दुःख से डरना भला है, तालों का बँधना भला है, दरिद्र का बध करना भला है, पति के साथ चिता पर जलना भला है, ऐसे पत्र (कागज़) का फटना भला है जिससे ऋण से छुटकारा मिलै (ऋण चुकजाने पर दस्तावेज़ फाड़ दिया जाता है), तीर्थ में मरना भला है, स्नेह मय गाली भली है, और गया में दंड भरना अच्छा है।

(व्याख्या)—हानि, हारना, डरना, बँधना, बध करना, जलना, फटना (पत्र का) मरना, गाली खाना, दंड भरना ये काम अच्छे नहीं, अशुभ हैं, पर ऊपर वर्णित संबंध में अच्छे माने गये अर्थात् कवि ने अशुभ को अर्थान्तर से शुभ सूचित किया। यही अयुक्त-युक्त अर्थान्तरन्यास है।

(नोट)—अर्वाचीन आचार्य ऐसा कोई अलंकार नहीं मानते। इनकी सम्मति से इसमें 'तुल्य योगिता' अलंकार सा दिखाई पड़ता है।

(पुनः)

मूल—आगे ह्वै लेइबो है, जु चितै इत, चौंकि उतै दृग ऐंचिलई है।
मानिबे को वहई प्रतिउत्तर, मानिये बात, जु मौनमई है॥
रोष की रेख, वहै रस की रुख, काहे को केशव छांड़ि दई है।
नाहिंयै हां, तुम नाहीं सुनी, यह नारि नईन की रीति नई है॥७४॥

शब्दार्थ—दृग = दृष्टि। रोष की रेख = भौंहें सकोड़ना और मस्तक पर रेखा पड़ना।

भावार्थ—कोई प्रौढ़ा दूती अभिज्ञ नायक से कहती है कि तुमने नाहक उसे (नायिका को) पकड़ कर छोड़ दिया, तुमने नहीं सुना कि नवीन स्त्रियों की नई रीति होती है। उसने जो तुम्हारी ओर देख कर चौंककर दृष्टि उधर फेर ली यही उसका तुम्हें आगे आकर लेना (स्वागत) है, मेरी बात मानिये (जो मैं कहती हूं उसे सत्य समझिये कि) तुम्हारे प्रस्ताव की स्वीकृत का यही उत्तर था जो वह मौन होगई। उसने क्रुध होकर भौंहें चढ़ाई रोष की रेखा दिखाई, यही उसकी रसिकता है (ये यद्यपि अयुक्त क्रियाएं हैं, तो भी तुम्हारे लिये यही शुभ थी, तुमने व्यर्थही उसे छोड़ दिया)

(व्याख्या)—देखकर दृष्टि फेरलेना, कुछ उत्तर न देना, रोष प्रगट करना, बुरी बातें हैं, पर कबि अर्थान्तर से उन्हें अच्छी बताता है, यही अयुक्त-युक्त अर्थान्तरन्यास है।

४—(युक्त-अयुक्त अर्थान्तरन्यास)

मूल—इष्टै बात अनिष्ट जहँ कैसे हू ह्वै जाय।
सोई युक्त अयुक्त कहि बरणत कबि सुख पाय॥ ७५॥

(यथा)

मूल-शूल से फूल, सुबास कुबास सी, भाकसी से भये भौन सभागे।
केशव बाग महाबन सो, ज्वर सी चढ़ी जोन्हि सबै अँग दागे॥
नेह लगो उर नाहर सो, निसि नाह घरीक कहूं अनुरागे।
गारी से गीत, बिरी बिष सी, सिगरेई सिंगार अँगारसे लागे।७६॥

शब्दार्थ—भाकसी = भट्ठी। सभागे = सुन्दर। जोन्हि = चांदनी। दागे = दग्ध कर दिये।

भावार्थ—गत रात्रि को, पति एक घड़ी भर के लिये कहीं रुक गया तो नायिका को सब सुख सामग्री दुख दायिनी होगई। (शेष अर्थ सरल ही है)

(व्याख्या)—कबि अपनी युक्ति से अर्थान्तर करके सुखद वस्तु को दुखद ठहराता है। यही-युक्त-अयुक्त अर्थान्तरन्यास है।अब ऐसा कोई अलंकार नहीं माना जाता।

(पुनः)

(ठीक नं० ७३ का बिरोधी भाव)

पाप की सिद्धि, सदा ऋण बृद्धि, सुकीरति आपनी आप कही की।
दुःख को दान जु, सूतक न्हान जु, दासी की संतति संतत फीकी॥

बेटी को भोजन, भूषण रांड़ को, केशव प्रीति सदा पर ती की।
युद्ध में लाज,दया अरि की,अरु बाम्हन जाति सों जीति न नीकी॥

शब्दार्थ—आप कही की=अपने मुख से कही हुई। पर ती= पर स्त्री। 'न नीकी' का अन्वय सब बातों के साथ जानो।

भावार्थ—सिद्धि अच्छी वस्तु है पर पाप की सिद्धि अच्छी नहीं, बृद्धि अच्छी है पर ऋण की नहीं, कीर्ति सुनना अच्छी बात है पर अपने मुँह से नहीं, दान देना अच्छा है पर दुःख का दान नहीं, इत्यादि अंत तक समझिये।

(व्याख्या)—सिद्धि, बृद्धि, कीर्ति, दान, स्नानादि अच्छी वस्तुएं हैं, पर युक्ति विशेष से अर्थान्तर करके बुरी ठहराई गई हैं। अतः युक्त-अयुक्त अर्थान्तरन्यास है।

(नोट)—हाल के आचार्य इसे 'तुल्य योगिता' कहेंगे।

१९-(व्यतिरेकालंकार)

मूल—तामें आनै भेद कछु, होयँ जु बस्तु समान।
सो ब्यतिरेक सुभांति द्वै, युक्ति सहज परमान॥ ७८॥

भावार्थ—बराबर वाली दो वस्तुओं में कुछ भेद दिखलाना व्यतिरेक है। यह दो प्रकार का है—(१) युक्तिव्यतिरेक, (२) सहज व्यतिरेक।

१—(युक्ति व्यतिरेक)

मूल—सुन्दर सुखद अति अमल सकल विधि,
सदल सफल बहु सरस संगीत सों।
बिबिधि सुबास युत केशोदास आसपास,
राजै द्विजराज तनु परम पुनीत सों।

फूले ही रहत दोऊ दीबे हेत प्रति पल,
देत कामनानि सब मीत हू अमीत सों।
लोचन बचन गति बिन, इतनो ई भेद,
इंद्रतरुवर अरु इन्द्र इन्द्रजीत सों ॥ ७९ ॥

(नोट)—इस छन्द में केशव ने कमाल कर दिखाया है। राजा इन्द्रजीत की समता इन्द्रतरुवर (कल्पवृक्ष) से और इन्द्र से की है और व्यतिरेक से दोनों के साथ भिन्नता भी दिखाई है। कवित के तीन चरणों में ऐसे श्लिष्ट शब्द रखे हैं जो तीनों पर लगते हैं, पुनः चौथे में भिन्नता दिखाई है।

(कल्पवृक्ष और इन्द्रजीत)

भावार्थ—दोनों सुन्दर और सुखद हैं, कल्पवृक्ष सब प्रकार निर्दोष है—राजा के सब राज्य नियम अति निर्दोष हैं। कल्पवृक्ष पत्ते और फल सहित है—राजा सेनायुक्त है और सरस संगीत विद्या में पारंगत है। कल्पवृक्ष अपने आस पास तरह तरह की सुगंध फैलाता है—राजा विविध प्रकार के वस्त्र (वास) पहने हैं और दासों से घिरे हुए हैं। कल्पवृक्ष पर सुन्दर पक्षी बैठे हैं-राजा के पास ब्राह्मण हैं, दोनों का तन परम पुनीत है। प्रतिक्षण दोनो ही देने के लिये उत्साहित रहते हैं, दोनों शत्रुमित्र की कामना पूर्ण किया करते हैं, पर भेद इतना है कि कल्पवृक्ष के लोचन नहीं हैं, वह बोल नहीं सकता और चल नहीं सकता—राजा में ये तीनो बातें अधिक हैं।

(इन्द्र और इन्द्रजीत)

शब्दार्थ—(इन्द्रपक्ष का)—सुन्दर = महादेव। सुखद = विष्णु।

अति अमल सकल = अतिनिर्मल कलावान चन्द्रमा। बिधि = ब्रह्मा। सदल = सुरसेना सहित। सफल = चारो फल प्राप्त हैं जिसे। बहु सरस संगीत सों = संगीत सुनने के बड़े शौकीन हैं। विविधि सुबास युत = विविधि प्रकार के वस्त्रों सहित हैं। केशोदास = नारायण के दास हैं। आस पास राजैं द्विजराज = ब्राह्मणों ऋषियों से घिरे हुए हैं। (राजा पक्ष का) विधि = राजकाज विधि। सफल बहु सरस संगीत सों = संगीत कला में पारंगत है।

(भेद यह है)

लोचन = इन्द्र के हजार लोचन, राजा के दो।
बचन = इन्द्र देवभाषा बोलते हैं, राजा नर भाषा।
गति = इन्द्र आकाश में विचरते हैं, राजा पृथ्वी पर चलता है।

भावार्थ—इन्द्र और राजा इन्द्रजीत दोनों बराबर हैं, क्योंकि इन्द्र शिव, विष्णु, चंद्रमा, ब्रह्मा और सुर सेना सहित रहते हैं और राजा सुन्दर हैं प्रजा को सुखद हैं, राजविधान (कानून) में अति निर्दोष हैं। इन्द्र को चारो फल प्राप्त हैं और संगीत के परम रसिक हैं—राजा स्वयं संगीत कला में पारंगत है, दोनो विविध प्रकार के वस्त्र धारण किये हैं, दोनो नारायण के दास हैं, दोनो ब्राह्मणों से घिरे रहते हैं, दोनो के तन परम पुनीत हैं, दोनो हर समय बरदान देने को उत्साहित रहते हैं, दोनो मित्र शत्रु की कामनाएं पूर्ण करते हैं, पर दोनों में भेद इतना है कि इन्द्र सहस्र लोचन हैं—राजा युग लोचन हैं, इन्द्रदेवभाषा बोलते हैं, राजा नरभाषा, और इन्द्र नभगामी है, राजा धराचारी हैं। इन तीन बातों के सिवाय (बिन) दोनो सब तरह से बराबर हैं।

(नोट)—इसमें केशव ने श्लेष से बड़ा उत्तम काम लिया है। दो कवित्तों का मज़मून एक ही छंद से अदा किया है। इसी से इसका 'युक्तिव्यतिरेक' नाम है। ऐसी योग्यता का छंद हमने किसी दूसरे कवि का नहीं देखा।

२—(सहज व्यतिरेक)

मूल—गाय बराबरि धाम सबै धन जाति बराबर ही चलि आई।
केशव कंस दिवान पितान बराबर ही पहिरावनि पाई।
बैस बराबरि दीपति देह बराबर ही बिधि बुद्धि बड़ाई।
ये अलि आजु ही होहुगी कैसे बड़ी तुम आंखिन ही कीबड़ाई ।८०

भावार्थ—दोनों के यहां गायें बराबर हैं, घर, धन और जाति सदा से समान ही रहे, कंस के दरबार से तुम दोनों के पिताओं को बराबरी का सिरोपाव (खिलअत) मिला है। बैस भी बराबरी की है, अंगदुति भी बराबर है, विधि (कर्म कांड, संस्कारादि) बुद्धि और प्रतिष्ठा भी दोनों कुलों की समान ही है, फिर आज तुम केवल बड़ी आंखों वाली होने से कैसे उनसे (नायक से) बड़ी हो जाओगी?

(व्याख्या)—और सब बातों में बराबरी है, केवल नायिका की आंखें नायक की आखों की अपेक्षा कुछ बड़ी है, यही भेद है।

२०—(अपह्नुति अलंकार)

मूल—मन की बात दुराय मुख, औरै कहिये बात।
कहत अपह्नुति सकल कबि, ताहि बुद्धि अवदात ॥८१॥

(यथा)

मूल-सुंदर ललित गति बलित सुबास अति,
सरस सुवृत्त मति मेरे मन मानी है
अमल अदूषित सुभूषननि भूषित,
सुबरण, हरनमन, सुर सुखदानी है।
अंग अंग ही को भाव, गूढ भाव के प्रभाव,
जानै को सुभाव रूप रुचि पहिचानी है।
केशोदास देवी कोऊ देखी तुम? नाहीं राज,
प्रगट प्रवीनराय जू की यह बानी है ॥ ८२ ॥

(नोट)—इस अलंकार में मन की बात छिपाकर बहाने के लिये कोई और बात कही जाती है, अतः दोनों में समता होना ज़रूरी है। यह समता श्लिष्ट विशेषणों द्वारा ही आ सकती है, अतः इस अलंकार का बड़ाभारी सहायक श्लेष अलंकार है। इस छंद में भी यही बात है। केशव कृत तीन चरणों का वर्णन सुनकर राजा इन्द्रजीत पूंछने हैं कि क्या तुमने किसी देवी को देखा है (अर्थात् वह वर्णन राजा को देवी का सा जान पड़ा) तब केशव कहते हैं कि नहीं राजा जी ! जिसका वर्णन मै कर रहा हूं वह प्रवीणराय की बाणी है। अतः प्रथम तीन चरणों में ऐसे शब्द लाये गये हैं जिनका अर्थ देवी और प्रवीणराय की बाणी दोनों पर समान रीति से घटित हो सके।

शब्दार्थ—(देवी पक्ष)—ललित गति बलित = सुन्दर चाल वाली। सुबास = सुन्दर वस्त्र वाली। सुवृत्त = शुभ चरित्र वाली। अंग अंग ही को भाव = उसके अंग अंग से हृदय का

दिव्य भाव प्रगट होता है। गूढ़भाव…पहिचानी है = अन्य लोगों के गुप्त भावों का तात्पर्य जानने का स्वभाव उसके चेहरे की चमक से पहिचाना जाता है (उसके चेहरे से यह बात प्रगट होती है कि वह दूसरे का मनोगत भाव जान जाती है)

(प्रवीणराय की बाणी पक्ष में)—ललित गति बलित = जैसे ललित रागिनी के बोल हों। सुबास = बोलते समय मुख से सुगंध छूटती है। सुवृत्त मति = सुन्दर छंद सी (मति = मतिन = समान)। सुभूषननि भूषित = सुन्दर अलंकारों वाली। सुबरण = मधुर वर्ण वाली। सुर सुखदानी = सातो सुरों को सुख देने वाली। अंग अंग ही को भाव = उस बाणी को बोलते समय शब्द शब्द से हृदय का भाव प्रगट होता है (जो यथार्थ सत्य है)। गूढ़भाव = गुप्त तात्पर्य। जानै को = कौन समझ सकता है (अर्थात् ऐसे गूढ़ व्यंग भरी बाणी होती है जिसे साधारण जन समझ नहीं सकते)। रूपरुचि पहिचानी है = मैं तो उसके चेहरे की चेष्टाओं से उस बाणी की भावोत्पादकता को पहचानता हूं।

भावार्थ—(देवी पक्ष का)—वह रूपवती है, सुन्दर चालवाली है, सुन्दर वस्त्र पहने है, अति रसीली और सुचरित्रा तथा बुद्धिमती है, मेरे मन को खूब पसंद आई है, निर्मल है, अदूषित है, सुन्दर भूषणों से भूषित है, सुन्दर रंगवाली है, देवताओं का मन हरण करने वाली है (मनुष्यों की बात ही क्या) और सुखदा है। उसके अंग अंग से हृदय का दिव्य भाव प्रगट होता है। अन्य लोगों के गुप्तभावों का तात्पर्य जानने का स्वभाव उसके चेहरे की चमक से पहिचान पड़ता है (कि वह अंतरयामिनी है)

(बाणी पक्ष का)—प्रबीणराय की बाणी सुन्दर है, ललित रागिनी के बोलों से युक्त है, बोलते समय मुह से सुगंध निकलती है (इससे बाणी सुगंधित जान पड़ती है) अति रसीली है, जैसे छंद पढ़ रही हो, मेरे मन को बहुत पसंद है। वह बाणी शुद्ध है, ब्याकरणानुसार कोई दूषण उसमें नहीं है, अलंकार युक्त है, उस बाणी में मधुर मृदु बर्णों का ही प्रयोग है, मनहरणी है, यहां तक कि सातो सुरों (स, रि, ग, म, प, ध, नि) को भी सुख देने वाली है। उस बाणी के शब्द शब्द से हृदय का भाव टपकता है उस बाणी के गूढ़ ब्यंगभाव को कौन जान सकता है, मैं तो प्रबीणराय के चेहरे की चेष्टाओं से उसकी बाणी की प्रभावोत्पादकता को पहचानता हूं (नहीं तो मैं भी न समझ सकता)

(पुनः)

मूल कारे सटकारे केश, लोनी कछु होनी बैस,
सोने तें सलोनी दुति देखियत तन की।
आछे आछे लोचन, चितौनि औ चलनि आछी,
सुखमुख कविता बिमोहै मति मन की।
केशोदास कहूं भाग पाइये जो बाग गहि,
साँसनि उसासैं साध पूजै रति रन की।
बेटी काहू गोप की बिलोकी प्यारे नंद लाल ?
नाहीं लोललोचनी ! बड़वा बड़े पन की ॥ ८३ ॥

(नोट)—इसमें भी वही बात समझिये जो छंद नं० ८२ के नोट में लिख आये हैं। कृष्णजी एकांत में किसी गोपकुमारी

की प्रशंसा किसी अंतरंग सखा से कर रहे थे, राधिका ने सब बातें सुनलीं। पूछा कि किस गोपकुमारी का रूपवर्णन हो रहा है। तब कृष्ण ने बात छिपा कर कहा कि मैं तो एक बड़े मोलवाली घोड़ी की बात कह रहा हूं।

शब्दार्थ—(गोपकुमारी पक्ष)—सटकारे = लंबे। लोनी = सुन्दर। होनी वैस = होनहार। सलोनी = अधिक अच्छी। सुख मुख = सुखद मुख वाली। पाइये जो बाग गहि = जो कभी बाग में पकड पाऊं। साध = इच्छा। (घोड़ी पक्ष)—केश = केशर (गर्दन पर के बाल) अयाल के बाल। सोने तें सलोनी दुति = चंपई रंग की। सुख मुख = मुंह की मुलायम अर्थात् मुंहजोर नहीं है। कविता = (कबिका) लगाम का आवाज़ (बहुधा घोड़े लगाम चबाया करते हैं, उससे कुछ शब्द होता है, उसी शब्द के अर्थ में केशव ने इस शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि संस्कृत में 'कव' का अर्थ है दांत चबाकर शब्द करना—"कवते, दन्तेन शब्दायते"। पाइये जो बाग गहि = जो उसकी बाग पकड़ पाऊं। साँसनि उसासै = एक सांस में, एक दम भर में। रति रन की = रण की प्रीति। बड़वा = घोड़ी। पन = मोल।

भावार्थ—सरलता से लग सकता है।

(ग्यारहवां प्रभाव समाप्त)

बारहवाँ प्रभाव

२१—(उक्ति अलंकार)

मूल—बुद्धि बिबेक अनेक बिधि, उपजत तर्क अपार ।
तासों कबि कुल उक्ति कहि, वर्णत विविध प्रकार ॥१॥

(भेद)

मूल वक्र, अन्य, व्याधिकरण कहि, और विशेष समान ।
सहित सहोकति मैं कही, उक्ति सुपंच प्रमान ॥२॥

भावार्थ—केशव ने पांच प्रकार की उक्तियां बताई हैं ।

१—(बक्रोक्ति)

मूल—केशव सूधी बात में, बरणत टेढ़ो भाव ।
वक्रोकति तासों कहै, सही सबै कबिराव ॥३॥

भावार्थ—शब्द सीधे सादे हों, पर तात्पर्य में गूढ़ व्यंग हो, सो वक्रोक्ति ।

(यथा)

मूल—

ज्यौ ज्यौं हुलास सों केशवदास विलास निवास हिये अवरेख्यो ।
त्यौ त्यौं बढ़ो उर कंप कछू भ्रम भीत भयो किधौं सीत विशेष्यो ॥
मुद्रित होत सखी बर ही मम नैन सरोजनि सांच कै लेख्यौ ।
तैं जु कह्यौ मुख मोहन को अरविंद सो है सो तो चंद सो देख्यौ ॥४॥

शब्दार्थ—विलास निवास = कृष्ण, व्यंग से पर स्त्री विलासी। कंप = सात्विक भाव, व्यंग यह कि क्रोध से। मुद्रित होत = मुँदे जाते हैं। बर ही = बल ही, बल पूर्वक। अरविंद सो है = कमल सम शीतकर है, व्यंग से दाहक है। चंद सो = शीतल, व्यंग से कलंकित।

भावार्थ—(सीधा सादा)—खंडिता बचन सखी प्रति। ज्यौं ज्यौं उमंग पूर्वक मैने कृष्ण को हृदय के नेत्रों से देखा, त्यों त्यों मुझे अधिक कंप हुआ, न जाने मेरे हृदय को कुछ भ्रम हुआ, था डर गया या विशेष सरदी लग गई। मेरे नेत्रकमल बरबस मुँदे जाते हैं, इन्होंने तेरा कहना सच मान लिया था, तूने कहा था कि कृष्ण का मुख कमल सम है (नेत्रों ने समशील मान कर सुख की आशा की थी सो) कृष्ण का मुख तो चंद्रमा सा है (जिस से मेरे नेत्र कमल मुँदे जाते हैं)।

(व्याख्या)—व्यंग से वक्रोक्ति यह निकली कि कृष्ण पर स्त्री विलासी हैं, उन्हें देखकर मुझे क्रोध हुआ, मैने उनकी ओर से आंखें मूंद ली उनका मुख चंद्र सम कलंकी है, अन्य स्त्री के कज्जलादि के चिन्ह उनके मुख पर हैं।

(पुनः)

मूल—अंग अली धरिये आँगियाऊ न आजु तें नींद न आवन दीजै।
जानति हौं जिय नाते सखीन के लाजहू को अब साथ न लीजै ॥
थोरेहि द्यौस तें खेलन तेऊ लगीं उनसों जिन्हैं देखि कै जीजै।
नाहके नेह के मामिले आपनी छाहँहु की परतीति न कीजै ॥५॥

शब्दार्थ—द्यौस = दिवस, दिन। तेऊ = वे भी (सखीगण) उनसों = उनके साथ (मेरे पति के साथ)। जिन्हैं देख कै

जीजै = जिन्हें देख देखकर मैं जीवन धारण किये हूं (जिन्हें मैं प्यार करती हूं अर्थात् सखीगण)। मामिला = बारे में, संबंध में। परतीति = बिश्वास।

(नोट)—कोई सखी नायक से रति केलि कर आई है। उसके अंग में रतिचिन्ह देखकर नायिका (अन्य संभोग दुःखिता) उसी सखी से गूढ व्यंग द्वारा अपना क्रोध प्रगट करती है। अँगिया, नींद, लाज इत्यादि भी स्त्री लिंग हैं, अतः नायिका कहती है कि:—

भावार्थ—हे सखी! ऐसा जी चाहता है कि आज से अँगिया न पहनूं और नींद को भी पास न आने दूं और सखी के नाते से लज्जा को भी अपने साथ न रखूं, (ये वस्तुएं भी स्त्री ही हैं और मेरे साथ साथ पति के पास तक जा सकती हैं, मुझे भय है कि कहीं ये भी मेरे पति को अपना उपपति न बनालें) क्योंकि मैं देखती हूं कि थोड़े दिनों से वे भी, जिन्हें मैं अति प्यार करती हूं, मेरे पति के साथ खेल करने लगी हैं (खेल शब्द रतिक्रीड़ा का द्योतक है) अतः मैंने तो यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि पतिप्रेम के बारे में अपनी छाया का भी विश्वास न करना चाहिये।

(व्याख्या)—गूढ़ व्यंग से अपना कोप प्रदर्शित करती है और उस सखी को कलंकित प्रमाणित करती है कि तेरी अंगिया फटी है, तू रात भर सोई नहीं उनींदी जान पड़ती है, निर्लज्ज है तेरे नखच्छत और अधरच्छत प्रत्यक्ष दीखते हैं, रतिरण मर्दिता होने से तेरी अंगप्रभा छायावत् मलीन है। शब्द तो सीधे सादे हैं, पर उक्ति बड़ी बक्र है। अतः बक्रोक्ति है।

२—(अन्योक्ति)

मूल—औरहि प्रति जु बखानिये, कछू और की बात ।
अन्य उक्ति तेहि कहत हैं, बरनत कबि न अघात ॥ ६ ॥

दल देख्यो नहीं जड़ जाड़ो बड़ो अरु घाम घनो जल क्यों हरिहै।
कहि केशव बायु बहै दिन दाव दहै धर धीरज क्यों धरिहै ॥
फलिहै फुलिहै नहिं तौलौ तुही कहि तो पहँ भूख सही परिहै ।
कछु छांह नही सुख सोभ नहीं, रहि कीर करीर कहा करिहै ॥७॥

शब्दार्थ—दल = पत्ते । क्यों हरि है = कैसे निवारण करैगा । दाव = दावाग्नि । धर = शरीर । सही परिहै = सही जायगी । सोभ = शोभा । कीर = शुक । करीर = (करील) एक कँटीली झाड़ी विशेष जिसमें पत्ते नहीं होते । यह झाड़ी यमुना तटस्थ स्थानों में बहुत होती है । इसे टेंटी और कैर भी कहते हैं ।

(नोट)—प्रत्यक्ष में तो ज्ञानी करीर पर बैठे हुए शुक से कहता है, पर वास्तव में यह उपदेश किसी ऐसे व्यक्ति प्रति है जो किसी सम्पत्तिहीन राजा की सेवा कर रहा है । ऐसे ही कथन को अन्योक्ति कहते हैं ।

भावार्थ—पत्र तो इसमें कभी देखे नहीं गये, हे जड़ शुक ! कड़ा जाड़ा, घाम और बर्षा यह कैसे निबारण करैगा । प्रति दिन हवा चलैगी, कभी दावाग्नि जलैगी तब तेरा शरीर कैसे धीरज धरैगा । तूही, बतला कि जब तक यह फूलै फलैगा नहीं, तब तक भूख तुझसे सही जायगी । न तो कुछ छाया है, न सुख है न शोभा है, हे कीर ! इस करील वृक्ष के आश्रय में रहकर तू क्या करैगा ?

३—(व्यधिकरणोक्ति)

मूल—औरहि में कीजै प्रगट औरहि को गुण दोष।
उक्ति यहै व्यधिकरण की सुनत होत संतोष ॥ ८ ॥

भावार्थ—और का गुण वा दोष और में प्रगट करना व्यधिकरणोक्ति है।

(यथा)

मूल—जानु, कटि, नाभिकूल, कंठ, पीठि, भुजमूल,
उरज करजरेख रेखी बहु भांति है,
दलित कपोल, रद ललित अधर रुचि,
रसना रसित रस, रोस में रिसाति है ॥
लेटि लेटि लौटि पौटि लपटाति बीच बीच,
हां हां, हूँ हूँ नेति नेति बाणी होत जाति है।
आलिंगन अंग अंग पीड़ियत पद्मिनी के,
सौतिन के अंग अंग पीड़नि पिराति है ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—करजरेख=नखरेखा। रसना रसित रस=जीभ से 'सीसी' के स्वाद का आस्वादन करती है। लौटि पौटि=उलट पलट कर। नेति नेति=ऐसा न करो, न मानोगे। पीड़नि=मर्दन, पीड़ा।

(नोट)—रति का वर्णन है, पाठक स्वयं समझ लें।

(व्याख्या)—रति कष्ट पड़ता तो है नायिका पर पर उसके मर्दित होने की पीड़ा (द्वेष से) सवति के अंग में पीड़ा पैदा करती है। नायिका का दोष सवति में वर्णन किया गया।

(पुनः)

मूल—राजभार, रजभार, लाजभार, भूमिभार,
भवभार, जयभार नीके ही अटतु हैं।
प्रेमभार, पनभार, केशव संपत्ति भार,
पतिभार युत अति युद्धनि जुटतु हैं॥
दानभार, मानभार, सकल सयान भार,
भोगभार, भागभार घटना घटतु हैं।
एते भार फूल सम राजैं राजा राम सिर,
तेहि दुख शत्रुन के शीरष फटतु हैं॥ १०॥

शब्दार्थ—रजभार=रजपूती (क्षत्रीपन) का भार। भवभार=संसार की उन्नति का भार। नीके ही अटतु हैं=अच्छी तरह लिये फिरते हैं। पन=प्रतिज्ञा। पति=प्रतिष्ठा। जुटतु हैं=भिड़जाते हैं। घटना घटतु हैं=काम करते हैं। शीरष=सिर।

भावार्थ—सरल ही है।

(व्याख्या)—भार हैं राजा राम के सिर पर और बोझ से सिर फटते हैं शत्रुओं के। दूसरे के गुण से दूसरे को दोष वर्णन किया।

(पुनः)

मूल—पूत भयो दशरत्थ को केशव देवन के घर बाजी बधाई।
फूलि कै फूलन को बरषैं, तरु फूलि फले सबही सुखदाई॥
क्षीर बहीं सरिता सब भूतल, धीर समीर सुगंध सुहाई।
सर्वसु लोग लुटावत देखि कै दारिद देह दरार सी खाई॥११

(व्याख्या) पहले तीन चरणों में दूसरे के गुण से दूसरे को गुण वर्णन है-अर्थात् पुत्र हुआ, दशरथ के बधाई बजी देवताओं के घर और उन्हीं ने आनंदित होकर फूल वरसाये, पेड़ फूले फले, नदियां आनंदित होकर छीर की धारा बहाने लगीं (अर्थात् पुत्र हुआ कौशल्या के, और दूध भर आया नदियों के स्तनों में), वायु सुगंधित होगई। चौथे चरण में दूसरे के गुण से दूसरे को दोष वर्णन है। दान करते हैं लोग और छाती फटती है दरिद्र की।

(नोट)—उदाहरणों के अनुसार इस अलंकार को हाल के आचार्य असंगति अलंकार मानेंगे।

(पुनः)

मूल-होय हँसी औरानि सुने, यह अचरज की बात।
कान्ह चढ़ावत चंदनहि, मेरो हियो सिरात ॥ १२ ॥

भावार्थ—यह अचरज की बात सुनकर अन्य लोगों को हँसी आवेगी कि चंदन तो लगाते हैं श्री कृष्ण जी और ठंढा होता है मेरा कलेजा।

(पुनः)

मूल—दिये सोनारन दाम, शाबर को सोनो हरो।
दुख पायो पतिराम, प्रोहित केशव मिश्र सों ॥ १३ ॥

भावार्थ—पतिराम सोनार ने तो रनिवास का सोना चोराया और अन्य सब सोनारों को (दण्डरूप में) उसका मोल देना पड़ा। राजा इन्द्रजीत का बड़ा हित (प्रोहित=प्र + हित) है तो केशव मिश्र पर, पर दुखी होता है पतिराम सोनार [कि मुझपर इतनी कृपा क्यों नहीं है]

४—(विशेषोक्ति)

मूल—विद्यमान कारण सकल, कारज होय न सिद्ध ।
सोई उक्ति बिशेष मय, केशव परम प्रसिद्ध ॥१४॥

भावार्थ—पुष्ट कारण रहते हुए भी कार्य सिद्ध न हो। यह बिशेषोक्ति है।

(यथा)

मूल—कर्ण से दुष्ट ते पुष्ट हुने भट पाप औ कष्ट न शासन टारे।
सोदर सैन कुयोधन से सब साथ समर्थ भुजा उसकारे ॥
हाथी हजारन को बल केशव ऐंचे थको पट को डर डारे।
द्रौपदि को दुहसासन पै तिल अंग तऊ उघर्यो न उघारे॥१५॥

शब्दार्थ—भुजा उसकारे=बाहें चढ़ाये। कुयोधन=दुर्योधन। डर डारे=भय छोड़कर।

भावार्थ—कर्ण ऐसे दुष्ट से भी अधिक पुष्ट भट सहायतार्थ वहां मौजूद थे, पाप और कष्ट भी जिसका शासन मानते थे, दुर्योधन ऐसे सामर्थवान भाइयों की सेना (समूह) बाहें चढ़ायें साथ थी, हजारों हाथी का बल था, निर्भय होकर बस्त्र खींच रहा था, पर तो भी दुःशासन द्रौपदी का तिलमात्र भी अंग न उघार सका।

(पुनः)

मूल—सिखै हारी सखी डरपाय हारी कादंबिनी,
दामिनि दिखाय हारी दिसि अधरात की।
झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हार्‍यौ मार,
हारी झकझोरति त्रिविध गति बात की॥

दई निरदई दई वाहि ऐसी काहे मति,
जारति जु ऐन रैन दाह ऐसे गात की।
कैसे हू न मानै हो मनाइहारी केशोराय,
बोलिहारी कोकिला बोलायहारी चातकी ॥१६॥

शब्दार्थ—कादंबिनी = मेघमाला, घटा। दिसि = जिस ओरजाना है। अधरात की = आधीरात की बेला। भुकना = क्रुद्ध होना। बात की त्रिविधिगति = शीतल, मंद, सुगंध वायु।

भावार्थ—सरल ही है। उद्दीपन के प्रबल कारण मौजूद हैं, पर मानिनी ने मान नहीं छोड़ा—इसी की रिपोर्ट कोई सखी नायक से करती है।

(पुनः)

मूल—कर्ण कृपा द्विज द्रौण तहां जिनको पन काहू पै जात न टारो।
भीम गदाहि धरे धनु अर्जुन, युद्ध जुरे जिनसों यम हारो ॥
केशवदास पितामह भीषम मीचु करी बश लै दिसि चारो।
देखत ही तिनके दुरयोधन द्रौपदी सामुहें हाथ पसारो ॥१७॥

भावार्थ—बड़े बड़े प्रबल कारण मौजूद थे, पर कोई दुर्योधन को रोक न सका उसने द्रौपदी के पकड़ने को हाथ फैला ही दिया।

(पुनः)

मूल—वेई हैं बान विधान निधान अनेक चमू जिन जेर हई जू।
वेई हैं बाहु बहै धनु धीरज दीह दिसा जिन युद्ध जई जू ॥

वेई हैं अर्जुन आन नहीं जग में यश की जिन बेलि बई जू।
देखत ही तिन के तब कोलनि नेकहिं नारि छिनाइ लई जू॥१८॥

शब्दार्थ—हई = मारी। जई = जीत ली। कोल = भील। नेकहिं = थोड़ी देर में।

भावार्थ—सरल है। (नोट) इसमें उस घटना का वर्णन है जब अर्जुन कृष्ण के परिवार की स्त्रियों को हस्तिनापूर लिये जाते थे, रास्ते में भीलों ने स्त्रियां छीन लीं और अर्जुन कुछ न कर सके।

(पुनः)

मूल–तुला–तोल–कसवान बनि कायथ लिखत अपार।
राख भरत पतिराम पै सोनो हरति सुनार॥१९॥

(नोट)—इसमें 'वान' शब्द का अन्वय तुला और तोल के साथ भी समझो अर्थात् तुलावान, तोलवान और कसवान समझना चाहिये।

शब्दार्थ—तुलावान = कोई कायस्थ तौलने का तराजू अपने पास रखता है।

तोलवान = कोई कायथ तौल वाले बांट अपने पास रखता है, ताकि पतिराम सोनार बांट बदल न दे।

कसवान = कोई कायथ कसौटी (कष = कसौटी) अपने पास रखता है कि ज़ेवर बन जाने पर कष रेखा की परख करले।

सुनार = (स्वनारि) पतिराम की स्त्री।

(नोट)—कूड़ा साफ करने के बहाने दूकान की राख पतिराम की स्त्री उठा ले जाया करती थी। पतिराम सोनार चोराया

हुआ सोना उसी में मिला दिया करता था। इस तरह वह सोना उसके घर पहुँच जाता था।

भावार्थ—कोई तुलावान, कोई तौलवान और कोई कषवान बनकर अनेक कायस्थ पतिराम की निगरानी करते हैं, पर तो भी राख भरते समय पतिराम की स्त्री सोना चोरा ले जाती है।

(सूचना)—पतिराम सोनार के संबंध में प्रभाव ९ में छंद २९ का नोट देखो।

५—(सहोक्ति)

मूल-हानि बृद्धि शुभ अशुभ कछु कहिये गूढ़ प्रकास।
होय सहोक्ति सु साथही बरणत केशवदास ॥ २० ॥

भावार्थ—जहां किसी वस्तु की कमी बढ़ी, शुभ वा अशुभ गुण वा गुप्त तथा प्रगट होना वर्णन करना हो, तो उसके साथ एक और घटना का भी उल्लेख कर दिया जाय, उसको सहोक्ति कहते हैं।

(यथा)

मूल-शिशुता समेत भई मंदगति चरनानि,
गुणन सों बलित ललित गति पाई है।
भौंहन की होड़ा होड़ी ह्वै गई कुटिल अति.
तेरी बानी मेरी रानी सुनत सुहाई है॥
केशोदास मुख हास हिसखै ही कटितट,
छिन छिन सूछम छबीली छबि छाई है।

बारबुद्धि बारन के साथ ही बढ़ी है बीर,
कुचनि के साथही सकुच उर आई है ॥२१॥

शब्दार्थ—बलित = युक्त। होड़ा होड़ी = स्पर्द्धा में। हिसखा = स्पर्द्धा, बराबरी की इच्छा। बार बुद्धि = बालकपन की बुद्धि, भोलापन। बार = केश। सकुच = लज्जा।

भावार्थ—लड़कपन सहित चरणों की चंचलता मंद पड़गई (लड़कपन भी मंद पड़ा है और साथ ही साथ चरणों की चंचलता भी मंद पड़ी है) और पैरों में गुण सहित सुन्दर चाल आगई है। बाणी सहित भौंहैं भी टेढी हो गईं (भौंहैं भी टेढ़ी हुई हैं और साथ ही बाणी में भी बाँकपन आगया है)। हास्य की स्पर्द्धा करते हुए कमर भी पतली हो गई है, बाल बढ़े हैं और साथ ही बुद्धि भी बढ़ी हैं। कुचों के साथ ही सकुच भी बढ़ी है।

२२-२३—(ब्याजस्तुति निंदा)

मूल—स्तुति निंदा मिस होत जहँ, स्तुति मिस निंदा जान।
ब्याजस्तुति निंदा वहै, केशवदास बखान ॥२२॥

भावार्थ—निंदा द्यौतक शब्दों से जहां स्तुति निकलै वहां "निंद्याब्याज स्तुति" और स्तुति सूचक शब्दों से निंदा भासित है, वहां "स्तुतिब्याज निंदा" अथवा संक्षेप से 'ब्याजस्तुति' और ब्याजनिंदा कहते हैं।

(नोट)—नीचे लिखा उदाहरण ऐसा सुन्दर है कि इसी एक छंद में दोनों उदाहरण मिलजाते हैं। यह केशव का कमाल है। कृष्ण की निंदा और नायिका की स्तुति ब्याज से निकलती है।

(यथा)

मूल शीतल हू हीतल तुम्हारे न बसति वह,
तुम न तजत तिल ताको उर ताप गेहु ।
आपनो ज्यौं हीरा सो पराये हाथ ब्रजनाथ,
दै कै तो अकाथ साथ मैन ऐसो मन लेहु ।
एते पर केशोदास तुम्हैं परवाह नाहिं,
वाहै ज़क लागी भागी भूख सुख भूल्यो गेहु।
मांड़ो मुख छांड़ो छिन छल न छबीले लाल,
ऐसी तो गँवारिन सों तुमही निबाहौ नेहु ॥२३॥

भावार्थ—कोई दूती कहती है कि हे कृष्ण ऐसी गँवारिन से तुम नेह करते हो (यह तुम्हारे लिये बड़ी प्रशंसा की बात है)। तुम्हारे शीतल हृदय मे वह अपना बास नही बनाती, और तुम उसके तप्त हृदय में घर किये हुए हो (तुम्हारे हृदय में प्रेम की गरमी नहीं, उसको तुमने भुला दिया है और तुम उसके बिरह संतप्त हृदय में सदा बसते हो)। हे ब्रज-नाथ! अपना हीरा सम (बहुमूल्य) मन देकर व्यर्थ ही उसका मोम सम (कम क़ीमत का) मन लेते हो (तुम्हारा मन हीरा सा कठोर है उसका मन मोम सम मृदु है)। इतने पर भी तुम्हैं उस बहुमूल्य हीरा सम मन की कुछ पर-वाह नहीं है, और उसे अपने मोम सम मन के लिये ज़क लगी है (बारबार कहती है) कि कृष्ण मेरा मन ले गया और इसी चिंता में उसकी भूख भग गई है, सब सुख छूट गये हैं, यहां तक कि गृहकार्य भी भूल गये हैं (तुम्हैं कुछ

परवाह नहीं है और उसकी ऐसी बुरी हालत है)। मुख से तो वह बहुत कुछ प्रशंसा करती है पर क्षणमात्र के लिये भी कपट नहीं छोड़ती (तुम भी मुख से बहुत बातें बनाते हो पर छल नहीं छोड़ते), हे छबीले लाल (देखने में तो बड़े सुंदर हो पर हो छली); ऐसी गँवारिन से आपही प्रेम निबाहते हैं (ऐसी गँवारि न सो, तुम ही न बाहौ प्रेम = वह तो ऐसी गँवारी नहीं है तुमही हीन प्रेम हो)

(नोट)—कृष्ण की प्रशंसा से निंदा प्रगट है। और नायिका की निंदा से उसकी प्रशंसा ही लक्षित होती है।

(पुनः—व्याजस्तुति)

मूल--केसर कपूर कुंद केतकी गुलाब लाल,
सूंघत न चंपक चमेली चारु तोरी हैं।
जिनकी तू पासवान बूझियत, आसपास,
ठाढ़ीं केशोदास कीन्हीं भय भ्रम भोरी हैं॥
तेरी कौनो कृति किधौं सहज सुबास ही ते,
बसि गई हरि चित कहूं चोरा चोरी हैं।
सुनहि ! अचेत चित, आई यह हेत, नाहीं,
तोसी ग्वारि गोकुल गोबर हारी थोरी हैं॥२४॥

(विशेष)—कृष्ण किसी पद्मिनी पर आसक्त होकर अचेत पड़े हैं। कोई सखी उसके पास जाकर कहती है।

भावार्थ—जबसे कृष्ण ने तेरे शरीर की सुगंध पाई है तबसे वे अन्य सुगंध पुष्प सूंघते ही नहीं, सब कुंजें उन्होंने उजाड़ डालीं। जिनकी तू दासी सी जान पड़ती ऐसी सुन्दर स्त्रियां

उनके आस पास खड़ी हैं, परन्तु भय और भ्रम ने (कि यकायक कृष्ण की यह दशा कैसे हो गई और अन्तिम परिणाम क्या होगा) उन्हें बिमूढ़ कर रखा है—उन्हें नहीं सूझता कि वे क्या करें—तूने कोई जादू टोना किया है या अपनी सहज सुबास से ही, तू किसी प्रकार छिपे छिपे कृष्ण के मन में बस गई है, अतः सुन! वे अचेत चित पड़े हैं, इसी लिये मैं तेरे पास आई हूं, नहीं तो तेरे समान गोबरहारी नवला क्या ब्रज में थोड़ी हैं—अर्थात् थोड़ी नहीं बहुत हैं।

(नोट)—वास्तव में 'गोबरहारी' शब्द ही इस कबित्त की जान है। गोबरहारी=(१) गोबर उठाने वाली।
(२) गो=इन्द्रिय, बर=बल से, हारी=हरणकर्त्ता, अर्थात्=नेत्र, कर्ण, नासा, मन इत्यादि इंद्रियों को ज़बरदस्ती अपनी ओर खींचने वाली। थोरी हैं=हैं ही नहीं।

(पुनः श्लेष गर्भित व्याजस्तुति)

मूल—जानिये न जाकी माया मोहति मिलेहिं मांझ,
एक हाथ पुन्य एक पाप को विचारिये।
परदार प्रिय मत्त मातँग सुताभिगामी,
निशिचर को सो मुख देखो देह कारिये॥
आजलौं अजादि राखे बरद बिनोद भावै,
एते पै अनाथ अति केशब निहारिये।
राजन के राजा छांड़ि कीजतु तिलक ताहि,
भीषम सों कहा कहौं पुरुष न नारिये॥ २५॥

(नोट)—युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल के वचन कृष्ण के वास्ते। प्रगट तो निंदा है, पर श्लेष से स्तुति निकलती है।

शब्दार्थ—(निंदापक्ष) माया = छल। मिलेहिं माँझ = बीचही में। मातंग सुत अभिगामी = श्वपच भक्त के पास जाने वाला। अजादि = बकरे वगैरा। बरद = बैल।

भावार्थ—(भीष्म के कहने से कृष्ण को तिलक किया जाना निश्चय हुआ था, अतः शिशुपाल कहता है कि) यह कृष्ण ऐसा छली है कि इसका छल समझ में नहीं आता, इसका छल लोगों को बीचही में मोह लेता है—द्विविधा में डाल देता है। यह एक हाथ से पुन्य भी करता है और एक हाथ से पाप भी। पर दारा प्रिय है (कुचरित्र है), मतवारे मातंग (चांडाल) के पुत्र के पास आया जाया करता है। निशिचर का सा काला मुख है, देह भी काली है। अभी हाल के जमाने तक बकरियां चराता रहा, बैलों के साथ खेलना इसको भाता है (शिष्ट समाज में कभी रहा नहीं) इतने पर अति अनाथ है (एक बिस्वाभर भी जमीन का नाथ अर्थात् राजा नही है) बड़े बड़े राजाओं को छोड़ कर ऐसे कृष्ण को सर्वमान्यता का तिलक दिलवाने कहते हैं, मैं भीष्म को क्या कहूं वे तो न स्त्री हैं न पुरुष ही हैं (भीष्म को लोग नपुंसक भी कहा करते थे)।

शब्दार्थ—(स्तुति पक्ष)—परदार प्रिय = श्रेष्ठ दारा के प्रिय—लक्ष्मी पति। मातंग सुत अभिगामी = गजेन्द्र के पास जाकर उसकी रक्षा करने वाले। निशिचर = चंद्रमा। देहकारी = सब जीवों के शरीर को रचने वाला। अजादि = ब्रह्मादि

देवगण। बरद=बर देने वाला। बिनोद भावै=लीला करना अच्छा लगता है। अनाथ=जिसका नाथ कोई न हो—जो सर्वश्रेष्ठ हो। केशव=क्षीरसाई भगवान। पुरुष न नारिये=कृष्ण न पुरुष हैं न स्त्री अर्थात् ईश्वर हैं!

भावार्थ—(स्तुतिपक्ष)—कृष्ण साक्षात ईश्वर हैं, इनकी माया को कोई समझ नहीं सकता, वह सबको द्विविधा में डाल कर नचाया करती है, और ये कृष्ण एक हाथ से पुन्य कर्मों और दूसरे हाथ से पाप कर्मों को मिटाने का विचार रखते हैं—अर्थात् दासों के कर्म नाश करके मोक्ष देते हैं। लक्ष्मी पति हैं, गजेन्द्र के रक्षक हैं, चंद्रमा सा मुँह है, सब जीवों के शरीरों के कर्ता हैं। आजतक ब्रह्मादि देवों की रक्षा करते आये हैं, बरदाता हैं, अनेक लीलाएं इन्हें भाती हैं, तथापि सर्व श्रेष्ठ हैं, क्षीरशाई भगवान हैं। अतः राजाओं को छोड़ कर (क्योंकि राजा तो मनुष्य ही हैं) भीष्म ने जो इन्हें सर्व श्रेष्ठता का तिलक दिलाने को कहा है, इसके हेत मैं उनकी कहां तक प्रशंसा करूं क्योंकि ये कृष्ण न पुरुष हैं न स्त्री। (अर्थात् साक्षात् ईश्वर हैं—ईश्वर तत्व लिंग भेद से परे माना जाता है)।

२४—(अमितालंकार)

मूल—जहां साधनै भोगई, साधक की शुभ सिद्धि।
अमित नाम तासों कहत, जाकी अमित प्रसिद्धि ॥२६॥

भावार्थ—जिससे कार्य की सिद्धि हो वह साधन, जो व्यक्ति साधन करै वह साधक। इस अलंकार में साधक को छोड़ साधन ही को कार्य सिद्धि का श्रेय प्राप्त होना कहा जाता है। कर्ता को जो श्रेय मिलना चाहिये वह कारण को मिलता है।

(यथा)

मूल—आनन सीकर सीक हिये कत ? तो हित ते अति आतुर आई।
फीको भयो मुख ही मुख राग क्यों ? तेरे पिया बहु बार बकाई॥
प्रीतम को पट क्यों पलट्यों ? अलि केवल तेरी प्रतीत को लाई।
केशव नीकेहि नायक सों रमि, नायिका बातन ही बहराई ॥२७॥

(नोट)—किसी नायिका ने सखी को नायक को लिवालाने को भेजा। नायक ने उसी से रति की और लौटा दिया। रति चिन्ह देखकर नायिका पूंछती है:—

भावार्थ—मुख पर पसीना और हृदय में लंबी सासें क्यों हैं ? (सखी जवाब देती है) तेरे वास्ते दौड़ती गई और दौड़ती आई हूं। तेरा मुखराग आसानी से क्यों छूट गया है ? (जवाब) तेरे नायक ने बहुत बकवाद कराया। प्रियतम का वस्त्र क्यों बदल लाई है ? (उत्तर) तेरे विश्वास के लिये। नायक से स्वयं रमण करके, इस प्रकार नायिका को बातों में बहला दिया।

(नोट)—नायक के साथ रमण की सिद्धि जो नायिका को प्राप्त होनी चाहिये थी वह सखी को प्राप्त हुई। नायिका साधक है, सखी साधन थी।

(पुनः)

मूल-कोगनै कर्ण जगन्मागी से नृप साथ सबै दल राजन ही को।
जानै को खान किते सुलतान सु आयो शहाबुदीं शाह दिली को॥
ओरछे आनि जुन्यौ कहि केशव शाह मधूकर सों शँक जी को।
दौरि कै दूलहराम सुजीति कन्यौ अपने सिर कीरति टीको॥ २८॥

भावार्थ—मधुकरशाह से लड़ने के लिये शाह शहाबुद्दीन सदल बल ओड़छे पर चढ़ आया। मधुकरशाह से उसे प्राणों की शंका थी। पर वे तो रण में जाही न पाये थे कि दूलहराम ने उसे जीतकर यश का तिलक अपने सिरपर लगाया।

(नोट)—मधुकरशाह साधक था पर कीर्ति दूलहराम को मिली जो केवल साधन मात्र था। दूलहराम मधुकरशाह के पुत्र और सेना के एक सेनापति थे।

२५—(पर्यायोक्ति अलंकार)

मूल—कौनहु एक अदृष्ट ते, अनही किये जु होय।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोकति सोय ॥२९॥

भावार्थ—अपने इष्ट की सिद्धि किसी अदृष्ट कारण से बिना कुछ यत्न कियेही हो, वहां पर्यायोक्ति अलंकार कहेंगे। हाल के आचार्य इसे प्रहर्षण कहेंगे।

(यथा)

मूल—खेलत ही सतरंज अलिन में, आपहि ते,
तहां हरि आये किधौं काहू के बोलाये री।
लागे मिलि खेलन मिलैकै मन हरें हरें,
देन लागे दाउँ आपु आपु मन भाये री॥
उठि उठि गईं मिस मिसही जितहिं तित,
केशोदास की सौं दोऊ रहे छबि छाये री।
चौंकि चौंकि तेहि छन राधाजू के मेरी आली,
जलज से लोचन जलद से ह्वै आये री ॥३०॥

शब्दार्थ—ही = थी। हरें हरें = धीरे धीरे। देन लागे दाउँ = बाज़ी में हारी हुई बस्तु लेले देते हैं। जलद से = जलपूर्ण, अश्रुपूर्ण।

भावार्थ—सरल है।

व्याख्या—बिना यत्न किये 'अपहिते' आये अथवा किसी अन्य के बोलाने से आये, पर राधा ने कोई यत्न नहीं किया था। नेत्र जलद ह्वै आये अर्थात् रतिसूचक अश्रु नामक सात्विक भाव हुआ। यही अभीष्ट था।

२६—(युक्त अलंकार)

मूल—जैसो जाको रूप बल, कहिये ताही रूप।
ताको कवि कुल युक्त कहि, बरणन विविध सरूप॥३१॥

(यथा)

मूल—मदन बदन लेत लाज को सदन देखि,
यदपि जगत जीव मोहिबे को है छमी।
कोटि कोटि चन्द्रमानि बारि! बारि बारि डारौं,
जाके काज ब्रजराज आजलौं हैं संयमी॥
केशोदास सबिलास तेरे मुख की सुबास,
सुनियत आरसही सारसानि लै रमी।
मित्रदेव, छिति दुर्ग, दंड दल, कोष, कुल,
बल जाके ताके कहौ कौन बात की कमी॥३२॥

शब्दार्थ—बदन लेत = कुछ कहने लगता है, प्रशंसा करने लगता। लाज को सदन = लज्जा भरा तेरा मुख। छमी = क्षमतावान। बारि = हे बारी। संयमी = व्रत किये हैं (कि

उसी को देखेंगे, अन्य को नहीं)। आरसही = बे परवाही से। सारस = कमल। लै रमी = लेकर अपने में रमा रखी है अर्थात् छीन ली है। सबिलास = सुन्दर। दंड = कमलनाल। दल = पत्र। कोष = कमलकोश। कुल = कमलों के अनेक प्रकार। और यही बातें एक राजा में भी होती हैं अतः ध्वनि से कमल को राजा सम कहा।

भावार्थ—(मुख वर्णन है)—हे बारी! तेरा लाज भरा मुख देख कर काम भी प्रशंसा करने लगता है (कि ऐसा मुख रति का भी नहीं है), यद्यपि वह सारे संसारी जीवों को मोहने में समर्थ है (पर वह भी तेरे मुख पर मोहित होता है)। हे बारी! तेरे मुख पर कोटिन चंद्रमा निछावर कर डालूं, जिसके लिये श्रीकृष्ण आज तक यह व्रत लिये हुए हैं (कि सिवाय उसके हम और मुख देखें हीं गे नहीं)। सुनती हूं कि तेरी बेपरवाही से तेरे सुन्दर मुख की सुवास कमल छीन ले गये है (न जाने उन्हें क्या कमी थी), देवता जिनके मित्र हैं, पृथ्वी ही जिनका गढ़ है, जिनके पास दंड, दल, कोष, और कुल का बल है, उनके कौन बात की कमी थी।

(व्याख्या)—मुख का वर्णन जैसा युक्त (उचित) है वैसा किया गया और कमल का भी वर्णन उपयुक्त शब्दों से चमत्कारी कर दिया गया।

(नोट)—हाल के आचार्य इसे 'स्वभावोक्ति' चाहें तो कहलें, पर इसमें चमत्कार अधिक जँचता है।

(बारहवां प्रभाव समाप्त)

तेरहवां प्रभाव

२७—(समाहित अलंकार)

मूल—होत न क्योंहू, होय जहँ, दैव योग ते काज।
ताहि समाहित नाम कहि, बरणत कबि सिरताज॥ १॥

भावार्थ—जो काम अनेक उपाय करने पर भी न होता था, वह अनायास किसी दैवी घटना से हो जाय, ऐसे वर्णन में यह अलंकार होता है।

(यथा)

मूल—छबिसों छबीली वृषभानु की कुँवरि आजु,
रही हुती रूप मद मान मद छकि कै।
मारहू ते सुकुमार नंद के कुमार ताहि,
आये री मनावन सयान सब ताकि कै॥
हँसि हँसि, सौहैं करि करि पायँ परिपरि,
केशोराय की सौं जब रहे जिय जकि कै।
ताही समै उठे घनघोर घोरि, दामिनी सी,
लागी लौटि श्याम घन उर सों लपकि कै॥२॥

शब्दार्थ—सयान सब तकिकै=चतुराई से सुन्दर मौका ताक कर। सौंहें=शपथ। जकिकै=डरकर (कि अब कार्य सिद्धि न होगी)। उठे घनघोर घोरि=घोर घन घोरि उठे=बादलों की घटा गरज उठी। श्यामघन=(घनश्याम) कृष्ण।

(व्याख्या)—भावार्थ सरल ही है। जब कृष्ण मनाते मनाते थक गये और उन्हें यह ज्ञान पड़ा कि अब मान मोचन न होगा (कार्य सिद्धि न होगी) तब दैव योग से घटा घहरा उठी और डरकर राधिका कृष्ण से लिपट गई (कार्य सिद्धि हो गई)।

(नोट)—इसे हाल के आचार्य 'समाधि' अलंकार मानेंगे।

(पुनः)

मूल—सातहु दीपन के अवनी पति हारि रहे जिय में जब जाने।
बीस बिसे ब्रत भंग भयो सु कहौ अब केशव को धनु ताने॥
शोक की आगि लगी परिपूरन आय गये घनश्याम बिहाने।
जानकी के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु पुन्य पुराने॥३॥

शब्दार्थ—बीस बिसे = निश्चय ही, पूर्ण रीति से।

(व्याख्या)—किसी राजा से धनुष न उठा। राजा जनक की प्रतिज्ञा भंग ही होने को थी कि दैव योग से उसी दिन सवेरे श्रीराम जी जनकपुर में पहुंचे। इसमें भी पहले छंद का तरह पूर्ण निराशा होने पर अनायास राम जी का पहुँचना हुआ जिससे सब की आशा पूर्ण हुई। यही समाहित अलंकार है।

२८—(सुसिद्धालंकार)

मूल—साधि साधि औरै मरैं, औरै भोगैं सिद्धि।
तासों कहत सुसिद्धि सब, जिनके बुद्धिसमृद्धि॥ ४॥

भावार्थ—साधन और कोई करै, सिद्धि का फल और कोई भोगै।

(यथा)

मूल-मूलन सों फलफूल सबै दल जैसी कछू रसरीति चली जू ।
भाजन भोजन भूषण भामिनिभौन भरी भव भांति भली जू ॥
डासन आसन बास सुबासन बाहन यान बिमान थली जू ।
केशव जैसे महाजन लोग मरैं सचि भोगत भोग बली जू ॥५॥

शब्दार्थ—मूलन सों फल फूल = मूल से लेकर फल फूल दल तक। भामिनि भौन = घर की घरनी, पत्नी। भरी भव = भाव भरी, पूर्ण अनुरक्त (यहां गति शुद्ध रखने को 'भाव' को 'भव' लिखा गया है) डासन = बिछौना। बास = सुगंध वस्तु। बासन = वस्त्र। महाजन = धनी जन। सचि मरैं = संचित करने में परिश्रम करते हैं।

(व्याख्या)—अनेक प्रकार की सामग्री एकत्र करते हैं धनी-जन, और कोई बली उन्हें लूटकर सहज में सब सामग्री भोगता है।

(पुनः)

मूल-शरघा सँचि सँचि मरै शहर मधुपान करत सुख ।
खनि खनि मरत गँवार कूप जल पथिक पियत सुख ॥
बागवान बहि मरत फूल बांधत उदार नर ।
पचि पचि मरत सुआर भूप भोजननि करत बर ॥
भूषण सोनार गढ़ि गढ़ि मरैं भामिनि भूषित करत तन ।
कहि केशव लेखक लिखि मरहिं पंडित पढ़ैं पुरान गन ॥६॥

शब्दार्थ—शरघा = मधुमक्खी। सँचि सँचि मरैं = बड़े परिश्रम

से एकत्र करती है। शहर=शहर के लोग। मुख=मुख्य। शहर मुख=शहर के मुख्य लोग। सुआर=(सूपकार) रसोइया।

भावार्थ—सुगम है।

२९—(प्रसिद्धालंकार)

मूल—साधन साधै एक भव भोगैं सिद्धि अनेक।
तासों कहत प्रसिद्ध सब केशव सहित विवेक ॥ ७ ॥

(यथा)

मूल—मात के मोह पिता परितोषन केवल राम भरे रिस भारे।
औगुन एक ही अर्जुन को छितिमंडल के सब छत्रिय मारे ॥
देवपुरी कहँ औधपुरी जन केशवदास बड़े अरु बारे।
सूकर स्वान समेत सबै हरिचंद के सत्य सदेह सिधारे ॥८॥

शब्दार्थ—मातके···भारे=माता की गलती पर तथा पिता को संतुष्ट करने के लिये, परशुरामजी बड़े क्रुद्ध हुए। अर्जुन= सहस्राजुर्न। देवपुरी=स्वर्ग।

(नोट)—सहस्रार्जुन के दोष से अनेक क्षत्री मारे गये। हरिचंद के पुण्य से सब ने मुक्ति पाई। यही इस अलंकार की वर्णन शैली है।

भावार्थ—सुगम ही है।

३०—(बिपरीतालंकार)

मूल—कारज साधक को जहां, साधन बाधक होय।
तासों सब बिपरीत कहि, कहत सयाने लोय ॥ ९ ॥

(यथा)

मूल—नाह ते नाहर, तिय जेवरी ते सांप करि,
घालैं घर, बीथिका बसावतीं बननि की।
शिवहिं शिवाहू भेद पारति जिनकी माया,
माया हू न जानै छाया छलनि तिनानि की।
राधाजू सों कहा कहौं ऐसिन की मानैं सीख,
सांपिनि सहित विष रहित फनानि की।
क्यों न परै बीच, बीच आंगियौ न सहि सकैं,
बीच परी अंगना अनेक आंगनानि की ॥ १० ॥

शब्दार्थ—नाहर = सिंह। जेवरी = रस्सी। बीथिका = गलियां। शिवा = पार्वती। माया = छल। मायाहू''' तिननिकी = उनके छल की छाया को माया भी नहीं जान सकती। बीच आँगियौ न सहि सकैं = जो चोली का भी बीच में पड़ना न सह सकते थे, अति उत्कट प्रेमी। अंगना = स्त्री। अनेक आँगनानि की = अनेक आँगनों (घरों) की फिरने वाली अर्थात् दूती।

भावार्थ—जो दूतियां पति को सिंह सम भयंकर, तथा रस्सी को सांप बनाकर अनेक घर नष्ट कर देती हैं, और जंगल की गलियों को आबाद करती हैं, जिनकी कपट चाल शिव पार्वती में भी भेद करा सकती है, स्वयं नारायणी माया भी जिनके छल की छाया तक को नहीं समझ सकती, क्या कहूं राधिका जी ऐसी ही दूतियों की सीख मान लेती हैं जो फन रहित विषधर सर्पिणी हैं, तो क्यों न बीच पड़ै (पड़ना ही चाहिये), क्योंकि जो राधाकृष्ण अँगिया का भी मध्यस्थ होना न सह

भावार्थ—जहां उपमान के रूप से मिला हुआ उपमेय का रूप वर्णन करें अर्थात उपमेय और उपमान को एक करके कहें, वही रूपक है।

(यथा)

मूल—बदनचंद्र, लोचन कमल, बाहुपाश ज्यों जानि।
कर पल्लव अरु भ्रू लता, बिंबाधरनि बखानि ॥ १३ ॥

भावार्थ—जैसे बदन और चंद्र को, लोचन और कमल को, बाहु और पाशु को, कर और पल्लव को, भृकुटी और लता को, तथा ओठ और बिंबाफल को एक करके कहें। यही रूपक वर्णन हैं।

(रूपक के भेद)

मूल—ताके भेद अनेक मै, तीनै कहौं सुभाव।
अद्भुत एक विरुद्ध अरु, रूपक रूपक नाँव ॥ १४ ॥

भावार्थ—रूपक के तीन भेद—१—अद्भुत रूपक, २—विरुद्ध रूपक ३—रूपक रूपक।

१—(अद्भुत रूपक)

मूल—सदा एक रस बरनिये, जाहि न और समान।
अद्भुत रूपक कहत हैं तासों बुद्धि निधान ॥ १५ ॥

भावार्थ—जिस उपमेय का जो उपमान परंपरा से चला आता है उसी से उसका रूपक बांधना और उस में कुछ अद्भुत कल्पना करना। जैसे मुख का उपमान 'कमल' सनातन से चला आता है, तो मुख को कमल बनाना, पर उसमें कुछ विलक्षण कल्पना करना, यह नहीं कि 'मुख कमल' कह कर छुट्टी की। अथवा 'कुच' का उपमान 'गिरि' परंपरा से

चला आता है, तो 'कुचगिरि' कहते हुए कोई विलक्षण कल्पना करना चाहिये जिससे 'कुच' गिरिवत् प्रमाणित हो। और 'मुख' का उपनाम 'चन्द्र' सनातन से चला आता है। अतः 'मुखचन्द्र' कहते हुए मुख को चन्द्रमावत् प्रमाणित कर देना। यही अद्भुत रूपक है।

(यथा)

मूल-शोभा सरवर माहिं फूल्योई रहत सखि,
राजैं राजहंसिनि समीप सुख दानिये।
केशोदास आसपास सौरभ के लोभ घनी,
घ्राननि की देवि भौंरि भ्रमत बखानिये।
होति जोति दिन दूनी निशि में सहसगुनी,
सूरज सुहृद चारु चंद्र मन मानिये।
रति को सदन छुइ सकै न मदन ऐसो,
कमल बदन जग जानकी को जानिये ॥१६॥

शब्दार्थ—घ्रानन की देवी = सुगंध की सच्ची अधिकारिणी देवी। सूरज सुहृद = सूर्य निज बंशबधू जानकर जिसके मुख से सुहृदपना रखता है। चंद्र = रामचन्द्रजी। रति = प्रीति।

भावार्थ—श्री सीता का मुख कमल ऐसा है कि शोभा के सरोवर में सदा फूला ही रहता है, और जिसके निकट राजहंसिनी रूपी सखियां शोभा बढ़ाती हैं, सुगंध के लोभ से उसके इर्द गिर्द सुगंध की सच्ची अधिकारिणी देवियां भौंरी रूप से मँड़राया करती हैं। उसकी कांति दिन में तो सूर्य की सुहृदता से दुगुनी होती है, पर रात में श्रीरामचंद्र की सुहृदता

से हज़ार गुनी हो जाती है, इसे चित से सत्य मान लीजिये। यह मुख कमल प्रीति का सदन (रतिमुख) है पर उसे मदन नहीं छू सकता।

(व्याख्या)—मुख का सनातन उपनाम 'कमल' है। उसी से रूपक बांधा गया, पर बिलक्षणताएं ये वर्णन की गईं कि:—

१—वह सदा फूला रहता है। २—रात्रि में चंद्र के प्रसंग से सहस्रगुनी ज्योति होती है। ३—रति का सदन होने पर भी मदन उसे नहीं छू सकता। यही अद्भुतता है।

२—(विरुद्ध रूपक)

मूल—जहँ कहिये अनमिल कछु, सुमिल सकल विधि अर्थ।
तेहि बिरुद्ध रूपक कहैं, केशव बुद्धि समर्थ ॥ १७ ॥

भावार्थ—जहां कुछ अनमिल कहा जाय अर्थात् रूपक का एक अंग (उपमेय)—प्रत्यक्ष न मिलता हो—न कहा गया हो।

मूल—सोने की एक लता तुलसी बन क्यौं बरणों सुन बुद्धि सकै छ्वै।
केशवदास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से व्वै ॥
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्त चलै च्वै।
तापर एक सुवा शुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै ॥१८॥

शब्दार्थ—तुलसीबन = बृन्दाबन। श्री फल = बेल। व्वै = (बिय) दो। रूप निरूपत = उसका सौन्दर्य वर्णन करते समय। चित्त च्वैचलै = चित्त द्रवित हो जाय, मन प्रेमरस से आर्द्र हो उठे।

(नोट)—इसमें केवल उपमान कहे गये हैं। उपमेय लुप्त हैं (इसी लोपन को केशव ने 'अनमिल' कहा है अर्थात् जो शब्दों में प्रत्यक्ष न मिलै।

भावार्थ—(कोई सखी कृष्ण से कहती है) मैंने वृन्दावन में एक सोने की लता (नायिका) देखी है, कैसे वर्णन करूं बुद्धि वहां तक पहुंचती ही नहीं, उस लता में काम का भी मन हरने वाले दो बेल के से फल (कुच) फले हैं। उन पर एक कमल (मुख) फूला है जिसका सौन्दर्य निरूपण करते चित्त द्रवित होता है। उस कमल पर एक सुवा (नाक) है, और उस पर खंजन के दो बालक (नेत्र) खेल रहे हैं।

(नोट)—हाल के आचार्य इसे रूपकातिशयोक्ति कहते हैं।

३—(रूपक रूपक)

मूल—रूप भाव जहँ बरनिये' कौनिहु बुद्धि बिबेक।
रूपक रूपक कहत कबि, केशवदास अनेक ॥ १९ ॥

भावार्थ—जहां किसी वस्तु वा किसी भाव का रूपक मनमानी वस्तु से बांधें—अर्थात् इसमें यह ज़रूरी नहीं है (जैसे कि अद्भुत रूपक में) कि उपमेय और उपमान का सनातन संबंध हो।

(यथा)

मूल—काछे सितासित काछनी केशव पातुरि ज्यों पुतरीनि विचारो।
कोटि कटाक्ष चलैं गति भेद नचावत नायक नेह निनारो।
बाजतु है मृदु हास मृदंग, सुदीपति दीपन को उजियारो।
देखत हौ हरि! देखि तुम्हैं यहि होत है आंखिन ही में अखारो॥२०॥

शब्दार्थ—काछनी = पेशवाज़। 'निनारो' = न्यारा, अलग (इसका अन्वय 'बाजतु है' से है)। अखारो = नाच। यहि = इसके।

भावार्थ—हे कृष्ण! देखते हो (देखो) तुम्हें देख कर उस सखी की आंखों में नाच का जलसा होने लगता है। स्याह

सफेद पोशाक पहने पुतलियों को नटी समझिये; अनेक प्रकार के चलने वाले कटाक्षों को गति भेद समझो, नेह को नायक (नाच सिखाने वाला ओस्ताद) जानो, मृदुहास हास्यरूपी मृदंग अलग ही बजता है, और हास्य की दीप्त ही चिरागों की रोशनी है।

(व्याख्या)—नायक को देख कर जो दशा नायिका की होती है उसका रूपक मनमाने ढंग से नाच से बांधा गया है। अतः रूपक रूपक है।

३२—(दीपक अलंकार)

मूल—वाच्य क्रिया गुण द्रव्य को, बरनहु करि इक ठौर।
दीपक दीपति कहत हैं, केशव कवि सिर मौर ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—इकठौर=एक ढंग से, शब्दों की ठीक मौजूनियत से।

भावार्थ—जिस द्रव्य (वस्तु) का वर्णन करना हो। उसका वर्णन उसकी क्रिया और उसके गुण सहित खूब उपयुक्त रूप से हो, उसमें दीपक अलंकार होगा।

(नोट)—'दीपक' का अर्थ है 'प्रकाश'। अतः किसी वस्तु के वर्णन को उसके उपयुक्त गुणों तथा क्रियाओं द्वारा खूब प्रकाशित करना ही 'दीपक' है।

मूल—दीपक रूप अनेक हैं, मैं बरनौं द्वै रूप।
मणि, माला, तिनसों कहैं केशव सब कवि भूप ॥ २२ ॥

भावार्थ—दीपक के अनेक प्रकार हैं। उनमें से मैं दो का वर्णन करता हूं—(१)—मणि दीपक (२)—माला दीपक।

(नोट)—'मणिदीपक' किन वर्णनों में भला मालूम होता है, इसकी सूचना केशव जी पहले ही दिये देते हैं कि:—

मूल-बरषा, शरद, बसंत, ससि, शुभता, शोभ, सुगंधु ।

प्रेम, पवन, भूषण, भवन, दीपक दीपक बंधु ॥ २३ ॥

भावार्थ—केशव कहते हैं कि ऋतु वर्णन में तथा चंद्रमा, सौन्दर्य, शोभा, सुगंध, प्रेम, पवन, भूषण और मानसिक भावों (भवन) के वर्णन में दीपक अलंकार खूब अच्छा लगता है क्योंकि ये वर्णन दीपक के बंधु (सहायक) हैं ।

१—(मणिदीपक)

मूल-इनमें एकहु बरनिये, कौनहु बुद्धि बिलास ।

तासों मणिदीपक सदा, कहियत केशवदास ॥ २४ ॥

भावार्थ—ऊपर गिनाई हुई वस्तुओं के वर्णन में ही मणिदीपक होगा ।

(यथा)

मूल-प्रथम हरिननैनी ! हेरि हरे हरि की सौं,

हरषि हरषि तम तेजहि हरतु है ।

केशोदास आस पास परम प्रकास सों,

बिलासिनी ! बिलास कछु कहि न परतु है ।

भाँति भाँति भामिनि ! भवन यह भूषो नव,

सुभग सुभाय शुभ शोभा को धरतु है ।

मानिनि ! समेत मान मानिनीनि बशकर,

मेरो दीप तेरो मन दीपित करतु है ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—हेरि हरे = धीरे से देख । छिपे २ देख । जरा देख । सौं = (सौंहैं) सामने । तमतेज = अज्ञान वा विरह दुःख ।

विलास=कटाक्ष हास्य इत्यादि हावभाव। भूषो=भूषित किया हुआ। नव=नवीन। सुभग सुभाय=कृष्ण के स्वाभाविक सौंन्दर्य से। मेरो दीप=मेरे मन को प्रकाशित करने वाला (मुझे आनंद देने वाला अर्थात् कृष्ण)। तेरो मन दीपित करतु है=तेरे मन को दीप्त करता है—तुझे भी आनन्द देता है।

(सूचना)—इस छंद में हरिननैनी, विलासिनी, भामिनी, और मानिनी नायिका के गुण वाचक संबोधन हैं। हरिननैनी के साथ हरि (सिंहवाची) का प्रयोग बहुत सुन्दर है। हरि (सूर्यवाची भी है) के साथ तमतेज, और क्रिया 'हरतु है', बड़ा मज़ा दे रहे हैं। 'दीप' के कारण तम, प्रकाश तथा शोभा के शब्द कैसे सुन्दर मालूम होते हैं। 'दीप' की क्रिया 'दीपित करते है' 'तम हरतु है' बहुत सुन्दर आये हैं। इसी प्रकार शब्दों का मौजूं प्रयोग केशव के मत से दीपक अलंकार है। उर्दू तथा फारसी साहित्य में इसकी बड़ी सुन्दर छटा देखने में आती है। इस प्रकार के प्रयोग मर्मज्ञता, विद्वत्ता तथा प्रतिभा के परिचायिक तो अवश्य ही हैं।

भावार्थ—(किसी मानिनी को कृष्ण मनाने गये हैं। संग में कोई चतुर सखी भी है। जब कृष्ण मनाते मनाते हार गये तब सखी कहती है)

हे हरिनयनी! पहले जरा कृष्ण के सम्मुख हेर तो (ज़रा आंख से आंख तो मिला, फिर मैं देखूं कि तेरा मान कैसे रहता है) कैसे हँस हँस कर (अपनी दंत छटा से तम को हटाते हैं) तेरे मान अंधकार को हरण कर रहे हैं (क्योंकि अंतिम चरण में कृष्ण को 'दीपक' कहा है) हे विलासिनी!

कृष्ण की रूप छटा के प्रकाश से चारों ओर प्रकाश फैला है जिसका बिलास (सौन्दर्य) कुछ कहा नहीं जाता। हे भामिनी! यह तेरा नवीन और अनेक भाँति से सुसज्जित भवन भी कृष्ण के स्वाभाविक सौन्दर्य से अच्छी शोभा को धारण कर रहा है (बिना कृष्ण के यह सुन्दर भवन अँधेरा हो जायगा अतः मान छोड़ कर इन्हें यहीं रखले)। हे मानिनी! मान समेत मानिनी नायिकाओं को वशकर्ता मेरा दीपक (कृष्ण-चंद्र) तेरे मन को भी दीप्तमान कर रहा है (चाहे तू मान या न मान) अर्थात् तू मन से कृष्ण को चाहती है पर ऊपर से दिखावटी मान किये हुए है।

अब आगे 'पवन' नामकद्रव्य (वस्तु)का बर्णन देखिये और परिभाषा में मिलाकर समझिये।

(पुनः)

मूल—दच्छिण पवन दच्छि यच्छिणी रमण लगि,
लोलन करत लौंग लवली लता को फरु।
केशोदास केसर कुसुम कोश- रसकण,
तनु तनु तिनहू को सहत सकल भरु।
क्योंहूं कहूँ होत हठि साहस बिलास बश,
चंपक चमेली मिलि मालती सुबास हरु।
शीतल सुगंध मंद गति नँदनंद की सौं,
पावत कहां ते तेज तोरिबे को मानतरु ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—दच्छि = दक्षिण नायक सम। यच्छिणीरमण लगि = यक्षिणियों के रमने के स्थान तक—हिमालय तक। लोलन

करत = डोलाता है, कपाँ देता है। लवली = हरफारयौरी। तनु तनु = अतिसूक्ष्म। सकल = कला सहित अर्थात् चतुराई से। क्योंहूं = किसी प्रकार। सुबास = सुगंध (सुंदर वस्त्र) नँदनंद = कृष्ण। सौं = शपथ। तेज = बल।

(सूचना)—इसमें 'पवन' का वर्णन है। अतः लोलन करत, बिलास बश होत, सुबास हरत इत्यादि क्रियाएं दक्षिण नायक होने के लिहाज़ से बहुत सुंदर हैं। शीतल, सुगंध और मंद गुण वाचक विशेषणों को सार्थक करने के लिये हिमालय तक जाने की युक्ति, केशर कुसुमकोश का भार लेना, और चंपक चमेली से उलझते हुए आना बड़ी सुयुक्ति की बातें हैं। मान को 'तरु' बनाना भी सद्युक्ति* है, जिसके कारण छंद का अर्थ चमक उठा है। इसी से यह दीपक है और वास्तव में मणिदीपक है। ये दोनों छंद केशव के अमूल्य रत्न हैं। इनकी छटा परवर्ती सैकड़ों कवियों ने उधार ली है।

भावार्थ—दक्षिण पवन (बसंत की वायु) रूपी दक्षिण नायक दक्षिण से हिमालय पर्वत तक लौंग और लवली लताओं के फलों को हिला देता है (इससे शीतल होजाता है) केसर के कुसुमकोश के छोटे छोटे रसकणों का भी चतुराई से सब भार सहन करता है (इससे सुगंधित हो जाता है) कहीं कहीं किसी प्रकार हठ और साहस से चंपा चमेली और मालती से उलझ कर बिलास करते हुए उनकी सुवास (सुन्दर वस्त्र) हरण करता है (जिसके बोझ से मंद गति होजाता है)। इस प्रकार यह शीतल सुगंध और मंदगति वाला दक्षिण पवन, कृष्ण की शपथ करके कहती हूं कि, न जाने कहां से मानरूपी वृक्ष को तोड़ने की शक्ति पा जाता है अर्थात् शीत-

लता तो हिमालय से पाता है क्योंकि वहां तक जाता है, सुगंध अनेक पुष्पों से पाता है, और मकरंद के बोझ के कारण मंद गति हो जाता है, पर मान तरु तोड़ने की शक्ति कहां से पाता है।

(नोट)—वस्तु, गुण, औ क्रियाओं का मौजूं वर्णन बड़ी खूबी और युक्ति से किया गया है, इसी से मणिदीपक है। यही मौज़ूनियत अब के कवियों में नहीं है, इसी से उनकी कविता चमकती नहीं। उर्दू वालों में यह मौज़ूनियत पाई जाती है।

२—(मालादीपक)

मूल—सबै मिलै जहँ वरनियै, देश काल बुधिवंत ।
माला दीपक कहत हैं ताके भेद अनंत ॥

भावार्थ—जहां अनेक बातों का इस प्रकार वर्णन करें कि एक का दूसरी से जोड़ सा लगता जाय (जैसे ज़ंजीर की कड़ियां अलग होती हैं पर परस्पर मिली रहती हैं) और देश काल के अनुसार बात बुद्धिमानी से मौज़ूं की गई हो।

(यथा)

मूल—दीपक देह दशा सों मिलै सुदशा मिलि तेजहि जोति जगावै ।
जागिकै जोति सबै समुझै तम शोधि सु तौ शुभता दरसावै ॥
सो शुभता रचै रूप को रूपक रूप सो काम कला उपजावै ।
काम सो केशव प्रेम बढ़ावत प्रेम लै प्राणप्रियाहि मिलावै॥२८॥

शब्दार्थ—दशा=(१) अवस्था, युवापन (२) चिराग की बत्ती। तेज=बल। जोति=(१) प्रकाश (२) ज्ञान। तम= (१) अंधकार, (२) अज्ञान। शुभता=(१) सौन्दर्य

(२) आनंद। रूप को रूपक रचै = सौन्दर्य के अनुमान करने लगता है।

भावार्थ—देह एक दीपक है। वह युवावस्था से मिलता (जैसे दीपक बत्ती से मिलता है) वह युवावस्था बल को बढ़ाती (युवावस्था में बल आता है) और ज्ञान को जगाती है (जैसे बत्ती मिलने से चिराग जल कर प्रकाश फैलाता है)। ज्ञान बढ़ने से सब बातें समझ में आने लगती हैं और अज्ञान का शोधन हो जाने से आनंद जान पड़ता है (जैसे चिराग के उजाले से सब वस्तुएं सूझ पड़ने लगती हैं और अंधकार के हटने से स्थान का सौन्दर्य देख पड़ने लगता है) सौन्दर्य आने से और अधिक सौन्दर्य का अनुमान होने लगता है, फिर वह सौन्दर्य काम उपजाता है, काम से प्रेम बढ़ता है और प्रेम प्राणप्रिय से मिला देता है।

(नोट)—इसमें एक बात दूसरी से कड़ी के समान जुड़ी हुई है, और चिराग की मौज़ूनियत के लिये 'दशा, तेज, तम, युवता इत्यादि शब्द उपयुक्तता से प्रयोग किये गये हैं। इस कारण इसमें मालापन भी है और दीपकता भी, अतः 'माला दीपक' है।

(विशेष)—अर्वाचीन मत से इसकी परिभाषा ठीक वही है जो केशव ने दी है, पर उदाहरणों में 'दीपकत्व' नहीं पाया जाता, केवल मालापन ही है।

(पुनः)

मूल—घनानि की घोर सुनि, मोरन के सोर सुनि,

सुनि सुनि केशव अलाप आली मन को।

दामिनि दमक देखि, दीप की दिपति देखि,
देखि शुभ सेज, देखि सदन सुमन को।
कुंकुम की बास, घनसार की सुबास, भये
फूलनि की बास मन फूलि कै मिलन को।
हँसि हँसि मिले दोऊ, अनही मिलाये, मान
छूटि गयो एकै बार राधिका, रवन को ॥२९॥

शब्दार्थ—घोर=गरज। अलाप=गान। दिपति=(दीप्ति) प्रकाश। सदन सुमन को=फूलों का बँगला। फूलिकै=उमंगित होकर। राधिका-रवन को=राधिका और उनके रमण अर्थात् कृष्ण का।

भावार्थ=सुगम ही है।

(विशेष)—इसमें देश (एकान्त, फूलों का बँगला) और काल (वर्षा) का वर्णन है और कई कई चीजों का सुनना, देखना वर्णन है। अतः परिभाषा के अनुसार यह मालादीपक है, पर अर्वाचीन मत से इसे 'पदार्थावृत्त' दीपक कहेंगे।

३३—(प्रहेलिका अलंकार)

मूल—बरनिय बस्तु दुराय जहँ, कौनहुँ एक प्रकार।
तासों कहत प्रहेलिका, कबि कुल बुद्धि उदार ॥ ३० ॥

(यथा)

मूल—सोभित सत्ताईस सिर, उनसठि लोचन लेखि।
छप्पन पद जानौ तहां, बीस बाहु बर देखि ॥ ३१ ॥

भावार्थ—सूर्य मंडल में ब्रह्मा, विष्णु, शिव अपनी शक्तियों तथा अपने बाहनों सहित बिराजे हैं, ऐसा पुराणों में वर्णन है। इसे

'प्रभाकर मंडल' कहते हैं। इस पहेली में इसी 'प्रभाकरमंडल' का वर्णन है।

ब्रह्मा (चारमुख), विष्णु (एक), शिव (पँचमुख), सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, हँस, गरुड़, बैल, सूर्य, अरुण (सारथी), सूर्य के अश्व (सात) और सूर्य की दो स्त्रियां (संध्या और छाया), इन सब के मिलकर २७ सिर, ५९ नेत्र, ५६ चरण और २० बाहु होते हैं।

(पुनः)

मूल—चरण अठारह बाहु दस, लोचन सत्ताईस।

मारत हैं प्रतिपाल कर, सोभित ग्यारह सीस ॥ ३२ ॥

भावार्थ—विष्णु, लक्ष्मी और गरुड़, शिव और वृषभ, तथा पार्वती और सिंह। ये सब मिलकर एकत्र।

(पुनः)

मूल—नौ पशु नवही देवता द्वै पक्षी जेहि गेह।

केशव सोई राखि है इन्द्रजीत की देह ॥ ३३ ॥

भावार्थ—ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सावित्री, लक्ष्मी, पार्वती, हंस, गरुड़, वृषभ, सिंह, सूर्य और उनके सात अश्व सहित एकत्र।

नौ पशु = ७ घोड़े १ वृषभ १ सिंह।

नव देवता = ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सावित्री, लक्ष्मी, पार्वती, सूर्य और चंद्रमा तथा अग्नि शिव के मस्तक के।

द्वै पक्षी = गरुड़ और हंस।

(पुनः)

मूल—देखै सुनै न खाय कछु, पायँ न, युवती जाति।

केशव चलत न हारई, वासर गिनै न राति ॥ ३४ ॥

भावार्थ—देखती सुनती खाती कुछ नहीं, पैर नहीं है, औ आति है, पर रातो दिन चलती है कभी थकती नहीं = (राह = रास्ता)

(पुनः)

मूल—केशव ताके नाम के आखर कहिये दोय।
सूधे भूषन मित्र के उलटे दूषन होय ॥ ३५ ॥

भावार्थ—'राज' शब्द। मित्र के 'राज' हो तो अच्छी 'जरा' हो तो बुरी।

(पुनः)

मूल-जाति लता दुइ आखरहिं, नाम कहै सब कोय।
सूधे सुख मुख भखिये, उलटे अंबर होय ॥३६॥

भावार्थ—'दाख'। उलटने से 'खदा' होगा जो एक प्रकार का वस्त्र है। जिसे खद्दर वा खादी कहते हैं।

(पुनः)

मूल-सब सुख चाहौ भोगिबो, जो पिय एकहि बार।
चंद गहै जहँ राहु को जैयो तेहि दरबार ॥३७॥

(नोट)—राजा बीरबर के दर्बान के निवेदन करने पर केसव ने बड़े अच्छे ढंग से पतिराम की तरह इसका नाम भी अपनी कविता द्वारा अमर कर दिया।

भावार्थ—हे पिय! यदि सर्वसुख एकही स्थान में रहकर भोगना चाहते हो, तो उस दरबार में जाकर रहना जहां चंद राहु को पकड़ता है (जहाँ चंद नामक दर्बान राह रोकता है—बिना मालिक की आज्ञा अंदर नहीं जाने देता) अर्थात राजा बीरबर का दर्बार।

(पुनः)

मूल—ऐसी मूरि दिखाउ सखि, जिय जानत सब कोइ ।
पीठि लगावत जासु रस छाती सीरी होइ ॥३८॥

भावार्थ—बालक (पुत्र) जब माता की पीठ से लगकर खेलता है, तब माता का हृदय आनंदित होता है, अतः इस पहेली का तात्पर्य है 'पुत्र' ।

३९—(परिवृत्तालंकार)

मूल—जहां करत कछु औरही उपजि परत कछु और ।
तासों परिवृत जानियो, केशव कवि सिरमौर ॥३९॥

(नोट)—अर्वाचीन मत से इसे एक प्रकार का 'विषादन' अलंकार कहेंगे ।

(यथा)

मूल—हँसि बोलत ही जु हँसैं सब केशव लाज भगावत लोक भगै ।
कछु बात चलावत घैरु चलै, मन आनत ही मनमत्थ जगै ॥
सखि तू जु कहै सु हुती मन मेरेहु जानि यहै न हियो उमगै ।
हरि त्यों टुक डीठि पसारत ही अँगुरीन पसारन लोक लगै ॥४०॥

शब्दार्थ—घैरु = बदनामी की चर्चा । अँगुरी पसारना = अंगुश्तनुमा करना, बदनाम समझ कर उँगली से किसी को निर्दिष्ट करना । त्यों = तरफ । टुक = तनक ।

भावार्थ—नायिका सखी से कहती है कि हे सखी ! जो मैं कृष्ण से हँसकर बोलती हूं तो सब लोग मुझपर हँसते हैं (निंदा करते हैं) जो मैं लाज त्याग कर उनको देखती हूं तो लोग मुझसे भगते हैं (घृणा करते हैं) जो उनसे बोलती हूं तो

बदनामी होती है, जो उनकी छबि मनमें रखती हूं तो कामोद्दीपन होता है। हे सखी! जो तू कहती है वही बात मेरे मन में भी थी (कि उनसे प्रेम करूं) परंतु यही बातें समझकर हृदय में उमंग नहीं होती क्योंकि कृष्ण की ओर ज़रा भी दृष्टि डालते लोग बदनामी से उंगली उठाने लगते हैं।

(पुनः)

मूल—हाथ गहौ ब्रजनाथ सुभावही छूटि गई धुर धीरजताई।
पान भखे मुख नैन रची रुचि, आरसी देखि, कहौं यह ठाई॥
दै परिरंभन मोहन को मन मोहि लियो सजनी सुखदाई।
लाल गोपाल कपोल रदच्छत तेरे दिये ते महा छबि छाई॥४१॥

शब्दार्थ—धुर = (ध्रुव) निश्चल। धीरजताई = धैर्य। रुचि = रंग। ठाई = सत्य। परिरंभन = आलिंगन।

भावार्थ—(सखी बचन नायिका प्रति)—जब श्रीकृष्ण ने तेरा हाथ प्रेम से पकडा तो उनका धैर्य छूट गया। तूने पान तो खाये हैं मुख से, पर रंग रचा है आंखों में (विश्वास न हो तो) आरसी लेकर देख ले मैं यह बात सत्य कह रही हूं। हे सुख दायिनी सखी! तू ने आलिंगन देकर कृष्ण का मन मोहित कर लिया, और श्री गोपाललाल (कृष्ण) ने तेरे कपोल पर जो दंताघात किया है उससे तेरी छबि और बढ़ गई है।

(नोट)—पहले और चौथे चरणों में केशव के मत का और तीसरे चरण में अर्वाचीन मत का परिवृत्त अलंकार है। दूसरे चरण में 'असंगति' अलंकार है।

(पुनः)

मूल— जीव दियो, जिन जन्म दियो जग,
जाहि की ज्योति बड़ी जग जानै।
ताही सों बैर मनो बच काय करै
कृत केशव ना उर आनै॥
मूषक ते ऋषि सिंह कर्‍यौ
ऋषि ही सउँ मूरख रोष बितानै।
ऐसो कछू यह काल है जाको भलो
करिये सो बुरो करि मानै॥४३॥

शब्दार्थ—कृत = किया हुआ एहसान। (मूषक और ऋषि की कथा) एक ऋषि की कुटी में एक चूहा रहा करता था। वह बिल्ली के डर से सदा भयभीत रहता। निवेदन करने पर ऋषि ने उसे बिल्ली बना दिया तब कुत्तों से भयभीत रहता। ऋषि ने उसे कुत्ता कर दिया। तब वह सिंह से डरता रहता। ऋषि ने कृपा करके उसे सिंह बना दिया। सिंह बनने पर वह मूर्ख ऋषि ही को खाने दौड़ा। तब ऋषि ने उसे फिर मूसा बना दिया। सउँ = सम्मुख। रोष बितानै = क्रोध विस्तार करता है।

भावार्थ—सुगम है।

(तेरहवां प्रभाव समाप्त)

चौदहवां प्रभाव

३५—(उपमालंकार)

मूल-रूप शील गुण होय सम, जो क्योंहूं अनुसार ।
तासों उपमा कहत कवि, केशव बहुत प्रकार ॥ १ ॥

भावार्थ—जब किसी वस्तु के रूप (रंग आकारादि) शील (स्वभाव) और गुण (सुखद दुखद होने) की समता किसी अन्य वस्तु के रूप, शील और गुण से की जाती है, तब वहां उपमा अलंकार कहा जाता है। उपमा के अनेक प्रकार हैं, जो नीचे गनाये जाते हैं:—

मूल-संशय, हेतु, अभूत अरु, अद्भुत, विक्रिय जानि ।
दूषण, भूषण, मोह मय, नियम, गुणाधिक आनि ॥२॥
अतिशय, उत्प्रेक्षित कहौं, श्लेष, धर्म, बिपरीति ।
निर्णय, लाक्षणिकोपमा, असंभाविता मीत ॥ ३ ॥
पुनि विरोध, मालोपमा, और परस्पर रीस ।
उपमा भेद अनेक हैं मैं बरणौं इक बीस ॥ ४ ॥

(नोट)—ऊपर गनाये हुए २१ भेदों के अलावा केशव ने अंत में एक संकीर्णोपमा भी कही है। इस प्रकार २२ प्रकार उपमा के केशव ने बतलाये हैं।

१—(संशयोपमा)

मूल—जहां नहीं निरधार कछु सब संदेह सरूप।
सो संशय उपमा सदा, बरनत हैं कवि भूप ॥ ५ ॥

(नोट)—इसी को अब लोग 'संदेहालंकार' के नाम से मानते हैं:—

(यथा)

मूल—खंजन हैं मनरंजन केशव रंजन नैन किधौं, मति जीकी।
मीठी सुधा कि सुधाधर की; दुति दंतन की किधौं दाड़िम ही की ॥
चंद भलो मुख चंद किधौं सखि मूरति काम कि कान्ह की नीकी।
कोमल पंकज कै पद पंकज, प्राण पियारे कि मूरति पी की ॥६॥

भावार्थ—(नायिका बचन सखी प्रति)—हे सखी ! मैं तो कुछ निश्चय नहीं कर सकी, तू अपनी जी की मति से निश्चय करके बतला दे कि खंजन अच्छे लगते हैं या कृष्ण के नेत्र, सुधा मीठी है या उनके अधरों की मिठाई, दांतों की दुति अच्छी है या अनार के दानों की। चंद्रमा सुन्दर है या उनका मुख चंद्र, काम की मूर्ति अच्छी है या कृष्ण की, कमल कोमल हैं या कृष्ण के चरण, प्राण प्यार करने योग्य हैं या कृष्ण की मूर्ति ?

२—(हेतूपमा)

मूल—होत कौनहू हेत ते, अति उत्तम सोउ हीन।
ताही सों हेतूपमा केशव कहत प्रवीन ॥७॥

भावार्थ—जहां उपमान साधारणतः उपमेय से हीन ऊँचे।

(यथा)

मूल—अमल, कमल कुल कलित, ललित गति,
बेल सों बलित, मधु माधवी को पानियै ।
मृगमद मरदि, कपूर धूरि चूरि पग,
केसरि को केशव विलास पहिचानियै ॥
झेलि कै चमेली, करि चंपक सों केलि, सेइ
सेवती, समेत हेतु केतकी सों जानियै ।
हिलि मिलि मालती सों आवति समीर जब,
तब तेरे सुख मुख बास सों बखानियै ॥८॥

शब्दार्थ—अमल = गर्द रहित । ललित गति = मंद चालसे । बेल = बेला । मधु = मकरंद । मृगमद = कस्तूरी । सुख = सहज, साधारण ।

भावार्थ—निर्मल होकर (खूब नहा धोकर, अति स्वच्छ होकर, रज रहित होकर) कमलों की बास से युक्त होकर, मंद गति से चलता हुआ, बेले की बास से युक्त, माधवी का मकरंद पान किये हुए, कस्तूरी को मर्दन किये हुए, कपूर को पैरों से कुचलकर चूर करता हुआ,केशर से बिलास करके (मिलकर) चमेली को धक्का देते; चंपा से केलि करके, सेवती का सेवन करके, केतकी से प्रेम करता, और मालती से मिलता हुआ जब सुगंधित पवन आवै, तब कहीं तेरे सहज मुखवास के समान कहा जाय ।

(व्याख्या)—तात्पर्य यह है कि सहज सुगंधित पवन, उसके सहज मुखबास से हीन है, जब वह ऐसा बनकर आवै तब कहीं उपमा ठीक हो ।

३—(अभूतोपमा)

मूल—उपमा जाय कही नहीं, जाको रूप निहारि।
सो अभूत उपमा कही, केशवदास बिचारि ॥९॥

(यथा)

मूल—दुरिहै क्यों भूषन बसन दुति यौवन की,
देह ही की जोति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाह की सुबास लागै ह्वैहै कैसी केशव,
सुभाव ही की बास भौंर भीर फारे खाति है॥
देखि तेरी मूरति की सूरति बिसूरति हौं,
लालन को दृग देखिबे को ललचाति है।
चलिहै क्यों चन्द्रमुखी कुचानि के भार भये,
कचन के भार तें लचकि लंक जाति है ॥१०॥

शब्दार्थ—दुति = चमक दमक। द्यौस = दिन। नाह = पति। मूरति = शरीर। सूरति = सौन्दर्य। बिसूरति हौं = सोचती हूं।

भावार्थ—भूषण, वस्त्र और यौवन की ज्योति कैसे छिपैगी, जब तेरे शरीर की साधारण चमक से रात्रि भी दिन समान हो जाती है। पति की सुगंध लगने से क्या दशा होगी, जब तेरी स्वाभाविक सुगन्ध से ही भ्रमर समूह तुझे इतना सताता है कि चारो ओर से मँड़रा मँड़रा कर खाये सा डालता है। तेरे शरीर का सौन्दर्य देख कर मैं तो यह सोचती हूं, और तू कृष्ण को देखने को ललचाती है। हे चन्द्र मुखी ! कुचों के भार से तू कैसे चलैगी जब केवल बालों के भार से तेरी कमर लचकी जाती है (इतनी सुकमार है)

(व्याख्या)—अभी नायिका अप्रौढ़ है तब तो यह दशा है, जब पूर्ण वयस्का होगी तब क्या दशा होगी। उसकी कांति सुबास, सौंदर्य और सुकुमारता की उपमा ही न मिलैगी अतः अद्भुतोपमा हो जायगी।

(नोट)—मेरी सम्मति से इसको अर्वाचीन मत से "वाचक धर्मोपमान लुप्तोपमा" कह सकते हैं।

४—(अद्भुतोपमा)

मूल—जैसी भई न होति अब आगे लखै न कोय।
केशव ऐसे वरनिये, अदभुत उपमा सोय। ११।

(यथा)

मूल प्रीतम को अपमान न माननि गान सयानन रीझि रिझावै।
बंक विलोकनि बोल अमोलनि बोलि कै केशव मोद बढ़ावै।
हाव हू भाव प्रभाव सुभावनि प्रेम प्रयोगनि चित्त चोरावै।
ऐसे विलास जु होंहिं सरोज में तो उपमा मुख तेरे की पावै। १२

भावार्थ—मान करके कभी प्रियतम का अपमान न करे, सज्ञानता से गान करके स्वयं रीझै और अपने प्रियतम को रिझावै, तिरछी चितवन से और अमूल्य वचन बोल कर प्रियतम का आनन्द बढ़ावै, अपने स्वाभाविक हाव भाव के प्रभाव से प्रेम पैदा करके चित्त को हरण करे, कमल में जब ऐसे गुण हों, तब तेरे मुख की समता पावै।

(नोट)—कमल में ऐसे गुण होना त्रिकाल में संभव नहीं, और यदि हों तो अद्भुत बात होगी, अतः अद्भुतोपमा है।

हेतूपमा और इस में समता सी भासित होती है, पर विचार करने से भेद यह जान पड़ता है कि हेतूपमा की

बातें संभव हैं और इसकी बातें त्रिकाल में असंभव हैं। किसी दशा में संभव हो सकता है, कि पवन में उनकी वस्तुएँ मिल सकें, पर कमल में गाने, हेरने, और बोलने की शक्ति आई नहीं सकती।

५—(विक्रियोपमा)

मूल—क्यौंहूं क्योंहूं बरनिये, कहै न एक प्रकार।
विक्रिय उपमा होति तहँ, केशव बुद्धि उदार॥ १३॥

भावार्थ—उपमेय एक हो, पर उपमान में कभी कुछ कभी कुछ कहैं।

(यथा)

मूल-केशोदास कुंदन के कोश तें प्रकाशमान,
चिंतामणि ओपनी सों ओपिकै उतारी सी।
इंदु के उदोत तें उकीरी ही सी काढ़ी, सब
सारस सरस, शोभासार तें निकारी सी।
सोंधे की सी सोधी, देह सुधासों सुधारी, पावँ
धारी देव लोक तें कि सिंधु तें उबारी सी।
आजु यासों हँसि खेलि बोलि चालि लेहु लाल
कालिह एक बाल ल्याऊं काम की कुमारी सी॥१४॥

शब्दार्थ—कोश = ढेर। ओपनी = मांजने की वस्तु जिससे रगड़ कर तलवार या कटारी में जिला दी जाती है। ओपिकै = जिला देकर। उदोत = चांदनी। उकीरी = खोदकर निकाली

गई। सारस = कमल। सोंधा = सुगंध। उबारी = निकाली हुई।

भावार्थ—(कोई दूती कृष्ण से कहती है कि) आज इससे बिहार कर लो, कल्ह दूसरी ला दूँगी। (यह कैसी सुन्दर है कि) कुंदन के ढेर से भी अधिक प्रकाशमान है, चिंतामणि की ओपनी से जिला दी गई सी है, मानों चांदनी के खेत से खोदकर निकाली गई है, सब कमलों से बढ़कर है, शोभा के सार से निकाल ली गई है, सुगंध से शुद्ध करके इसकी देह सुधा से बनाई गई है, न जाने यह देवलोक से आई है या समुद्र से निकाली गई है।

(व्याख्या)—कई प्रकार से उसके सौन्दर्य को पुष्ट करती है अतः बिक्रिय है।

६—(दूषणोपमा)

मूल—जहँ दूषण गण बरनिये, भूषण भाव दुराय।
दूषण उपमा होति तहँ, बुधजन कहत बनाय ॥ १५ ॥

भावार्थ—जहां उपमानों के दोष बतला कर उपमेय की प्रशंसा की जाय। उपमानों की खूबियां छिपाई जायें।

(यथा)

मूल—जो कहौं केशव सोम सरोज सुधासुर भृंगन देह दहे हैं।
दाड़िम के फल शेफालि बिद्रुम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं॥
कोक, कपोत, करी, अहि, केहरि, कोकिल, कीर कुचील कहे हैं।
अंग अनूपम वा प्रिय के उनकी उपमा कहँ वेई रहे हैं॥१६॥

शब्दार्थ—सोम = चंद्र। सुधासुर = राहु। शेफालि = (सं० शेफाली) निवारी की कलियां (दांतोंका उपमान)। बिद्रुम = मूंगा।

हाटक = सोना (रंग का उपमान)। कोक = चक्रवाक (कुचों का)। कपोत = कबूतर (ग्रीवा का)। करी = हाथी (गति का)। अहि = सर्प (बाहों का)। केहरि = सिंह (कटि का)। कोकिल = (वाणी का उपमान)। कीर = शुक (नाक का)। कुचील = मैले, कुरूप।

भावार्थ—यदि यह कहूं कि चंद्रमा उसके मुख के तथा कमल उसके नेत्रों के समान हैं तो झूठ है, क्योंकि राहु और भ्रमर-गण ने इनके शरीरों को नीरस कर डाला है, अनार, शेफाली (निवारी की कलियाँ) मूंगे और सुवर्ण को अनेक कष्ट हैं (जिससे ये भी अपने अपने उपमेयों की समता नहीं कर सकते), चक्रवाक, कबूतर, हाथी, सर्प, सिंह, कोयल और शुक तो कुरूप कहे गये हैं (इससे ये भी अपने उपमेयों के लिये ठीक उपमान नहीं), अतः उस प्रिया के सब अंग अनूपम हैं, वे अपने उपमान आपही हैं (उनके लिये दूसरा उपमान है ही नहीं)

(व्याख्या)—उपमानों को दूषित ठहराकर उपमेय की प्रशंसा करना ही दूषणोपमा है। अंत में इसका रूप अनन्वयोपमा का सा लख पड़ता है।

७—(भूषणोपमा)

मूल—दूषण दूर दुराय जहँ, बरणत भूषण भाय।
भूषण उपमा होति तहँ, बरणत सब कबिराय॥ १७॥

भावार्थ—जहाँ उपमानों के दूषण छिपाकर केवल उनके गुणों का ही लिहाज़ करके उपमा कही जाय, वह भूष-णोपमा।

(यथा)

मूल—सुबरण युत, सुरबरन कलित, पुनि
भैरव सो मिलि, गति ललित, बितानी है।
पावन, प्रगट दुति द्विजन की देखियत,
दीपति दिपति अति, श्रुति सुखदानी है॥
सोभा सुभ सानी, परमारथ निधानी, दीह
कलुष कृपानी मानी, सब जग जानी है।
पूरब के पूरे पुन्य, सुनिये प्रवीन राय,
तेरी बानी मेरी रानी गंगा को सो पानी है॥१८॥

(नोट)—यहां श्लेष से काम लेकर वाणी को गंगाजल की समता दी गई है। गंगाजल के केवल गुण ही ग्रहण किये हैं, दूषण छोड़ दिये गये हैं। जितने विशेषण हैं वे सब द्व्यर्थक हैं, एक गंगाजल के लिये दूसरा वाणी के लिये। ध्यान से समझियेगा तो शब्दार्थ से ही भावार्थ भी समझ में आ जायगा।

शब्दार्थ—सुवरणयुत=१—सुन्दर रंग का (निर्मल, सफेद), २—सुन्दर मधुर अक्षर युक्त। सुर बरन कलित=१—श्रेष्ठ देवताओं युक्त, २—सुन्दर सातों सुरों से युक्त। भैरव=१-महादेव, २-भैरव राग। गतिललित=१-सुन्दरगति अर्थात मुक्ति प्रदायिनी, २-सुन्दर प्रवाह युक्त-धारा प्रवाह वत्। बितानी=१-खूब विस्तृत, २-विशेष तानों से युक्त। द्विज= १-ब्राह्मण, २-दांत। श्रुति=१—वेद, २-कान। परमारथ निधानी=१-मुक्ति का खजाना, २-सुन्दर गंभीर अर्थ का

खज़ाना। कलुष कृपानी = पापनाशक (गंगा जल पाप नाशक) है ही, बाणी इस कारण पाप नाशक है कि प्रवीणराय केवल राम भजन के पद गाती है)।

भावार्थ—हे मेरी रानी प्रवीणराय। तेरी बाणी गंगा जल सम है, क्योंकि वह रंग में सफेद है, बाणी मधुर वर्णों से युक्त है। गंगा जल सब सुरों (देवताओं) को भाता है, तेरी बाणी सातों श्रेष्ठ सुरों (स० री० ग० म० प० ध० नि०) से युक्त है। वह शिव से संबंध रखता है, बाणी भैरवराग से युक्त है। वह मुक्ति दाता है, बाणी की गति (प्रवाह) सुन्दर है— (गंगाजल नीचे को बहता है, यहाँ यह दोष छिपा कर केवल गुण ही कहा गया)। गंगा जल खूब विस्तृत भूमि पर बहता है, बाणी विशेष तानों से युक्त है। गंगा जल पवित्र है, बाणी भी व्याकरणानुसार शुद्ध है। गंगा जल के किनारे बहुत से ब्राह्मण देखे जाते हैं, बाणी बोलते समय तेरे दाँत देखे जाते हैं। वह चमकता है, बाणी बोलते समय दाँत चमकते हैं। वह वैदिक विधानों (सन्ध्या स्नान दानादि) को सुखद है, बाणी कानों को सुखद है। वह शोभा युक्त है, बाणी भी मांगलिक है (वेश्याओं का गान मांगलिक माना जाता है)। वह परमार्थ साधन का कारण है, बाणी भी परम सुन्दर गंभीर अर्थ मय है। वह बड़े पापों के लिये तलवार (नाशक है) तो तेरी बाणी भी (राम भजन मय होने से) वैसीही कलुष नाशिनी ही मानी जाती है। वह जगत्प्रसिद्ध है, तेरी बाणी भी प्रसिद्ध है। गंगाजल बड़े पूर्व पुण्यों से मिलता है, तेरा गान (बाणी) भी पूर्व पुण्यों से सुनने को मिलता है, अतः तेरी बाणी गंगाजल सम है।

८—(मोहोपमा)

मूल—रूपक के अनुरूपकाहिं. जानि कतहुँ मन जाय।
ताही सों मोहोपमा कहत सकल कबिराय ॥१९॥

भावार्थ—उपमान को देखकर उसेही उपमेय समझना मोहोपमा है हाल के आचार्य इसे भ्रांत्यालंकार मानते हैं।

(यथा)

मूल—खेलत न खेल कछू हांसी न हँसत हरि,
सुनत न गान कान तान बान सी बहै।
ओढ़त न अंबरन डोलत दिगंबर सो,
शंबर ज्यों शंबरारि दु.ख देह को दहै॥
भूलिहू न सूंघे फूल, फूल तूल कुम्हिलात
गात, खात बीरा हू न बात काहू सों कहै।
जानि जानि चंद मुख केशव चकोर सम,
चंदमुखी! चंद ही के बिंब त्यों चितै रहै ॥२०॥

शब्दार्थ—बान सी बहै = बाण के समान लगती है। शंबरारि दुःख = कामपीड़ा। तूल = समान। गात = शरीर। बीरा = पान। बिंब = मंडल। त्यों = तरफ, ओर।

भावार्थ—(सखी बचन नायिका प्रति) हे चंद्रमुखी! कृष्ण जी न तो कोई खेल खेलते हैं (चौपर शतरंजादि) न हँसते हैं, न गान सुनते हैं क्योंकि तान तो उनके कान में बाण सी लगती है। कपड़े भी नहीं ओढ़ते, दिगंबर से घूमा करते हैं, काम पीड़ा उनके शरीर को वैसेही दुःख देती है जैसे स्वयं कामने शंबर को

दिया था। फूल तो भूलकर भी नहीं सूँघते, उनका फूल सा शरीर कुम्हिलाता जाता है, न पान खाते हैं, न किसी से बात करते हैं। हे चंद्रमुखी! चन्द्रमा को तेरा मुख समझ कर चकोर के समान उसी के बिंब की ओर देखा करते हैं।

(व्याख्या)—मुख के भ्रम में चंद्रमा को ही मुख समझना, यही मोहोपमा है। इसी को अब भ्रम वा भ्रांति अलंकार मानते हैं।

९—(नियमोपमा)

मूल—एकै सम जहँ बरनिये, मन क्रम बचन बिशेष।
केशवदास प्रकास बस, नियमोपमा सु लेख ॥ २१ ॥

भावार्थ—जहां किसी उपमेय के अन्य उपमान का निरादर करके किसी एकही उपमान के तुल्य ठहरावें जिसपर कहनेवाले का मन कर्म बचन से विशेष प्रेम हो। इस प्रकार के प्रकाशन से वह उपमा एक प्रकार नियमित (परिमिति) हो जाती है, अतः उसे नियमोपमा कहते हैं।

(यथा)

मूल—कलित कलंककेतु, केतु अरि, सेत गात,
भोग योग को अयोग, रोग ही को थल सो।
पूनोही को पूरन पै आन दिन ऊनो ऊनो,
छिन छिन छीन छबि, छीलर के जल सो।
चंद सो जु बरनत रामचंद की दुहाई,
सोई मतिमंद कबि केशव मुसल सो।
सुंदर सुबास अरु कोमल अमल अति,
सीता जू को मुख सखि! केवल कमल सो ॥२२॥

(नोट)—शब्दार्थ और भावार्थ के लिये देखो हमारी 'केशव कौमुदी' प्रकाश ९ छंद ४१।

(व्याख्या)—मुख के दो उपमान हैं, एक चंद्रमा, दूसरा कमल। कहनेवाले को कमल अधिक पसंद है। अतः चंद्रमा के दोष दर्शाकर उसका निरादर करके केवल कमल ही उपनाम निर्धारित किया गया। ऐसा ही कथन नियमोपमा है।

१०—(गुणाधिकोपमा)

मूल—अधिकन हू तें अधिक गुण, जहां बरनियत कोय।
तासों गुण अधिकोपमा, कहत सयाने लोय ॥२३॥

भावार्थ—बड़ा से बड़ा वा अच्छे से अच्छा उपमान लें और फिर उपमेय को उससे भी अधिक अच्छा वर्णन करें।

(यथा)

मूल—वे तुरंग सेत रंग संग एक, ये अनेक,
हैं सुरंग अंग अंग पै कुरंगमीत से।
ये निशंक यज्ञ अंक, वे सशंक केशोदास,
ये कलंक रंक, वे कलंक ही कलीत से।
वे पिये सुधाहि, ये सुधानिधीश के रसै जु
सांचहू पुनीत ये, सुनीत वे पुनीत से।
देहिं ये दिये विना, बिना दिये न देहिं वे,
भये न, हैं न, होहिंगे न, इंद्र इंद्रजीत से ॥२४॥

(नोट)—पहले तो राजा इंद्रजीत के लिये बड़ा से बड़ा उपमान (इंद्र) लिया, फिर उससे भी बढ़कर उसका वैभव

कहा। और फिर यह भी कहा कि न हुए हैं, न हैं, न होंगे। अतः उपमेय इन्द्रजीत का गुण बहुत अधिक बढ़ गया।

शब्दार्थ—सुरंग=सुंदर रंग के। कुरंग=हिरण। यज्ञअंक= यज्ञ के चिन्ह (धूम अथवा स्वाहादि शब्द)। कलीत= (कलित), युक्त। सुधानिधीश=शिवजी। रस=भक्ति। सुनीत=सुनते हैं। पुनीत से=पवित्र से हैं, अर्थात् पूर्णतः पवित्र नहीं कुछ अपवित्र भी हैं।

भावार्थ—उनके साथ (इन्द्र के पास) सफेद रंग का केवल एक घोड़ा है; इनके (इन्द्रजीत के) पास अनेक सुंदर रंगों के और हिरन के समान तेज़ चालवाले अनेक घोड़े हैं। ये यज्ञ चिन्हों से निशंक रहते हैं, और वे सदा डरा करते हैं (कि यज्ञबल से कोई मेरा पद न छीन ले)। ये कलंक रहित हैं और वे कलंक युक्त है (अहल्या प्रसंग से) वे अमृतपान किये हुए हैं, और ये शिवभक्ति के रस को पान किये हैं। ये वास्तव में पवित्र हैं और उनको तो सुनते हैं कि पवित्र से हैं (क्योंकि देवराज हैं तो पवित्रात्मा होहीं गे)। ये बिना कुछ दिये ही सब को देते हैं, और वे बिना दिये कुछ नहीं देते। अतः इन्द्रदेव त्रिकाल में भी इन्द्रजीत समान नहीं कहे जा सकते—अर्थात् राजा इंद्रजीत इन्द्र से बढ़कर हैं।

११—(अतिशयोपमा)

मूल—एक कछू एकै विषे, सदा होय रस एक।
अतिशय उपमा होति तहँ, कहत सुबुद्धि अनेक ॥ २५ ॥

भावार्थ—जहां उपमानों को महज़ साधारण वस्तु ठहराकर निराद्दत करते हुए उपमेय की अति उत्कृष्टता वर्णन करें।

(यथा)

मूल-केशोदास प्रगट अकास में प्रकास मान,
ईश हू के शीश रजनीश अवरेखिये।
थल थल जल जल अमल अचल अति,
कोमल कमल बहु बरण बिशेषिये॥
मुकुर कठोर बहु, नाहिनै अचल यश,
बसुधा सुधा हू तिय अधरन लेखिये।
एक रस एक रूप जाकी गीता सुनियत,
तेरो सो बदन सीता! तोही बिषे देखिये॥२६॥

शब्दार्थ—ईश = शिव। रजनीश = चंद्रमा। अवरेखिये = देखते हैं। बहु = बहुत से। गीता = प्रशंसा।

भावार्थ—(यदि कहें कि चंद्रमा तेरे मुख सम है तो नितान्त झूठ है क्योंकि) प्रथम तो आकाश में प्रगट ही चंद्रमा को कलंकित देखते हैं, अलावा इसके शिव के सिर पर भी तो चंद्रमा है (जो निष्कलंक तो है पर अति क्षीण है)। और कमल तो जगह जगह प्रति जलाशय में निर्मल अचल और कोमल तथा बहुत वर्ण के हजारों पड़े हुए हैं (वे भी मुख के समान नहीं हो सकते)। आईने कठोर होते हैं और संसार में हजारों भरे हैं, और उनका यश भी अचल नहीं क्योंकि उनमें भी ज़ंग लगता है (चमक बिगड़ जाती है)। और अमृत तो संसार की अनेक स्त्रियों के ओठों में पाया जाता है (अतः वह भी एक साधारण वस्तु है)। हे सीता!

सदा एक रूप रस से रहनेवाला, जिसकी बड़ी प्रशंसा सुनती हूं, तेरा सा मुख तेरा ही है।

(नोट)—मेरी समझ में तो यह ठीक 'अनन्वय' अलंकार है।

१२—(उत्प्रेक्षितोपमा)

मूल—केशव दीपति एकही, होय अनेकन माँह।
उत्प्रेक्षित उपमा सोई, कहैं कबिन के नाह ॥२७॥

भावार्थ—उपमेय के जिस गुण का वर्णन करना मंजूर हो, वह गुण अनेकों में पाया जाय।

(यथा)

मूल—न्यारो ही गुमान मन मीननि के मानियत,
जानियत सबही सु कैसे न जनाइये।
पंचवान बाननि के आन आन भांति गर्व,
बाढ्यौ परिमान बिनु कैसे सो बताइये ॥
केशोदास सबिलास गीत रंग रंगनि,
कुरंग अंगनानि हू के आंगनानि गाइये।
सीता जी की नयन-निकाई हमही में है सु,
झूठी है नलिन खंजरीट हू में पाइये ॥२८॥

शब्दार्थ—गुमान = गर्ब। पंचवान = काम। परिमान बिनु = बे प्रमाण, बहुत अधिक। गीत = प्रशंसा। रंगरंगनि = अनेक तरह के। कुरंगअंगना = मृगी। आंगनानि = प्रति आंगन में, हर एक घर में। नयन-निकाई = नेत्र शोभा। नलिन = कमल। खंजरीट = खंजन।

भावार्थ—मछलियां समझती हैं कि सीता की सी नेत्र शोभा हम ही में है, यह सब भेद मैं जानती हूं तो कैसे न बताऊं। काम के बाणों को अन्य ही प्रकार का बेहद गर्व बढ़ गया है सो कैसे कहूं (वे समझते हैं कि सारी कटाक्ष तीक्षणता हमीं में है) मृगियों के नेत्रबिलास की अनेक प्रकार की प्रशंसा के गीत प्रत्येक घर में गाये जाते हैं। ये सब समझते हैं कि सीता के नेत्रों की शोभा हमी में है सो झूठी बात है, वैसी शोभा तो कमल और खंजन में भी पाई जाती है—अर्थात वैसी नेत्रशोभा अनेक स्थानों में पाई जाती है।

१३—(श्लेषोपमा)

मूल–जहां स्वरूप प्रयोगिये, शब्द एक ही अर्थ।
केशव तासों कहत हैं, श्लेषोपमा समर्थ ॥२९॥

भावार्थ—जहां ऐसे श्लिष्ट शब्द प्रयोग किये जाँय जिनका समान अर्थ उपमेय और उपमान दोनों में लगा सकें।

(यथा)

मूल–सगुन, सरस, सब अंग राग रंजित है,
सुनहु सुभाग बड़े भाग बाग पाइये।
सुंदर, सुबास तनु, कोमल, अमल मन,
षोड़स बरस मय, हरष बढ़ाइये ॥
बलित ललित बास, केशोदास सबिलास,
सुंदरि सँवारि लाई, गहरु न ल्याइये।
चातुरी की शाला मानि, आतुर ह्वै नंदलाल,
चंपे की सी माला बाला उर उरझाइये ॥३०॥

शब्दार्थ—सभाग = बड़े भाग्यमान। षोड़श बरष मय = सोलह वर्ष की (चंपा भी सोलह वर्ष की हो जाने पर अति सुगंधित पुष्प देती है)। गहरु न लाइये = देर मत कीजिये। आतुर ह्वै = अति शीघ्र।

(नोट)—भावार्थ सरल ही है। केवल इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इस छंद में वाला उपमेय और चंपे की माला उपमान है। विशेषण शब्द जितने हैं सब का एक ही अर्थ दोनों पर लगैगा।

१४—(धर्मोपमा)

मूल–एक धर्म को एक अँगु, जहां जानियतु होय।
ताही सों धर्मोपमा, कहत सयाने लोय॥ ३१॥

शब्दार्थ—'धर्म' शब्द का अर्थ यहां पर केवल 'वस्तु' है। अतः इस परिभाषा का अर्थ यह हुआ कि जहां किसी बस्तु (रूप, रस, गंध, गुण, द्रब्यादि) का केवल एक अंग जाना जाता हो वहां धर्मोपमा जानो।

(यथा)

मूल-ऊजरे उदार उर बासुकी बिराजमान,
हार के समान आन उपमा न टोहिये।
शोभिजैं जटान बीच गंगा जू के जल बिंदु,
कुंद कलिका से केशोदास मन मोहिये।
नख की सी रेखा चंद, चंदन सी चारु रज,
अंजन सिंगार हू गरल रुचि रोहिये।

सब सुख सिद्धि शिवा सोहैं शिव जू के साथ
जावक सो पावक लिलार लाग्यो सोहिये ॥ ३२ ॥

(नोट)—शब्दार्थ और भावार्थ के लिये देखिये 'केशवकौमुदी' प्रकाश २५, छंद नं० २५।

(व्याख्या)—इस छंद में शिव के रूप में शृंगार रस की केवल कुछ बातें ही (एक अंग) वर्णन की गई। शृंगार का पूर्ण रूप नहीं कहा। इस वर्णन से संयोग समय के समस्त (आपाद मस्तक) रूप का ज्ञान नहीं होता केवल कुछ रति चिन्हों का ज्ञान होता है। यही धर्मोपमा है।

१५—(बिपरीतोपमा)

मूल—पूरब पूरे पुन्य के, तेई कहिये हीन।
तासों बिपरीतोपमा, केशव कहत प्रबीन ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जो पहले पूरे भाग्यवान व्यक्ति रहे हों, उनकी हीनता वर्णन की जाय और इस तरह पर वे अतिहीन व्यक्ति के समान दर्शाये जायँ।

(यथा)

मूल—भूषित देह बिभूति, दिगबर, नाहि न अंबर अंग नवीनो।
दूरि कै सुंदर सुन्दरी केशव, दौरि दरीन में आसन कीनो ॥
दच्छिय मंडित दंडन सों, भुजदंड दोऊ असि दंड विहीनो।
राजनि श्रीरघुनाथ के राज कुमंडल छांड़ि कमंडल लीनो ॥३४॥

शब्दार्थ—विभूति=भस्म। अंबर=कपड़ा। दरी=कंदरा। असि=तलवार। दण्ड=राजदण्ड। कुमंडल=पृथ्वी मंडल (राज्य)

भावार्थ—श्रीरामजी के राज्यसमय में अन्य शत्रु राजाओं ने पृथ्वीमंडल का राज्य छोड़कर कमंडल धारण किया है (संन्यासी होगये हैं) उनकी देह भस्म से विभूषित है, दिगंबर हैं, नवीन वस्त्र अंग पर नहीं है, सुन्दर स्त्रियों को छोड़कर भागकर पहाड़ों की कंदराओं में जा घुसे हैं, उनके भुजदण्ड सन्यासदण्ड से मंडित है (सन्यासियों की लकड़ी लिये हैं) और तलवार तथा राजदंड (असा) से रहित है—(जो पहले राजा थे वे अब दंडी भिक्षुक होगये हैं)

(नोट)—इसमें उपमालंकार जान नहीं पड़ता, पर विचार से यह भासित होता है कि राजागण भिक्षुवत् हो गये हैं। समझ में नहीं आता कि केशव ने कैसे इसे उपमा के अन्तर्गत माना है।

१६—(निर्णयोपमा)

मूल—उपमा अरु उपमेय को, जहँ गुण दोष विचार।
निर्णय उपमा होति तहँ, सब उपमन को सार ॥ ३५ ॥

(नोट)—इसमें उपमान के दोषों और उपमेय के गुणों का निर्णय करके समता करते हैं। दूषणोपमा और नियमोपमा की परिभाषाओं से इसको मिलाकर भेद अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

दूषणोपमा में उपमान के दूषण दिखलाने का तात्पर्य होता है। नियमोपमा में अन्य उपमानों को दूषित ठहरा कर उपमेय को एक उपमान के तुल्य निर्धारित करते हैं।

(यथा)

मूल-वासों मृग अंक कहैं, तोसों मृगनैनी सबै,
वह सुधाधर, तुहूं सुधाधर मानिये !
वह द्विजराज, तेरे द्विजराजी राजै, वह
कलानिधि, तुहूं कलाकलित बखानिये।
रत्नाकर के हैं दोऊ केशव प्रकाश कर,
अंबर विलास, कुवलय हितु गानिये।
वाके अति सीतकर, तुहूं सीता! सीतकर,
चंद्रमा सी चंद्रमुखी सब जग जानिये ॥ ३८ ॥

(नोट)—अर्थ के लिये देखो 'केशवकौमुदी', प्रकाश ९ छंद नं० ४०।

(व्याख्या)—जो जो गुण उपमान (लक्षण) अर्थात् चंद्रमा में हैं वे सब उपमेय (लक्ष्य) अर्थात् सीता में भी हैं, अतः उपमेय किसी प्रकार उपमान से कम नहीं।

१८—(असंभावितोपमा)

मूल-जैसो भाव न संभवत, तैसो करत प्रकास।
होत असंभावित तहां, उपमा केशवदास ॥ ३९ ॥

भावार्थ—किसी बात को असंभव प्रमाणित करने को असंभावित उपमान देना।

(यथा)

मूल-जैसे अति शीतल सुबास मलयज माहिं,
अमल अनल बुद्धिबल पहिचानिये।

जैसे कौनो कालबश कोमल कमल माहिं,
केशरै ई केशोदास कंटक से जानिये।
जैसे बिधु सधर मधुर मधुमय माहिं,
मोहै मोहरुख बिष बिषम बखानिये।
सुन्दरि, सुलोचनि, सुबचनि, सुदति तैसे,
तेरे मुख आखर परुषरुख मानिये ॥४०॥

शब्दार्थ—मलयज=चंदन। केशरैई=कमल केसर को ही, (किंजल्क को ही)। सधर=धड़ सहित (पूर्ण, अखंडित)। मधु=अमृत। मोहै=मोह से। मोहरुख=मूर्च्छित होनेवाली (विरहिनी)। सुदति=सुंदर दांतों वाली। आखर=अक्षर, बचन। परुषरुख=कठोर से (कुछ कुछ कठोर) सुंदरि, सुलोचनि, सुबचनि, सुदति=ये शब्द संबोधन में हैं।

भावार्थ—हे सुन्दरी, सुलोचनी, सुवचनी और सुदंती! तेरे बचन वैसे ही कठोर हैं, जैसे सुगंधति और शीतल चंदन में बुद्धिबल से स्वच्छ अग्नि पहचानी जाती है, या जैसे कालवश (विरह अवस्था में) कोमल कमलकेशर (किंजल्क) ही कांटे से जान पड़ते हैं, या जैसे पूर्ण और मीठे अमृतमय चन्द्रमा में गलती से मूर्च्छित होता हुआ विरही विषम विष का होना बखानता है—अर्थात् जैसे चन्दन में अग्नि का होना, किंजल्क का कांटा होना, और चन्द्रमा में बिष होना असंभव है, वैसे ही तेरे बचनों में कठोरता असंभव है।

(नोट)—मेरी सम्मति से यहां एक प्रकार का 'मिथ्याध्यवसित' अलंकार सा जान पड़ता है।

१९—(विरोधोपमा)

मूल—जहँ उपमा उपमेय सों, आपुस माहिं विरोध ।
सो विरोध उपमा सदा, बरणत जिन्हैं प्रबोध ॥ ४१ ॥

(यथा)

मूल—कोमल कमल, कर कमला के भूषण को,
केशोदास दूषण शरद शशि ठाई है ।
शशि अति अमल अमृतमय मणिमय,
सीता को बदन देखि ताको मलिनाई है ।
सीता को बदन सब सुख को सदन, जाहि,
मोहत मदन, दुख कदन निकाई है ।
आधो पल माधो जू के देखे बिनु सोई शशि,
सीता के बदन कहँ होत दुखदाई है ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—दूषण ठाई है = विनाशक का स्थानापन्न है, विनाशक है । मणि = कांति । कदन = नाशक । माधो = राम जी ।

भावार्थ—लक्ष्मी के हाथ के भूषणरूपी कोमल कमल के लिये शरदशशि विनाशक ही है । चंद्रमा अति निर्मल है, अमृतमय तथा कांति वाला है, तो भी सीता का मुख देखकर वह मलीन हो जाता है । सीता का मुख सब सुखों का स्थान है, जिसे देखकर काम भी मोहित होता है, और जिसकी सुंदरता दुख को नाश करती है । वही चंद्रमा सीता के मुख को दुःख दाई हो जाता है यदि थोड़ी देर वे राम को न देखें ।

(व्याख्या)—यहां शशि और सीतामुख से परस्पर विरोध है । पर साधारणतः चंद्रमा मुख का उपमान ही माना जाता है ।

२०—(मालोपमा)

मूल—जो जो उपमा दीजिये, सो सो पुनि उपमेय ।
सो कहिये मालोपमा केशव कविकुल गेय ॥ ४३ ॥

भावार्थ—पहले कोई बात कही जाय जिसमें उपमेय और उपमान हों । फिर वही उपमान उपमेय बनाया जाय और नया उपमान कहा जाय । क्रमशः ऐसा ही कई बार कहा जाय और अंतिम उपमान उस वस्तु को कहें जिसका वर्णन करना अभीष्ट है ।

(यथा)

मूल—मदन मोहन ! कहौ रूप को रूपक कैसो ?
मदन बदन ऐसो जाहि जग मोहिये ।
मदन बदन कैसो शोभा को सदन श्याम ?
जैसो है कमल रुचि लोचनानि जोहिये !
कैसो है कमल ? शुभ ! आनँद को कंद जैसो,
कैसो है सुकंद ? चंद उपमान टोहिये ।
कैसो है जु चंद वह ? कहिये कुवँर कान्ह,
सुनौ प्राण प्यारी जैसो तेरो मुख सोहिये ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—मदनमोहन = हे कृष्ण (संबोधन में) । रूप = सौन्दर्य रूपक = उपमान । श्याम = (संबोधन में) हे श्याम । रुचि = छबि । जोहिये = देखिये । शुभ = कृष्ण (संबोधन में) । कंद = बादल । टोहिये = खोजिये ।

(नोट)—इसमें राधिका प्रश्न करती हैं, कृष्ण उत्तर देते हैं ।

भावार्थ—राधिका—हे मदनमोहन कृष्ण ! सौन्दर्य का उपमान क्या है ? कृष्ण—काम का मुख जिस पर संसार मोहित होता है। रा०—हे श्याम ! काम का मुख कैसा शोभावान है ?
कृ०—जैसा कमल है। उसकी छबि आंख से देख लो।
रा०—हे शुभ ! कमल कैसा (सुन्दर) है ?
कृष्ण—जैसे आनंद बरसाने वाला बादल।
रा०—वह बादल कैसा सुंदर है ?
कृष्ण—उसका उपमान तो ढूंढने से चन्द्रमा ही मिलता है।
रा०—हे कुंवर कान्ह ! वह चन्द्र कैसा सुन्दर है ?
कृष्ण—हे प्राण प्यारी ! जैसा सुन्दर तेरा मुख है।

२१—(परस्परोपमा)

मूल–जहां अभेद बखानिये, उपमेय रु उपमान।
तासों परस्परोपमा, केशवदास बखान ॥ ४५ ॥

(यथा)

मूल–बारे न बड़े न बृद्ध, नाहिनै गृहस्थ सिद्ध,
बावरे न बुद्धिवंत, नारी औ न नर से।
अंगी न अनंगी तन, ऊजरे न मैले मन,
स्यार ऊ न शूरे रन, थावर न चर से।
दूबरे न मोटे, राजा रंकऊ न कहे जायँ,
मर न अमर, अरु आपने न पर से।
वेद हू न कछु भेद पावत है केशोदास,
हरि जू से हेरे हर, हरि हेरे हर से ॥ ४६ ॥

(नोट)—भावार्थ सुगम है। तात्पर्य यह है कि शिव विष्णु समान हैं, और विष्णु शिव समान हैं। इसे अब लोग 'उपमेयोपमा' अलंकार कहते हैं।

(विशेष)—यहाँ तक २१ प्रकार की गिनाई हुई उपमायें कहीं गईं। अब आगे केशव एक संकीर्णोपमा और भी बतलाते हैं जिसे 'भूषण' ने' ललितोपमा' कहा है।

२२—(संकीर्णोपमा)

मूल—बंधु, चोर, बादी, सुहृद, कल्प, प्रच्छ, प्रभु जानि।
अंगी, रिपु, सोदर सहित, इनके अर्थ बखानि ॥४७॥

भावार्थ—संकीर्णोपमा के वाचक शब्द ये हैं। इनके पर्याय भी हो सकते हैं। बंधु, चोर, वादी, सुहृद (मित्र), कल्प (शरीर), प्रच्छ (बिराही) प्रभु (नाथ, मालिक, साहेब), अंगी, रिपु (शत्रु), सोदर (भाई) इत्यादि।

(यथा)

मूल—विधु को सो बंधु, किधौं चोर हास्यरसको कि
कुंदन को बादी, किधौं मोतिन को मीत है।
कल्प कलहंस को, कि छीरनिधि छवि प्रच्छ,
हिम—गिरि—प्रभा—प्रभु, प्रगट पुनीत है।
अमल अमित अंगी गंगा के तरंगन को,
सोदर सुधा को, रिपु रूपे को अभीत है।
देस देस दिस दिस परम प्रकाशमान,
किधौं केशोदास रामचन्द्र जू को गीत है ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—कल्प = शरीर। छीर निधि छबि प्रच्छ = छीर समुद्र से विवाद करनेवाला कि तेरी छबि क्या मेरी छबि से अच्छी है। रूपा = चांदी। गीत = कीर्तिमय विरद।

(नोट)—भावार्थ सुगम। ऊपर कथित शब्दों से ठीक समता तो नहीं, पर समता का सा भाव अवश्य भासित होता है, अतः ये शब्द संकीर्णोपमा के वाचक हैं।

(विशेष)

मूल—कोकिल से अति कृष्ण घन, करिणी सम गिरिराज।
मृग सूरो मृगराज सो, ऐसे वरणत लाज ॥ ४६ ॥

भावार्थ—कोकिल से काले बादल, पहाड़ सी हथिनी, सिंह समान मृग कहना लज्जा की बात है—अर्थात् अनुचित उपमा देना ठीक नहीं।

नोट—इसके बाद किसी किसी प्रति में 'नख शिख' वर्णन है। पर हम उसे क्षेपक समझते हैं, अतः छोड़ दिया गया है।

(चौदहवाँ प्रभाव समाप्त)

———

पंद्रहवां प्रभाव

३६—(यमक अलंकार)

मूल—पद एकै नाना अरथ जिनमें जेतो बित्तु ।
ताभें ताको काढ़िये यमक माहिं दै चित्तु ॥ १ ॥

भावार्थ—पद एक से हों, पर अर्थ विभिन्न हों। जिसका जितना ज्ञानबल हो वह उतने अर्थ निकाले। यही यमक है।

मूल—आदि पदादिक यमक सब लिखे ललित चितलाय ।
सुनहु सुबुद्धि उदाहरण केशव कहत बनाय ॥ २ ॥

भावार्थ—आदिपद, द्वितीयपद, तृतीयपद इत्यादि अनेक प्रकार के यमक हैं, उनके उदाहरण देखिये।

(आदिपद यमक)

मूल—सजनी सज नीरद निरखि हरषि नचत इत मोर ।
पीय पीय चातक रटत चितवहि हरि की ओर ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे सजनी ! बादलों की सज देखकर हर्षित होकर यहां मोर नच रहे हैं (अपने प्रियतम का पाकर हर्षित होने का समय है) और चातक भी पीय पीय (प्रियतम पर प्यार करने का समय है) रटता है, अतः तू भी (मान छोड़कर) कृष्ण की ओर देख ।

सजनी पहले चरण में आदिपद

किधौं केशोदास रामचन्द्र चूर्णों में भी नामानुसार

(यमकभेद कथन)

मूल—अव्ययेत सव्ययेत पुनि, यमक बरन दुइ देत ।
अव्ययेत बिनु अंतरहि, अंतर सो सव्ययेत ॥ ४ ॥

भावार्थ—यमक के दो भेद हैं । जहां पदों में अन्तर न हो (सटे हुए आवें) वहां अव्ययेत जानो और जहां पदों में अंतर हो (बीच में अन्य पद आजायँ) वहां सव्ययेत जानो । ऊपर का उदाहरण अव्ययेत है । क्योंकि सजनी सजनी और पीय पीय शब्द सटे हुए हैं । नीचे के उदाहरण नं० १७ तक अव्ययेत यमक हैं ।

(अव्ययेतान्तर द्वितीय पद यमक)

मूल—मान करति सखि कौनसों, हरि तू हरि तू आहि ।
मान भेद को मूल है, ताहि देखि चित चाहि ॥ ५ ॥

(व्याख्या)—इस दोहे के दूसरे चरण में 'हरितू हरितू' में अव्ययेत यमक है ।

भावार्थ—हे सखी ! तू मान किससे करती है- तू तो हरि (कृष्ण) ही है अर्थात् तुझमें और कृष्ण में कुछ भेद नहीं है, अतः तू आहि (विरह दुःख जनित उच्च स्वांस) हरण कर (तू क्रोध से और कृष्ण तेरे विरह से जो ऊंची सांसे भरते हैं उन्हें रोक—मान छोड़ उनसे मिल) तू चित्त से विचार कर, मान ही भेद की जड़ है—मान छोड़ दे तो तू और कृष्ण एक ही हैं ।

(तृतीय पाद यमक)

मूल—सोभा सोभित आंगन रु, हय हींसत हयसार ।
बारन बारन गुंजरत, बिन दीने संसार ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—हयसार = (हयशाला) अस्तबल, पड़ा। बारन = द्वार। बारन = हाथी।

भावार्थ—सुशोभित आंगन (स्त्री पुत्रादि से शोभित घर) घोड़ों की हींस से भरा अस्तबल, द्वार पर हाथी चिग्घाड़ते हुये, ऐसा सुख इस संसार में क्या बिना दिये (बिना पूर्व पुण्य के) मिल सकता है ? अर्थात् नहीं मिलता।

नोट—इसमें तृतीय पद में बारन बारन अव्ययेत यमक है।

(चतुर्थ पाद यमक)

मूल—राधा ! केशव कुवँर की, बाधा हरहु प्रवीन।
नेक सुनावहु करि कृपा, शोभन वीन नवीन ॥ ७ ॥

नोट—अर्थ स्पष्ट है। चौथे चरण में 'नवीन नवीन' यमक है।

(द्विपाद यमक)

मूल—हरिके हरिके बल मनहिं, सुनि बृषभानु कुमारि।
गावहु कोमल गीत दै, सुख करता करतारि ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे बृषभानु कुमारी ! सुनो, कृष्ण के बल और मन को हरण करके, यहां तुम सुखदायक करताली बजा बजा कर मधुर गीत गा रही हो ? (और वे वहाँ व्याकुल पड़े हैं, ऐसा न चाहिये, चलकर उन्हें सँभालो)

नोट—इसमें आदि और अन्त चरण में अव्ययेत यमक है।

(प्रथम और तीसरे में)

मूल-अलिनी अलि नीरज बसै, तरु प्रति युगल बिहंग।
त्यों मनमथ-मनमथन हरि, बसैं राधिका संग ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे भौंरी और भौंरा एकत्र होकर कमल में बसते हैं और पेड़ पर पक्षी का जोड़ा बसता है, उसी प्रकार काम के

मन को भी मथन करनेवाले कृष्ण और राधिका एक संग ही रहते हैं।

(दूसरे और तीसरे में)

मूल—आप मनावत प्रानप्रिय, मानिनि ! मानि निहारि।
परम सुजान सु-जान हरि, अपने चित्त बिचारि ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मानिनी ! देख, तुझे स्वयं तेरा प्रीतम मना रहा है, अतः मान जा (मान छोड़ दे), कृष्ण को परम सुजान जानकर अपने चित्त में विचार कर (कि जब ये सुजान होकर तुझे मना रहे हैं तो कुछ तो तुझको मानते हैं, नहीं तो क्यों मनाते, क्या उन्हें कोई दूसरी नायिका नहीं मिल सकती)

(दूसरे और चौथे में)

मूल—जिन हरि जग को मन हर्यौ, बाम ! बामदृग चाहि।
मनसा बाचा कर्मना, हरि बनिता बनि ताहि ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे बाम ! जिस कृष्ण ने तिरछी नजर से देखकर सारे संसार का मन हर लिया है, तू मन वचन कर्म से उसी कृष्ण की स्त्री बन जा।

(तीसरे और चौथे में)

मूल—आजु छबीली छबि बनी, छाँड़ि छलनि को संग।
तरुनि ! तरुनि के तर मिलै, केशव के सब अंग ॥ १२॥

भावार्थ—आज श्रीकृष्ण की छबि खूब बनी है (अच्छा शृंगार किया है) अतः हे तरुणी ! तू छल छोड़ कर वृक्षों के नीचे (किसी कुंज में) कृष्ण के सब अंगों से लिपट कर उनसे मिल।

(त्रिपाद यमक)

(चतुर्थ पद रहित)

मूल-सारस सारस नैनि सुनि, चंद्र चन्द्रमुखि देखि ।
तू रमनी रमनीयतर, ताते हरि मुख लेखि ॥ १३ ॥

नोट—इसमें चौथे पद में यमक नहीं है, शेष तीनों में है ।

शब्दार्थ—सारस = (स + आरस) आलस बलित । सारस-ननी = कमल नयनी ।

भावार्थ—हे अलसीली कमलनयनी ! सुन, हे चन्द्रमुखी ! चंद्रमा को देख (चंद्रमा निकल आया और तू अभी तक आलस में पड़ी हुई है, उठ कृष्ण के पास चल) तू अन्यापेक्षा अधिक सुन्दरी है, इसीसे कृष्ण तुझे अपनी मुख्य प्यारी समझते हैं (चल तुझे बोलाते हैं)

(तृतीय पद रहित)

मूल-देखि प्रबाल प्रबाल हरि, मन मनमथ रस भीनि ।
खेलन वह सुन्दरि गई, गिरि सुंदरी दरीनि ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—प्रवाल = नवपल्लव, किशलय । प्रबाल हरि = उत्कृष्ट बालक रूप कृष्ण (षोड़श वर्षीय युवक कृष्ण) । गिरिसुन्दरी = पहाड़ी स्त्री । दरी = कंदरा ।

भावार्थ—वृक्षों के नवीन पत्ते देखकर (बसंतागमन से उद्दीपन पाकर) युवक कृष्ण की ओर अनुरागिता होकर, वह सुन्दर पहाड़ी स्त्री, कंदराओं में खेल खेलने के लिये गई—(इस में तीसरे पद में यमक नहीं, शेष तीनों में है) ।

(तृतीय पद रहित)

मूल—परमा-नद पर-मानदहि देखत बन उपकंठ।
यह अबला अब लागिहै मनुहरि हरि के कंठ ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—परमानद=सुन्दरता के नद (अति सुन्दर)। पर मानद=औरों को मान देनेवाले। उपकंठ=निकट, किनारे। मन हरि=मन को हरण करके।

भावार्थ—सुन्दरता को नद और औरों को सम्मान देनेवाले (कृष्ण) को बन के किनारे (एकांत में) देखकर, यह अबला कृष्ण का मन हर कर अब उनके कंठ से लगैगी।

नोट—इसके दूसरे पद में यमक नहीं है। शेष तीनों में है।

(प्रथमपद रहित)

मूल—जूझि गयो संग्राम में, सूरज सूरज लेखि।
दिवि-रमनी रमनीय ताजि, मूरति रति सम देखि ॥१६॥

शब्दार्थ—सूरज=(सूर+ज) शूर का पुत्र अर्थात शूर (स्वयं सुभट)। दिवि रमनी=अप्सरा (पुंश्चली)। रमनीय=इधर उधर घूमने वाली।

(विशेष) कोई दूती संध्या होने के बाद नायक को नायिका से मिलाना चाहती है, अतः वह नायक से कहती है:—

भावार्थ—हे सुभट! (रति संग्राम में अजेय) अब सूर्य को संग्राम में जूझा हुआ समझ कर (सूर्यास्त हो चुका है, अतः) इस इधर उधर घूमने वाली पुंश्चली को छोड़कर, चल कर उस रति समान मूर्तिवाली (अति प्रेमिनी और असूर्यम्पश्या—क्यों कि वह दिन में कहीं बाहर नहीं निकलती है) नायिका को देखो (चल कर उससे मिलो)। इसके प्रथम चरण में यमक नहीं है, शेष तीनों में है।

(चतुष्पादयमक)

मूल—नहीं उरबसी उर बसी, मदन मद न बश भक्त ।

सुर तरुवर तरुवर तजैं, नंद-नंद आसक्त ॥ १७ ॥

भावार्थ—भक्तजन ऐसे होते हैं कि न तो उर्वशी उनके मन में बास करती है और न वे काम के नशे के बश होते हैं। जो नंद-नंदन पर आसक्त होते हैं (कृष्ण के अनन्य भक्त होते हैं) वे कल्प वृक्ष को भी साधारण वृक्ष की तरह छोड़ते हैं (उससे भी कुछ नहीं माँगते) ।

(सव्ययेत यमक)

मूल—माधव सो धव राधिका, पावहु कान्ह कुमार ।

पूजहु माधव नियम सों, गिरिजा को भरतार ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—माधव = विष्णु । धव = पति । माधव = बैशाखमास ।

भावार्थ—हे राधिका । यदि चाहती हो कि विष्णु के समान (प्रतापी और सुन्दर) कृष्ण को पति रूप से पाओ, तो नियम से बैशाख मास में शिव का पूजन करो ।

(व्याख्या)—इसमें धव, धव, और माधव माधव शब्दों के कारण यमक है, पर ये शब्द सटे हुये नहीं हैं, बीच में और शब्द आ गये हैं, अतः सव्ययेत यमक है ।

(अंतादि निरंतर सव्ययेत)

मूल—पाप भजत ज्यों कहत ही, रामचन्द्र अवनीप ।

नीप प्रफुल्लित लखत त्यों, बिरही प्रिया समीप ॥ १९ ॥

(नोट)—इसमें नीप, नीप के कारण यमक है, पर एक शब्द चरण के अंत में है और दूसरा दूसरे चरण के आदि में है ।

यद्यपि इन शब्दों में शब्दों का अंतर नहीं है, पर अन्यान्य चरणों में होने से सव्ययेत है।

शब्दार्थ—अवनीप = राजा। नीप = कदंबवृक्ष।

भावार्थ—राजा राम का नाम लेने से जैसे पाप भगते हैं, (अर्थात बड़ी शीघ्रता और त्वरा से) त्यौंहीं कदंब फूलने पर बिरही अपने प्रिय के समीप को भगता है।

(आदि अन्त सव्ययेत)

मूल—सीय स्वयंबर मांझ जिन, युवतिन देखे राम।
ता दिन ते तिन सबन सखि, तजे स्वयं बर धाम ॥२०॥

भावार्थ—सीता के स्वयंबर में जिन युवतियों ने राम को देखा, हे सखी! उसी दिन से उन सबों ने स्वयं अपने पतियों और घरों को त्याग दिया (और बन में जाकर तप करने लगीं, ताकि उन्हें भी राम सा बर मिले)। इसमें आदिमें और अंत में 'स्वयंबर' शब्द है।

(दूसरे चौथे चरण में)

मूल—जैसे छुवै न चंद्रमा, कमलाकर सविलास।
तैसे ही सब साधु पर, कमला कर न उदास ॥२१॥

शब्दार्थ—कमलाकर = (कमल + आकर) कमल समूह। सविलास = प्रफुल्लित। कमला = लक्ष्मी (धन)। कर = हाथ। उदास = उदासीन (यह शब्द 'साधु' का विशेषण है)।

भावार्थ—जैसे चन्द्रमा फूले कमलों को नहीं छूता, तैसे ही विरक्त साधुजन पराई लक्ष्मी को हाथ से नहीं छूते।

(पहले, तीसरे, चौथे चरण में)

मूल—अंग देस में देखिये, लक्ष्मी लच्छि सरूप।
अंग नमे जैसे लसत, अंगनानि के रूप ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—लक्ष्मी = धन। लच्छिसरूप = अति सुंदर। नमें = नम्र (कच्च कुचादि भार से नमित)। 'अंग' शब्द से यमक।

भावार्थ—कचकुचादि के भार से नमित अंगवाली स्त्रियों के रूप जैसे अच्छे लगते हैं (अति सुन्दर जान पड़ते हैं) वैसेही अंग देश का धन अति सुन्दर है। (अर्थात् अंग देश में बहुत धन है)

(पहले दूसरे तीसरे चरण में)

मूल—दान देत यों शोभियत, दानरतन के हाथ।
दान सहित ज्यों राजहीं, मत्त गजानि के माथ॥ २३॥

शब्दार्थ—दानरत = दानी। दान = गजमद। 'दान' शब्द से यमक।

भावार्थ—दानी पुरुषों के हाथ दान देते समय ऐसे शोभित होते हैं, जैसे मस्त हाथियों के मस्तक गजमद सहित शोभा देते हैं।

(पूर्वोत्तर सव्ययेत)

मूल—परम तरुणि यों शोभियत, परम ईश अरधंग।
कल्पलता जैसे लसै, कल्पवृक्ष के संग॥ २४॥

शब्दार्थ—परम = सुन्दर। परम = सर्व श्रेष्ठ। कल्प = सफेद।

भावार्थ—सर्व श्रेष्ठ शिव के अर्द्धांग में सुन्दर तरुणी (पार्वती) ऐसी शोभती हैं जैसे कोई सफेद लता कल्प वृक्ष से लिपटी हो।

नोट—पूर्वार्द्ध में परम, परम का यमक और उत्तरार्द्ध में कल्प कल्प का यमक है।

(चतुष्पाद सव्ययेत)

मूल—नर कौं कहिं राखत सदा, नरपति श्री रघुनाथ।
नरकनिवारण नाम जग, नर बानर को साथ ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—नर = कपूर। क = (सं० कं०) सुख। नरपति = राजा। नर = (चौथे चरण में) शिव।

भावार्थ—श्री राम राजा प्रजा के सुख की कपूर की तरह रक्षा करते हैं (जैसे कपूर यत्न से न रक्खा जाय तो वह उड़ जाता है—इसी प्रकार राम राजा अपनी प्रजा को सुखी रखने का यत्न करते हैं) और जग में सब जानते हैं कि उनका नाम नरक से बचाने वाला है। और आप हैं कैसे कि शिव से लेकर बानरों तक का साथ करते हैं (बड़े छोटे सब से आसानी से मिलते हैं)।

नोट—इसके चारो चरणों के आदि में 'नर' शब्द है अतः यमक।

(यमक के भेद)

मूल—सुखकर दुखकर भेद द्वै, सुखकर बरने जान।
यमक सुनौ कविराय अब, दुखकर करौं बखान ॥ २६ ॥

भावार्थ—यमक के पुनः दो भेद कहते हैं—(१) सुखकर (सरल) (२) दुखकर (कठिन)। केशव कहते हैं कि ऊपर जितने यमक कहे गये उन्हें सुखकर जानो। अब आगे दुखकर यमक कहते हैं।

मूल-मान-सरोवर आपने, मानस मा नस चाहि।
मानस-हरि के मीन को, मानस बरनै नाहि ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—मान = गर्व । मान-सरोवर = गर्व के ताल । (अति गर्वीला) । मानस = मन, चित्त । मा = लक्ष्मी = नस = नश्य, नाशमान । चाहि = देख, विचार । मानस-हरि = हरि रूपी मान सरोवर । मानस = मनुष्य ।

भावार्थ—हे अहंकार के ताल (गर्वीले धनी मनुष्य) अपने मन से लक्ष्मी को नाशमान विचार ले (जिस लक्ष्मी के बल पर तू घमंड कर रहा है यह नाशमान है) । हरि रूपी मान-सरोवर में रहने वाली मछली को (वे वैष्णव साधु जो सदा ही हरि भक्ति के पानी में डूबे रहते हैं) तू मनुष्य ही नहीं कहता (मनुष्य ही नहीं समझता) यह बात अच्छी नहीं ।

(पुनः)

मूल—बरनी बरनी जाति क्यों, सुनि धरनी के ईश ।

रामदेव नरदेव मणि, देव देव जगदीश ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—बरनी = (बरणी) वह दान जो बरण किये हुए ब्राह्मण को देते हैं । रामदेव = श्रीराम जी (इसमें 'देव' शब्द आदर सूचक है) नरदेव = राजा (इसमें 'देव' शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ वा पूज्य) देवदेव = देवताओं में सर्वाधिक प्रकाशमान (इसमें प्रथम 'देव' का अर्थ है स्वर्गनिवासी अमर व्यक्ति और दूसरे 'देव' का अर्थ है प्रकाशमान)

(नोट)—इसमें दो बार 'बरनी' शब्द और चार बार 'देव' शब्द आया है । अर्थ अलग २ हैं अतः यमक है । अर्थ समझने में कुछ कठिनाई है , अतः दुखकर यमक है ।

भावार्थ—(किसी व्यक्ति का कथन किसी राजा प्रति) हे राजन् ! (धरणी के ईश) राम जी ने निज यज्ञ में जो ब्राह्मणों को दान दिया था उसका वर्णन मुझसे कैसे हो सकता है,

क्योंकि श्रीराम जी राजाओं के भूषण (सर्व श्रेष्ठ राजा), देवताओं में सर्वाधिक दिव्य ज्योतिधारी और समस्त जगत के ईश हैं।

(पुनः)

मूल–राजराज सँग ईश द्विज–राज राज सनमान।
बिष बिषधर अरु सुरसरी, बिष बिषम न उर आन ॥२९॥

शब्दार्थ—राज राज = कुबेर। ईश = शिव। द्विजराज = चंद्रमा। राजसनमान = राजाओं द्वारा आदर। विषधर = सर्प। सुरसरीविष = गंगा जल। विषम = बे जोड़। न उर आन = मत समझो।

भावार्थ—शिव के संग में कुबेर हैं, चंद्रमा हैं, वे राजाओं से सम्मानित भी है (ब ड़ेबड़े राजा शिव का पूजन करते हैं) विष है, सर्प है, और गंगा जल भी है, इन बस्तुओं को देख कर बेजोड़ की बात मत समझो अर्थात् शिव का समाज वा उनका रूप असभ्य वा असौम्य नहीं कहा जा सकता।

नोट—इस दोहे में यति भंग दोष है, पर अलंकार निर्वाह के हेतु हुआ है, अतः क्षम्य है। यह दोष दोष न माना जायगा।

(पुनः)

मूल–प्रमान मान नाचही। अमान मान राचही।
समान मान पावही। बिमान मान धावही॥ ३० ॥

शब्दार्थ—मान = (प्रथम चरण में) ताल। मान = (दूसरे चरण में) ज्ञान। मान = (तीसरे चरण में) आदर। मान = (चौथे चरण में) अहंकार। अमान = बेहद्द।

भावार्थ—(कोई गुरु अपने अहंकारी शिष्य को समझाता है) तू अपनी ताल के अनुसार नाचता है, और उसी को तू

समझता है कि मैं नाट्यकला का बेहद ज्ञान रखता हूं (पर तू नाचना नहीं जानता)। तू जैसा नाचता है उसी के बराबर आदर पाता है (अर्थात् अच्छा नाच नहीं नाचता अतः फल भी नहीं पाता) तो भी अहंकार के विमान में चढ़ा दौड़ता है। तात्पर्य यह है कि तेरे कृत्य अच्छे नहीं, इसी से तुझे सुख नहीं मिलता तो भी तुझे घमंड है कि तू अच्छा पुण्यात्मा है और बहुत सुखी है।

(पुनः)

मूल- कुमति हारि संहारि हठ, हितहारिनी प्रहारि ।
कहा रिसाति बिहारि बन, हरि मनुहारि निहारि ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—हारि = दूर कर दे। हितहारिनी = अनिष्टकारिणी। प्रहारि = खूब दण्ड दे। मनुहारि = नम्र मनावन, खुशामद। निहारि = देख।

भावार्थ—दुर्मति को दूर कर दे, हठ को मार डाल, अनिष्ट-कारिणी सखियों को (चुगुलखोर लोगों को) खूब दण्ड दे। क्यों मान करती है, कृष्ण की खुशामद को देख और उनके साथ बन में बिहार कर।

(नोट)—इस में 'हारि' शब्द विविध रूप से अनेक अर्थ देता है।

(पुनः)

मूल—सुर तरवर मै रंभा बनी। सुरत रव रमै रंभा बनी।
सुर-तरंगिनी कर किंनरी। सुरत रंगिनीकर किंनरी ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—सुर तरवर मैं = पारिजात वृक्ष युक्त। रंभाबनी = कद-लीबन। सुरत रव = अपने ही गान वाद्य के शब्द में रत। रमै ॥

घूमती है। रंभा बनी = रंभा सी बनी ठनी। सुर-तरंगिनी = सातों सुरों की नदी (जिससे सुरों की तरंगें निकलती हैं)। किनरी = सारंगी। सुरत = (सूरत) रूप। रंगिनी कर = रंजित करनेवाली, अनुरक्त करनेवाली। किनरी = किन्नर कन्या।

(विशेष)—कोई दूती किन्नरी रूप धारिणी राधिका से कृष्ण को मिलाना चाहती है अतः कृष्ण से कहती है।

भावार्थ—हे कृष्ण! आज मैंने उस कदली बन में जिसमें बहुत से पारिजात के वृक्ष हैं, एक (अति सुंदर) अपनी सूरत पर अनुरक्त करने वाली किन्नर कन्या देखी है, वह हाथ में एक अति सुरीली सारंगी लिये हुये अपने ही गान वाद्य के शब्द में मस्त रंभा सी बनी घूमती है (तुम्हें भी देखना हो तो वहाँ जाकर देख लो)

(पुनः)

मूल—श्री कँठ उर बासुकि लसत, सर्ब मंगलामार।
श्री कँठ उर बासुकि लसत, सर्ब मंगलामार॥ ३३॥

शब्दार्थ—श्री कंठ = शिव। बासुकि = नाग। सर्वमंगलामार = (सर्व मंगल + अमार) समस्त मंगल रूप और काम रहित अर्थात् आपादमस्तक मंगलमय हैं और अकाम हैं; किसी से कुछ चाहते नहीं। श्रीकंठ = जिनका कंठ शोभा युक्त है। वासुकि = माला। सर्वमंगला = पार्वती। मा = लक्ष्मी। र = अग्नि।

भावार्थ—(इसमें शिव पार्वती का ध्यान वर्णित है) श्रीशिव कैसे हैं कि उनके हृदय पर बासुकी नाग शोभित है, मंगल-मूर्ति और अकाम हैं। और सर्वमंगला (पार्वती) कैसी हैं

कि उनका कंठ शोभा युक्त है, हृदय पर सुन्दर माला सोहती है और लक्ष्मी रूपा तथा अग्निरूपा हैं (अर्थात् भक्तों को लक्ष्मी रूपा पालन करने वाली और पापी दुष्टों को अग्निरूपा जलाने वाली हैं, अथवा सेवक के अनिष्टों को जलाने के हेतु अग्निरूप हैं)

(पुनः)

मूल—दूषन दूषन के यश भूषन भूषन अंगनि केशव सोहै।
ज्ञान सँपूरन पूरन कै परि पूरन भावनि पूरन जोहै॥
श्री परमानँद की परमा—पर मानँद की परमा कहि को है।
पातुर सी तुरसी मति को, अवदातुरसी तुरसी पति मोहै॥३४॥

शब्दार्थ—दूषन दूषन = दूषण राक्षस को नष्ट करने वाले (श्रीराम जी)। यशभूषन = चिन्ह। (इस शब्द का अन्वय 'अंगनि सो है' से करो) पूरन = धारा, प्रवाह। पूरन = सर्वव्याप्त। जो है = देखता है। परमानंद = ईश्वर। परमा = शोभा। पर = तत्पर।, लगा हुआ। मा-नँद = लक्ष्मी का आनंद (धन वैभव का आनंद)। परमा = बहुतायत, अधिकता। पातुर सी = (पातुर श्री) बेश्याओं की शोभा। तुरसी = (फा० तुर्शी) खटाई। अवदात रस = उज्वल रस (शांत रस)। अवदातु रसी = शान्त रस में निमग्न (शान्तरस पूर्ण)। तुरसी पति = (तुलसी पति) विष्णु।

भावार्थ—(इसमें सच्चे भक्तों की प्रशंसा का वर्णन है) जो भक्त अपने अंगों पर दूषणरिपु (श्रीराम जी के यशोभूषण (शंख चक्रादि के चिन्ह) भूषणवत् धारे सोहता है, जो संपूर्ण ज्ञान की धाराओं से परिपूर्ण भावनाओं के द्वारा ईश्वर को संसार व्यापी देखता है, और जो ईश्वर की शोभा छटा

देखने में संलग्न है, उसके सामने धन वैभव की अधिकता क्या चीज है (कुछ नहीं, अति तुच्छ है)। उसकी मति के लिये चंचल वेश्याओं की शोभा खटाई सी है (अच्छी नहीं) उसकी शांत रसमयी मति केवल तुलसी पति (विष्णु) पर ही मोहित होती है।

नोट—इसके बाद किसी किसी प्रति में तीन छंद और हैं, पर हमने उनको क्षेपक समझ कर छोड़ दिया है। कारण कि उनमें यमक न होकर केवल विविध अनुप्रास मात्र है, और अनुप्रासों की गणना केशव ने अलंकारों में नहीं गनाई (देखो प्रभाव ६ छंद नं० १ से ७ तक)

मूल—याहि विधि औरहु जानियो, दुखकर यमक अनेक।
बरणों चित्र कवित्त अब, सुनिये सहित विवेक ॥ ३५ ॥

पंद्रहवां प्रभाव समाप्त।

सोरहवां प्रभाव

३७—(चित्रालंकार वर्णन)

मूल—केशव चित्र समुद्र में बूड़त परम विचित्र।
ताके बूंदक के कणौ बरनत हौं सुनि मित्र ॥ १ ॥

भावार्थ—केशव कहते हैं कि यह चित्रालंकार समुद्रवत है, इसमें बड़ी विचित्र प्रतिभा वाले कवि भी डूब जाते हैं। हे मित्र सुनो, मैं उसे समुद्र की एक बूंद का एक कण मात्र वर्णन करता हूं।

मूल—अध, ऊरध बिनु बिंदुयुत, जति, रस हीन, अपार।
बधिर, अंध गन अगन के गनिय न नगन विचार ॥२॥

शब्दार्थ—अधविंदु = विसर्ग। ऊरध बिंदु = अनुस्वार। नगन = नगण्य।

भावार्थ—केशव कहते हैं कि इन चित्रालंकारों के निर्वाह हेत यदि कहीं कोई अक्षर जो विसर्ग वा अनुस्वार रहित है उसे विसर्ग वा अनुस्वार युत करना पड़े, अथवा यतिभंग, रसहीन, बधिर, अंध, अगण आदि दोष आ पड़े, तो इनका विचार नगण्य समझना चाहिये अर्थात् ये दोष दोष न माने जायेंगे।

मूल—केशव चित्र समुद्र में इनके दोष न देख।
अच्चर मोटे पातरे न, व, ज, य, एकै लेख॥ ३ ॥

भावार्थ—केशव कहते हैं कि ये उपर्युक्त दोष तो दोष माने ही न जायँगे, इनके अलावा दीर्घ को लघु करना और लघु को दीर्घ कर देना भी जायज समझा जायगा, और 'ब' और 'व' तथा 'ज' और 'य' एक ही समझे जा सकते हैं अर्थात् ब के स्थान पर व और व के स्थान पर ब, तथा ज के स्थान पर य और य के स्थान पर ज लिखें तो भी दोष न होगा।

मूल-अति रति गति मति एक करि बहु बिबेक युत चित्त ।
ज्यों न होय क्रम भंग त्यों बरणौ चित्र कबित्त ॥ ४ ॥

भावार्थ—केशव कहते हैं कि उपर्युक्त अधिकार पाकर भी हे कबिगण! बड़े प्रेम से अपनी योग्यता और बुद्धि को एकत्र करके, चित्त को विवेक युक्त करके चित्रालंकार की इस प्रकार रचना करो जिससे पूर्व कहे हुए नियम और क्रम भंग न हों, अर्थात् ये अधिकार पाकर भी बिना कठिन आवश्यता के अधिकार का दुरुपयोग न करो, जहाँ तक हो सके पूर्व नियमों का पालन उचित ही है।

नोट—अब आगे चित्र कवित्त की रचना करते हैं।

१—(निरोष्ठ वर्णन)

मूल-पढ़त न लागै अधर सों अधर बरण त्यों मंडि ।
और बरण बरणो सबै उ प वर्गहिं सब छंडि ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिसको पढ़ते समय ओंठ से ओंठ न छू जाय, उसे निरोष्ठ जानो। इसकी रचना में उ ऊ और पवर्ग (प, फ, ब, भ, म,) को छोड़ कर और सब वर्ण ला सकते हैं, क्योंकि उ ऊ, प, फ, ब भ म का उच्चारण ओठों से होता है।

(उदाहरण)

मूल—लोक लीक नीकी, लाज लीलत हैं नंदलाल,
लोचन ललित लोल लीला के निकेत हैं।
सौंहन को सोच न सकोच लोकालोकानि को,
देत सुख, ताको सखी दूनो दुख देत हैं।
केशोदास कान्हर कनेर ही के कोरक से,
बाह्य रंग राते अंग, अंतस में सेत हैं।
देखि देखि हरि की हरनता हरिननैनी,
देखत ही देखो नहीं हियो हरिलेत है ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—लोकलीक = लोकमर्यादा। लीलत हैं = छोड़ा लेते हैं, नष्ट कर देते हैं। सौंह = शपथ। लोकालोक = सांसारिक बदनामी। कोरक = फूल। बाह्य = बाहर से, ऊपरी ओर। अंतस = भीतर। सेत = सफेद, कोरे (अनुराग रहित)। हरनता = हरण करने की शक्ति, मनोहरता। देखतही लेत है = देखो क्या ये कृष्ण देखतेही देखते हृदय नहीं हर लेते ? (अवश्य हर लेते हैं)

नोट—मालिक के देखते हुए कोई चोर वस्तु नहीं हर सकता, पर कृष्ण ऐसा ही करते हैं इसी से दूना दुःख देते हैं। कनेर के फूल का रंग ऊपर लाल और भीतर कुछ सफेद होता है, तात्पर्य यह कि बाहर भीतर एक से नहीं हैं (कपटी हैं)। भावार्थ सुगम ही है। अलंकारता इसमें है कि इसके पढ़ने में ओंठ से ओंठ नही लगता।

२—(अमात्रिक वर्णन)

मूल-एकै स्वर जहँ बरनिये अद्भुत रूप 'अ' वर्ण ।
कहिये मात्रा रहित सो मित्र चित्र आभर्ण ॥ ७ ॥

भावार्थ—सोलह स्वरों में से केवल एक स्वर 'अ' युक्त ही रचना के सब वर्ण आवें उसे अमात्रिक वा मात्रा हीन कहते हैं।

(यथा)

मूल-जग जगमगत भगत जन रस बस,
भव भयहर कर, करत अचर चर ।
कनक बसन तन, असन अनल बड़,
बटदल बसन, सजलथल थल कर ।
अजर अमर अज बरद चरनधर,
परम धरम गन बरन शरन पर ।
अमल कमल वर बदन, सदन जस,
हरन मदन मद, मदन-कदन-हर ॥ ८ ॥

नोट—इस छन्द में नारायण का वर्णन है। समस्त शब्द उनके विशेषण है।

शब्दार्थ—जग······बस=जो भक्त जनों की भक्ति के वश होकर जग में जग मगाता है अर्थात् जो भक्तों के हेत संसार में सगुण रूप धारण करता है।

भव भय हर कर=जिसका हाथ संसारी भय दूर करता है।

करत अचर चर=जो जड़ों को चैतन्य करता है।

कनक बसन तन=जो तन पर पीताम्बर धारण करता है।

असन अनल बड़=जो दावानल को पान कर गया (कृष्ण रूप से)

बट दल बसन=जो बट के पत्ते पर बसा था (मार्कंडेय प्रलय के समय)

सजलथल थलकर=जिसने (मार्कंडेय के लिये) समस्त पृथ्वी तल को जलमय कर दिया था।

अजर······घर=चिरंजीवी लोग, देवगण, ब्रह्मा और महादेव (बरद) जिनके चरण छूते हैं।

परम धरम गन बरन=जो अच्छे धर्मों को बरण करते हैं (ब्राह्मण गण)।

परम······शरन पर=जो ब्राह्मणों की रक्षा में तत्पर रहता है।

अमल······बदन=जिसका मुख सुन्दर कमलवत है।

सदन जस=जो यश का सदन है (बड़ी कीर्ति है जिसकी)

हरन मदन मद=जो अपने सौन्दर्य से काम का मद हरता है।

मदन-कदन-हर=जो काम के नाश को हरण करने वाला है, अर्थात् काम के नाश हो जाने पर जिसने पुनः उसको पैदा किया, (अनस्तित्व से अस्तित्व में लाया) कृष्णावतार में काम को प्रद्युम्न नाम से पैदा किया (पुनः शरीरवान बनाया)।

भावार्थ—शब्दार्थों से ही प्रगट है।

विशेष—इस छंद के अन्त में 'मदन कदन हर' शब्द देखकर प्रथम दृष्टि में यह जान पड़ता है कि इसमें 'शिव' का वर्णन होगा, पर बिचार करने पर 'कनक बसन तन' और 'बट

दल बसन' विशेषण शिव पर सरलता से नहीं लगते, अतः हमें यही अर्थ ठीक जँचता है। कोई कोई विद्वान् इसका अर्थ शिव पर भी घटित करते हैं, पर उसमें क्लिष्ट कल्पनाएँ करनी पड़ती हैं अतः हमें पसन्द नहीं। जो स्पष्ट अर्थ हमें भाया है वही हमने पाठकों के सामने उपस्थित किया है।

३—(नियमाक्षर शब्द रचना)

मूल—एक आदि दै वरण बहु बरणौ शब्द बनाय।
अपने अपने बुद्धिबल समझैं सब कबिराय॥ ९॥

भावार्थ—एकाक्षर द्वयाक्षर, त्रयाक्षर इत्यादि शब्दों से ही सारा छंद रचा जा सकता (किसी किसी को ऐसी ही रचना भाती है)

यथा

४—(एकाक्षर शब्द रचना)

मूल—गो, गो, गं, गो, गी, अ, आ, श्री, ध्री, ह्री, भी, भा, न।
भू, ख, बि, स्व, ज्ञा, द्यौ, हि, हा, नौ, ना, सं, भं, मा, न॥ १०॥

शब्दार्थ—गो = सूर्य। गो = चंद्र। गं = गणेश। गो = गाय। गी = सरस्वती। अ = विष्णु। आ = ब्रह्मा। श्री = लक्ष्मी। ध्री = (धृ) धारण कर। ह्री = लज्जा। भी = भय। भा = शोभा। न = नहीं है। भू = पृथ्वी। ख = आकाश। बि = (द्वि) दोनो। स्व = अपना। ज्ञा = जानो। द्यौ = प्रकाशित। हि = (हिय) हृदय। हा = दुःख। नौ = नवीन। ना = नहीं होगा सं = सुख, कल्याण। भं = चमकना। मा = मृत्यु। न = नहीं होगी।

भावार्थ—सूर्य, चंद्र, गणेश, गाय, सरस्वती, विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी आदि देव देवियों को धारण कर (इनकी भक्ति कर) —ऐसा करने में लज्जा वा भय शोभा नहीं देती। (यदि तू ऐसा करेगा तो) पृथ्वी और आकाश दोनों ही अपने जान, (सर्वत्र तेरा गमन हो सकता है) तेरा हृदय प्रकाशित होगा, (तब) तुझे नवीन दुःख न होगा, सुख का सितारा चमकैगा और मृत्यु भी न होगी (तू अमर हो जायगा)।

(नोट)—इस दोहे में ऐसे शब्द हैं जिनके अनेक अर्थ हैं। जो हम लगा सके वह अर्थ कर दिया, पर हम यह नहीं कह सकते, कि यही अर्थ ठीक है। विद्वान लोग इसके और भी अनेक अर्थ कर सकते हैं।

५—(द्व्याक्षर शब्द रचना)

मूल–रमा उमा बाणी सदा हरि हर बिधि सँग बाम।
क्षमा दया सीता सती कीनी रामा राम॥ ११॥

शब्दार्थ—क्षमा दया सीता सती = क्षमा और दया गुण युक्त सती साध्वी सीता। रामा = पत्नी।

तात्पर्य यह है कि रमा की चंचलता, उमा का अर्द्धाङ्गपन, और बाणी का मुखरा होना ये दोष सीता में नहीं, वरन् क्षमा दया और सतीत्व गुण युक्त हैं।

भावार्थ—सुगम है। प्रत्येक शब्द दो अक्षर का है।

६—(त्र्याक्षर रचना)

मूल-श्रीधर, भूधर, केशिहा, केशव जगत प्रमाण।
माधव, राघव, कंसहा, पूरण पुरुष पुराण॥ १२॥

शब्दार्थ—श्री = शोभा। केशिहा = केशी को मारने वाले। कंसहा = कंस को मारने वाले।

भावार्थ—सुगम है। इसमें प्रत्येक शब्द तीन अक्षर का है।

७—(चतुराक्षर रचना)

मूल—सीतानाथ सेतुनाथ सत्यनाथ रघुनाथ,
जगनाथ, ब्रजनाथ, दीनानाथ, देवगति।
देव देव, यज्ञदेव, बिश्वदेव, ब्यासदेव,
बासुदेव वसुदेव दिब्यदेव दीनरति।
रणबीर रघुबीर यदुबीर ब्रजबीर,
बलबीर बीरबीर रामचन्द्र चारुमति।
राजपति रमापति रामापति राधापति,
रसपति, रसापति, रासपति, रागपति ॥ १३ ॥

नोट—प्रत्येक शब्द चार अक्षर का। सभी शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ सुगम है, कृष्ण और राम के अर्थ में ब्यवहृत हैं।

नोट—अब आगे केशव जी ऐसे छंद कहते हैं जिसमें वर्णों की गणना नियमित है। अर्थात् वर्णमाला के उतने ही अक्षरों से छंद बनता है जितने का ये नियम कर देते हैं। (चूंकि उदाहरण 'दोहा' छंदों में हैं, और दोहा छंद में अधिक से अधिक ४८ वर्ण और कम से कम २६ वर्ण आ सकते हैं, अतः) केशव जी २६ से आरम्भ करके नीचे की गणना की ओर चले हैं। कोई कवि चाहे वर्णमाला के ३३ वर्ण तक का भी नियम कर सकता है। इन उदाहरणों में एक वर्ण कई बार आवै तो भी उसकी गणना एकही बार समझना चाहिये।

मूल--अक्षर षट विंशति सबै भाषा बरनि बनाव।
एक एक घटि एक लगि केशवदास सुनाव ॥ १४ ॥

(यथा)

(छब्बीस वर्ण का दोहा)

मूल-चोरी माखन दूध घी ढूँढ़त हठि गोपाल।
डरत न जल थल भटकि फिरि झगरत छवि सों लाल ॥१५॥

भावार्थ—(कोई गोपी कृष्ण से कहती है) हे गोपाल जी तुम चोरी से माखन दूध और घी खोजने में जल थल सर्वत्र फिरते डरते नहीं और फिर ऊपर से बड़ी छवि से (बड़ी शान से) झगड़ते भी हो।

(नोट)—इस दोहे में कवर्ग के ४ वर्ण क, ख, ग, घ, चवर्ग के ४ वर्ण च, छ, ज, झ, टवर्ग के चार वर्ण ट, ठ, ड, ढ, तवर्ग के ५ वर्ण त, थ, द, ध, न, पवर्ग के ५ वर्ण प, फ, ब, भ, म, और र, ल, स तथा ह सब मिलकर वर्णमाला के २६ अक्षरों का प्रयोग किया गया है। एक अक्षर दो बार तीन बार आवै उसकी गणना एकही समझो।

(पच्चीस वर्ण का दोहा)

मूल-चेटी चंदन हाथ कै रीझि चढ़ायो गात।
बिहवल छितिधर डिंभ शिशु फूले वपुष न मात ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—चेटी = दासी (कूबरी)। हाथ कै = हाथ से। गात = शरीर। बिहवल = अति व्याकुल। छितिधर = राजा कंस। डिंभ शिशु = कपट से बाल रूप धारी (कृष्ण भगवान)। न मात = न समात।

भावार्थ—जब दासी (कूबरी) ने रीझ कर अपने हाथ से (कृष्ण के) शरीर पर चंदन लगाया, तब राजा कंस बहुत व्याकुल हुआ और कपट वपुधारी बालक (कृष्ण) फूले अंगों न समाया।

(नोट)—इसमें कवर्ग के २ अक्षर क, ग, चवर्ग के तीन अक्षर च, छ, झ, टवर्ग के ३ ट, ड, ढ, तवर्ग के ५ त, थ, द, ध, न, पवर्ग के ५ प, फ, ब, भ, म, और य, र, ल, व, श, ष, ह, सब मिल कर २५ वर्ण हैं।

(चौबीस वर्ण का दोहा)

मूल—अघ बक शकट प्रलंब हनि मारचो गज चाणूर।
धनुष भंजि दिढ़ दौरि पुनि कंस मथो मदमूर॥ १७॥

शब्दार्थ—गज = कुवलया। मदमूर = (मदमूल) मदमस्त।

भावार्थ—अघासुर, बकासुर शकटासुर, प्रलंबासुर को मार कर कुवलया गज और चाणूर को मारा, और मजबूत धनुष को तोड़ कर फिर दौड़ कर मदमस्त कंस को मारा।

(नोट) इसमें १ अ, और कवर्ग के ३ वर्ण क, ग, घ, चवर्ग के २ च, ज, टवर्ग के ३ ट, ढ, ण, तवर्ग के ४ थ, द, ध, न, पवर्ग के ४ प, ब, भ, म और य, र, ल, व, श, ष, ह, सब मिल कर २४ अक्षर प्रयुक्त हैं।

(तेईस वर्ण का)

मूल—सूधी यशुमति नंद फुनि भोर गोकुल नाथ।
माखन चोरी झूठ हठ पैंढ़े कवन के साथ॥ १८॥

शब्दार्थ—फुनि = (पुनि) फिर, और

भावार्थ—यशोदा बड़ी सीधी है और गोकुलपति नंद जी भी

बड़े भोले भाले हैं, हे कृष्ण ! तुमने माखन चोराना, झूठ बोलना और हठ करना किसको कुसंगति से सीखा है।

नोट—इसमें कवर्ग के ३ क, ख, ग, चवर्ग के २ च, झ, टवर्ग २ ठ, ढ, तवर्ग के ५ त, थ, द, ध, न, पवर्ग के ४ प, फ, भ, म और य, र, ल, व, श, स, ह, सब मिला कर २३ अक्षरों का प्रयोग है।

(बाईस बर्ण का)

मूल-हरि दिढ़ बल गोविंद विभु मायक सीतानाथ।
लोकप बिट्ठल शंखधर गरुड़ध्वुज रघुनाथ ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—दिढ़वल = अति बली। मायक = मायापति। बिट्ठल = केशव के मंत्र गुरु श्री विट्ठलनाथ गोस्वामी (व्रजवाले)। केशव ने अपने गुरु को ईश्वर मान कर यहाँ उनका स्मरण किया है। ये वल्लभाचार्य के पुत्र और अष्ट छाप कवियों के आश्रय दाता थे।

भावार्थ—मेरे मंत्र गुरु श्री १०८ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी साक्षात् ईश्वर हैं और हरि गोविंदादि सब उन्हीं के भिन्न भिन्न नाम हैं।

नोट—इसमें कवर्ग के ४ क, ख, ग, घ, चवर्ग का १ ज, टवर्ग के ३ ट, ड, ढ, तवर्ग के ५ त, थ, द, ध, न, पवर्ग के ४ प, व, भ, म, और य, र, ल, व, स, ह, सब मिल कर केवल २२ अक्षर प्रयुक्त हैं। (विशेष) शिष्य ने अपने गुरु का नाम कैसी खूबी से बतलाकर अमर किया है।

(इक्कीस बर्ण का)

मूल-जैसे तुम सब जग रचे दिये काल के हाथ।
तैसे अघ दुख काटि बलि करमफंद ड़िढ़ नाथ ॥ २० ॥

भावार्थ—जैसे तुमने समस्त लोकों को रच कर (नाश करने के लिये) काल के हाथ सिपुर्द कर दिये हैं, वैसे ही, हे नाथ मैं बलि जाऊँ, मेरे पाप, दुःख और मजबूत कर्मबंधन भी काट दो।

नोट—इसमें कवर्ग के ४ क, ख, ग, घ, चवर्ग के २ च, ज, टवर्ग के ३ ट, ड, ढ तवर्ग के ४ त, थ, द, न, पवर्ग के ३ फ, ब, म और य, र, ल, स, ह, सब मिल कर २१ वर्ण हैं।

(बीस वर्ण का)

मूल—थके जगत समझाय सब निपट पुरान पुकारि।
मेरे चित वे चुभि रहे मधुमर्दन मुरहारि ॥ २१ ॥

भावार्थ—जगत के सब लोग समझा कर थक गये और सब पुराण भी खूब पुकार पुकार कर (अन्य मार्गों में जाने की शिक्षा दी) पर मेरे चित्त में तो मधुसूदन मुरारी ही चुभे हैं।

(नोट)—इसमें कवर्ग के २ अक्षर क, ग, चवर्ग के ३ वर्ण, च, ज, झ, टवर्ग का १ ट, तवर्ग के ५ त थ द ध न, पवर्ग के ४ प, ब, भ, म और य, र, व, स, ह सब मिलकर बीस अक्षर हैं।

(उन्नीस अक्षर का)

मूल—को जानै को कहि गयो राधा सों यह बात।
करी जु माखन चोरि बलि उठत बड़े परभात ॥ २२ ॥

भावार्थ—न जानै राधा से यह बात कौन कह गया कि मैं बलि जाऊं, आज बड़े प्रभात उठते ही मैंने देखा है कि कोई तुम्हारे घर से माखन चोरा ले गया है।

(नोट)—कवर्ग के ३, च और टवर्ग के दो दो वर्ण, तवर्ग के ३, पवर्ग के ४ और य, र, ल, स, ह, सब मिलकर १९ वर्ण हैं।

(अठारह वर्ण का)

मूल—यतन जमायो नेह तरु, फूलत नंद कुमार।
खंडत कसकत जी न अब कपट कठोर कुठार॥ २३॥

भावार्थ—हे नन्दकुमार, यत्न से जमाये हुए प्रेमरूपी वृक्ष को, अब फूलने समय कपट के कठोर कुल्हाड़े से काटते हुए तुम्हारे जी को कष्ट नहीं होता?

(नोट)—१ अ, कवर्ग के २ क, ख, चवर्ग का १ ज, टवर्ग के ३ ट, ठ, ड, तवर्ग के २ त, न, पवर्ग के ४ प, फ, ब, म और य, र, ल, स, ह मिलकर १८ वर्ण हैं।

(सत्तरह वर्ण का)

मूल—बालापन गोरस हरे बड़े भये जिमि चित।
तिमि केसौ हरि देह हू जो न मिलौ तुम मित्त॥ २४॥

भावार्थ—हे मित्र यदि तुम मिलना नहीं चाहते तो न सही, (कुछ परवाह नहीं) परंतु एक बात करो कि जैसे लड़कपन में गोरस चोराया, कुछ बड़े होने पर गोपियों के चित्त हरण किये, वैसे ही अब मेरे शरीर को भी हरण कर लो।

(नोट)—कवर्ग के २ वर्ण क, ग, चवर्ग के २ च, ज, टवर्ग का १ ड़, तवर्ग के ३ त, द, न, पवर्ग के ४ प, ब, भ, म, और य, र, ल, स, ह मिलकर १७ वर्ण हैं।

(सोरह वर्ण का)

मूल—तुम घर घर मँड़रात अति बलिभुक से नँदलाल।
जाकी मति तुमही लगी कहा करै सो बाल॥ २५॥

भावार्थ—हे नंदलाल तुम तो कौवे की तरह घर घर मँड़राते फिरते हो, पर जिसका मन तुम्हीं से लगा है, वह स्त्री क्या करे।

(नोट)—अ, क, ग, घ, ज, ड़, त, द, न, ब, भ, म, र, ल, स, ह, ये सब मिलकर १६ वर्ण ।

(पंद्रह वर्ण वाला)

मूल—जो काहू ते वह सुनै ढूँढत डोलत सांझ ।
तो सारो ब्रज बूड़िहै वाके आंसुनि मांझ ॥ २६ ॥

भावार्थ—(सखी बचन कृष्ण प्रति)—जो वह (राधिका) किसी से यह बात सुनले कि तुम सरे शाम से दूसरी नायिका को ढूँढते फिरते हो, तो समझ लो कि सारा ब्रज उसके आँसुओं से डूब जायगा (बहुत रोवैगी)

(नोट)—इसमें, अ, क, ज, झ, ड, ढ़, त, न, ब, म, र, ल, व, स, ह सब मिलकर १५ वर्ण हैं ।

(चौदह वर्ण वाला)

मूल—ढूंका ढूंकी दिन करौ टकाटकी अरु रैनि ।
यामें केशौ कौन सुख घैरु करैं पिकबैनि ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—ढूंका ढूंकी करना = छिप छिप कर देखना, झांक झूंक कर देखना । टकाटकी = टकटकी लगा कर देखना । घैरु = गुप्त बदनामी ।

भावार्थ—(नायिका बचन नायक प्रति) हे कृष्ण ! दिन में तो तुम मुझे झांक झूंक कर (छिपे छिपे) देखा करते हो, और रात में टकटकी लगा कर देखा करते हो, बतलाओ इसमें तुम्हें क्या आनन्द मिलता है, इससे तो ब्रज की पिकबैनी सखियां गुप्त बदनामी ही करती हैं (तात्पर्य यह कि जब बदनामी होई चुकी, तब केवल देखा देखी ही तक मामला क्यों रहे, प्रेम पंथ में और आगे क्यों नहीं बढ़ते)

भावार्थ—हे गोकुलराज (कृष्ण) कल्ह की सब शपथें भूल गईं ? आइना हाथ में लेकर ज़रा मुहँ तो देखो, मालूम होता है लज्जा का कलेवा कर डाला है।

(नोट)—इसमें क, ख, ग, ज, ब, म, र, ल, व, स, ह, मिल-कर ११ अक्षर हैं।

(दस वर्ण वाला)

मूल—लै वाके मन माणिकहिं कत काहू के जात।
जौ केहूं वह जानिहै तब कैहै को बात॥ ३१॥

भावार्थ—उसके मन रूपी माणिक को तो लै लिया है, अब किसी अन्य नायिका के पास क्यों जाते हो। जो किसी प्रकार यह बात उसे मालूम हो जायगी तो फिर उसे कोई कैसे मनावैगा।

(नोट)—इसमें क, ज, ण, त, न, ब, म, ल, व, ह सब मिलकर दस अक्षर हैं।

(नव अक्षर वाला)

मूल—चंचु चुँगै अंगार गर जाके कर जिय जोर।
सोऊ जो जारै जिये कैसे जियें चकोर॥ ३२॥

भावार्थ—जिसकी किरण के बल को हृदय में धारण करके चकोर चोंच से अंगार पकड़कर गले से खाता है, यदि वह भी जी को जलाने लगे तो चकोर वेचारा कैसे जियेगा।

(नोट)—इसमें अ, ऊ, क, ग, च, ज, य, र, स सब मिलकर केवल नव अक्षर हैं। तवर्ग, पवर्ग का कोई वर्ण नही है।

(आठ अक्षर वाला)

मूल—नैन नवावहु नेकहू कमल नैन नव नाथ।
बालनि के मन मोहि लै बेंचे मनमथ हाथ॥ ३३॥

शब्दार्थ—नवावहु = नीचे करो (लज्जित हो । मनमथ = काम ।

भावार्थ—हे नवलनेही कमलनयन नाथ अपने नेत्रों को ज़रा तो नीचे करो (तनिक तो लज्जित हो) कि स्त्रियों के मन मोहित करके लिये (और फिर अपने पास न रख सके) और उन्हें काम के हाथ बेंच डाला ।

(नोट)—इसमें क, च, थ, न, ब, म, ल, ह मिलकर ८ अक्षर हैं । 'व' की गणना 'ब' के अन्तर्गत मानी जायगी (देखो इसी प्रभाव का दोहा नं० ३)

(सात अक्षर वाला)

मूल-राम कामबस सिव करे विबुध काम सब साधि ।
राग कामबर बस करे केसव सी आराधि ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—विबुध = देवता । कामबर = कामवत् सुंदर । सी = (सिय) सीता जी ।

भावार्थ—जिन श्रीराम जी ने शिव जी को कामबश करके देवताओं का सब काम साधन किया, उन्हीं कामवत् सुन्दर राम को श्री सीता जी ने सेवा करके अपने वश में कर लिया ।

(नोट)—इसमें अ, क, ध, ब, म, र, स सात अक्षर हैं, ('व' को 'ब' ही समझो)

(छः अक्षर वाला)

मूल-काम नाहिनै काम को सब मोहन को काम ।
बस कीने मन सबन के का बामा का बाम ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—काम = कार्य । नाहिनै = नहीं है । मोहन = कृष्ण । बामा = सुन्दर । बाम = दुष्ट, असुन्दर (बुरा) ।

भावार्थ—यह कार्य कामदेव का नहीं है, यह सब कार्य श्रीकृष्ण ही का है कि क्या सुन्दर और क्या असुन्दर सबके मनों को बश कर लिया है।

(नोट)—इसमें क, न, ब, म, स, ह, केवल छः अक्षरों का प्रयोग है।

(पांच वर्ण वाला)

मूल—कमल नयन के नैन सों नैननि कौनो काम ?
कौन कौन सों नेम कै मिले न साम सकाम ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—कमलनैन = श्रीकृष्ण। नैननि कौनो काम = मेरे नेत्रों को क्या कोई काम है ? अर्थात् कुछ काम नहीं है (कुछ संबंध नहीं है)। नेम = प्रतिज्ञा। साम = संध्या। सकाम = कामी।

भावार्थ—(किसी दूती ने नायिका से आकर कहा कि कृष्ण ने प्रतिज्ञा की है कि संध्या को आकर दर्शन देंगे। इस पर नायिका का कथन है कि) श्रीकृष्ण के नेत्रों से मेरे नेत्रों को क्या कोई काम है ? (कुछ संबंध नहीं) वे किस किससे प्रतिज्ञा करके संध्या को नहीं मिले, वे बड़े कामी हैं अर्थात् प्रतिज्ञा तो कर देते हैं पर मिलते नहीं, काम बश होकर कहीं अन्यत्र ही उलझ रहते हैं।

(नोट)—इसमें क, न, म, ल, और स केवल पांच ही वर्णों से काम लिया गया है।

(चारवर्ण वाला)

मूल—बनमाली बन में मिले बनी नलिन बनमाल।
नैन मिली मन मन मिली बैननि मिली न बाल ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—बनमाली = श्रीकृष्ण। नलिन = कमल। बनी = फबती थी।

भावार्थ—(सखी वचन सखी प्रति)—हे सखी ! राधिका को श्रीकृष्ण बन में मिले (भेंट हुई) जिनके गले में सुन्दर कमलों की बनमाला फबती थी। परंतु राधिका नेत्रों से मिली और मनही मन मिली किंतु बचनों से न मिली (कुछ बोली नहीं)
(नोट)—इसमें केवल ४ अक्षर ब, न, म, ल, का प्रयोग है।

(तीन वर्ण वाला)

मूल—लगालगी लोपौं गली, लगे लागु लौं लाल।
गैल गोप गोपी लगे, पा लागौं गोपाल ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—गली = कुल मर्यादा। लागु = निकट होना, नजदीकी। लौं = प्रबल इच्छा। लाल = कृष्ण। लगे लागु = निकट निकट चलने लगे।

भावार्थ—लगा लगी करके (प्रेमवार्ता करके) इसकी कुल मर्यादा लोप कर दूं (कुलवती होने की लज्जा छोड़ा दूँ) इस प्रबल इच्छा से कृष्ण जी उसके निकट निकट होकर चलने लगे। तब उसने कहा कि हे गोपाल ! मै पैरों पड़ती हूं, मुझे मत छेड़ो देखो यहां गैल में बहुत से गोप गोपी हैं (यहां वार्ता करना उचित नहीं)

(नोट)—इसमें केवल तीन अक्षरों ग, प, ल, का प्रयोग है।
(सूचना)—इस दोहे के कई एक पाठान्तर भी मिलते हैं। पाठान्तरों के अनुसार अर्थान्तर भी हो सकते हैं। हमें जो अच्छा जँचा सो लिखा है। तात्पर्य तो केवल इतना है कि दोहे भर में केवल तीन ही अक्षरों का प्रयोग हो।

(दो वर्ण वाला)

मूल—हरि हीरा राहै हरो हेरि रही ही हारि।
रहि रहि हौं हाहा ररौं हरे हरे हरि रारि ॥३९॥

शब्दार्थ—हीरा=(हियरा) हृदय। हेरि रही हौं हारि= खोजते खोजते मन से थक गई। रहि रहि=थोड़ी थोड़ी देर बाद। ररौं=रटौं, करौं। हरे हरे=धीरे धीरे। रारि= झगड़ा।

भावार्थ—(मार्ग के मिलन का वर्णन है) मैं मार्ग में चली जाती थी, कृष्ण रास्ते में मिले और मेरा हृदय हर लिया। मैं खोजते २ मन से थक गई (कहां तक खोजूं) जब मैंने समझा कि कृष्ण ने ही मेरा हृदय हर लिया है, तब रह रह कर मैं उनसे अपना हृदय लौटा देने के लिये हाहा करने लगी (बिनती करने लगी), तब धीरे धीरे कृष्ण भी झगडा मचाने लगे (कि तुम्हीं ने हमारा हृदय हर लिया है हमें लौटा दो) मैं उनपर हृदय हरने का दोषारोपण करती थी और वे मुझपर।

(नोट)—इसमें र और ह, केवल दो अक्षरों का प्रयोग है।

(एक अक्षर वाला)

मूल-नोनी नोनी नौनि नै नोने नोने नैन।

नाना नन ना नाननै ननु नूनै नूने न ॥४०॥

शब्दार्थ—नोनी=(लोनी=लावण्य मयी) अच्छी, सुन्दर। नौनि=(नवनि) लचक, लोच। नै= (नय) नीति, प्रेम करने की रीति। नोने=सुन्दर, अच्छे। नाना=अनेक। नन= नाहीं नाहीं (इन्कार सूचक शब्द)। ना=पुरुष (यहां पर यह संबोधन में है अर्थात् हे पुरुष—हे नायक, यदि तुम पुरुष हो तो समझो कि)। नाननै=(न+आननै) वह नाहीं मुख ही की है, मन की नहीं। ननु=क्या (प्रश्न सूचक अव्यय है)। नूनै=(सं० लवण) नून, नमक। नूनै न=कम नहीं है।

भावार्थ—हे (ना) नायक! (यदि तुझमें पुरुषत्व है तो समझ ले कि) अच्छी लोच; अच्छी नीति (रीति) और अच्छे नेत्र वाली नायिकाओं में जो अनेक नाहीं नाहीं करने की आदत होती है, क्या वह नाहीं केवल मुख मात्र की नहीं है? (अर्थात् केवल मुख से 'नाहीं' करती हैं चित्त से चाहती हैं)। वह नाहीं भोजन में नमक से कम नहीं हैं, अर्थात् जैसे अलोना भोजन रुचिकर नहीं होता, वैसे ही यदि सर्वांग सुन्दरी स्त्री में 'नाहीं नाहीं' की बानि न हो तो उसकी सुरति किसी काम की नहीं।

(नोट)—इस दोहे भर में केवल एक अक्षर 'न' का प्रयोग है।

(सूचना) इस दोहे के लोग अनेक अर्थ करते हैं। हमें यही अच्छा जँचा है।

(आधा छंद एकाक्षरी)

मूल—केकी केका कीक का कोक कीक का कोक।

लोलि लालि लोलै लली लाला लीला लोल ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—केकी = मोर। केका कीक = केका का शब्द, मोर के बोलने का कोलाहल। का = क्या है? अर्थात् कुछ नहीं है। कोक कीक = चक्रवाक का शब्द। कोक = दादुर, मेंढक। लोलि = चाह में भरकर, प्रेम से प्रभावित होकर। लालि = पुत्र पर प्रेम जता कर। लोलै = डोलती फिरती है। लली = नायिका। लाला = पुत्र। लीला = खेल। लोल = चंचलता पूर्ण।

(विशेष)—किसी नायिका का पति विदेश में है, परन्तु छोटे पुत्र की लीलायें देख देख कर वह प्रसन्न रहती है, उसे नायक का विरह नहीं सताता। यही वर्णन इस दोहे में है।

भावार्थ—(वर्षा आ गई है, कामोद्दीपन होकर बिरह दुःख होना चाहिये था, परंतु) उसके लिये मोर, चक्रवाक और दादुरों के कोलाहल शब्द क्या हैं अर्थात् कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि प्रेम से प्रभावित होकर और पुत्र पर प्रेम जता कर पुत्र की चंचल लीलाओं पर मुग्ध बनी वह लाडिली इधर उधर डोला फिरा करती है (पुत्र का मुख पति की अनुहारि का देख कर प्रसन्न रहती है)

(सूचना)—यदि कोई कहै कि वर्षा में चक्रवाक का वर्णन अयोग्य है, तो 'कोक कीक' का अर्थ 'कोक शास्त्र का पठन पाठन' अर्थ ले सकते हैं।

(नोट)—इस दोहे के पूर्वार्द्ध में केवल 'क' और उत्तरार्द्ध में केवल 'ल' का प्रयोग है। इसी नियम के कारण दूसरे और चौथे चरण का तुकान्त नहीं मिलता।

(चतुरांश एकाक्षरी)

छंद के प्रति चरण में एक एक अक्षर प्रधान है।

मूल—गोगै गी गो गोग गज जीजै जीजी जोहि।
रूरे रूरे रेरु ररि हाहा हूहू होहि ॥४२॥

शब्दार्थ—गोग = गोविंद ('गोविंद' और 'गोग' पर्याय वाची शब्द हैं)। गोगै = गोविंद को। गी = कहो। गो = गाय, गऊ। गोग = (गो + ग) जल गत, पानी में डूबते हुए। गज = हाथी। जीजै = जी सकते हो। जीजी = जीव के जीव, प्राण के प्राण (ईश्वर)। जोहि = देखकर। रूरे रूरे = अच्छे से अच्छे, भले से भले। रेरु = टेरो, पुकारो। ररि = रट रट कर, बार बार। हाहा = बिनती। हूहू = वह गंधर्व जो देवल मुनि की शाप से ग्राह हुआ था। होहि = है।

भावार्थ—(डूबते हुए गज प्रति किसी का उपदेश है) हे (गोग-गज) जल में डूबते हुए गज, (गोगै गी गो) गोविंद से कहो कि मैं गाय हूं (तुम्हारी गऊ हूं) अर्थात् दीनता पूर्वक उसका स्मरण करो। उस जीव के जीव (प्राणाधार) को देखकर (ध्यान में) तू जी जायगा (बच जायगा), उस अच्छे से अच्छे (सहायक) को पुकार और (ररि हाहा) हाहा खाओ (दीनता पूर्वक बिनय कर) यह जो तुझे पकडे है, यह ग्राह नहीं है हूहू नामक गंधर्व है।

(वहिर्लापिका अन्तर्लापिका)

मूल—उत्तर बरण जु बाहिरै बहिर्लापिका होय।
अंतर अंतरलीपिका यह जानै सब कोय ॥ ४३ ॥

भावार्थ—कुछ छंदों में कुछ प्रश्न किये जाते हैं और जहां उत्तर के अक्षर समझ कर बाहर से निश्चित करने पड़ें वहां वहिर्लापिका अलंकार माना जाता है, और जहां उत्तर के अक्षर उसी छंद में सम्मिलित हों वहां अंतर्लापिका कहते हैं, यथाः—

(वहिर्लापिका का उदाहरण)

मूल—अच्छर कौन विकल्प को, युवति बसति केहि अंग।
बालि राजा कौने छल्यो सुरपति के परसंग ॥ ४४ ॥

(व्याख्या)—इसमें तीन प्रश्न हैं (१)—विकल्प का अक्षर कौन सा है, (२)—स्त्री का स्थान किस अंग की ओर है, और (३)—इन्द्र का पक्ष करके राजा बलि को किसने छला। पहले का उत्तर है 'वा'। दूसरे का उत्तर है 'वाम' और तीसरे का है 'वामन'। 'वामन' शब्द में क्रमशः वे सब अक्षर

शामिल हैं, पर वामन शब्द छंद में है नहीं। सोच कर बाहर से लाने पड़े हैं, अतः यह बहिर्लापिका अलंकार है।

(अन्तर्लापिका का उदाहरण)

मूल—कौन जाति सीता सती, दयो कौन को तात।
कौन ग्रंथ बरन्यो हरी, रामायण अवदात ॥ ४५ ॥

(व्याख्या)—इसमें तीन प्रश्न तीन चरणों में हैं, चौथे चरण में उत्तर के अक्षर हैं। प्रश्न ये है—(१) सीता सती कौन जाति की स्त्री हैं (२) उसके पिता ने किसको दिया था, (३) उसका हरी जाना किस ग्रंथ में वर्णित है। पहले प्रश्न का जवाब है 'रामा', दूसरे का जवाब है 'रामाय', और तीसरे का जवाब है 'रामायण'। अवदात = उज्वल, शुद्ध। चूंकि 'रामायण' शब्द छन्द में ही आ गया है, अतः अंतर्लापिका अलंकार कहलाया।

(गूढ़ोत्तर वर्णन)

मूल—उत्तर जाको अति दुरचो दीजै केशवदास।
गूढ़ोत्तर तासों कहत बरणहु बुद्धि बिलास ॥ ४६ ॥

(यथा)

मूल—नखते सिख लौं सुख दैके सिंगारे सिंगार न केशव एक बच्यो।
पहिराये मनोहर हार हिये सब गात सुगंध समूह सच्यो।
दरसाई सिरी कर दर्पन लै कपि कुंजर ज्यों बहु नाच नच्यो।
सखि पान खवावत ही केहि कारन कोपि पिया पर नारि रच्यो॥४७

शब्दार्थ—सुख दै कै = राज़ी करके। सुगंध समूह सच्यौ = सब प्रकार की सुगंध लगाई। सिरी = (श्री) शोभा। कपि-

कुंजर ज्यों बहु नाच नच्यो = बड़े बंदर की तरह अनेक नाच नाचे।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

(व्याख्या)—अंतिम चरण में प्रश्न है कि इतनी सब खुशामद करने पर हे सखि ! न जानै क्यों पान खवाते ही नायिका ने अपने पति पर क्रोध किया ? इस प्रश्न का उत्तर अति गुप्त रीति से उसी छंद के अन्तिम शब्दों में छिपा हुआ है—अर्थात् पान खवाते समय कुछ चिन्ह नायक के अङ्ग में ऐसे देखे जिनसे उसको ज्ञात हुआ कि "पिया पर नारि रच्यो", यह नायक पर स्त्री से अनुरक्त है। इसी से कोप किया।

(पुनः)

मूल—हास बिलास निवास है केशव केलि विधान निधान दुनी में।
देवर जेठ पिता सुसहोदर है सुख ही मय बात सुनी मैं॥
भोजन भाजन भूषण भौन भरो जस पावन देव धुनी मैं।
क्यों सब जामिनि रोवति कामिनि कंत करै सुभ गान गुनी मैं।४८

भावार्थ—कोई सखी सखी प्रति कहती है कि वह नायिका हास बिलास की निवासस्थान है, और दुनिया में सब प्रकार के केलि विधान की निधान है अर्थात् काम केलि कला में निपुण है। देवर, जेठ, पिता, भाई, सब हैं, मैंने सुना है कि उसको सब प्रकार की सुख सामग्री भी प्राप्त है, भोजन, भाजन, भूषण से घर भरा है, गंगा के समान पवित्र यश भी है, और उसका पति भी गुनी जनों में उसकी प्रशंसा करता है, तब क्या कारण है कि वह कामिनी (काम व्यथा से पीड़ित) सारी रात रोती रहती है ?

(व्याख्या)—प्रश्न है कि सुख की सब सामग्री होते हुए भी वह क्यों दुखी रहती है ? इसका उत्तर बहुत गुप्त रीति से इसी छंद के अंतिम शब्दों में छिपा है अर्थात् वह दूसरी सखी कहती है कि "सुभगा न गुनी मैं" । मैं ने गुनकर जान लिया कि वह सुभगा नहीं है। 'सुभगा'=वह स्त्री जो सुन्दर हो और उसका पति उसपर अनुरक्त हो।

(पुनः)

मूल—नाह नयो नित नेह नयो पर नारि त्यों केशव क्यों हूं न जोवै ।
रूप अनूपम भूपर भूप सो आनँद रूप नहीं गुन गोवै ॥
भौन भरी सब संपति दंपति श्रीपति ज्यों सुख सिंधु न सोवै ।
देव सो देवर प्रान सो पूत सु कौन दसा सुदती जेहि रोवै॥४९॥

शब्दार्थ—त्यों=तरफ। जोवै=देखता है। श्रीपति=पति सहित लक्ष्मी। सुदती=सुंदर दांतों वाली (जिसके दांत अति सुन्दर हैं।

भावार्थ—सरलता से समझा जाता है।

(व्याख्या)—प्रश्न है कि सब बातें अनुकूल होते हुए भी इस सुदती की क्या दशा है जो यह रोती है? इसका उत्तर अंतिम १० अक्षरों में है—नंद सासु दती जेहि रोवै=ननँद और सासु दती रहती हैं (लड़ती रहती हैं) इसी से यह रोती रहती है।

(एकानेकोत्तर वर्णन)

मूल-एकहि उत्तर में जहां उत्तर गूढ़ अनेक ।
उत्तर एकानेक तेहि बरनत सहित बिबेक ॥५०॥

भावार्थ—एकही उत्तर में अनेक उत्तर निकलें, उसे एकानेकोत्तर अलंकार कहते हैं। परंतु अनेक उत्तर इस प्रकार निक-

लते हैं कि अंतिम उत्तर में जो वाक्य है, उसके अंतिम अक्षर में आदि से लेकर क्रमशः एक एक अक्षर जोड़ें और जोड़ें।

(यथा)

मूल—कहा न सज्जन बवै, कहा सुनि गोपी मोहित।
कहा दास को नाम, कबित महँ कहियत को हित॥
को प्यारो जग माहिं, कहा छत लागे आवत।
को बासर को करत, कहा संसारहि भावत॥
कहि कहा देखि कायर कँपत आदि अंत को है सरन।
यक उत्तर केशवदास दिय, "सबै जगत शोभा धरन"॥५१

(व्याख्या)—इस छप्पय में १० प्रश्न हैं। जिनमें से अंतिम प्रश्न है 'आदि में तथा अंत में शरण कौन है', जिसका उत्तर है "सबै जगत शोभा धरन"। अब इस अंतिम उत्तर का अंतिम अक्षर है 'न'। इस 'न' में इसी अन्तिम वाक्य के क्रमशः एक एक अक्षर पहले जोड़ो—जैसे—सन, बैन (बांसुरी), जन, गन, तन, शोन (रक्त), भान, घन, रन। ये क्रमशः पहले ९ प्रश्नों के उत्तर हुए। दसवें प्रश्न का उत्तर है पूरा वाक्य "सबै जगत् शोभा धरन" अर्थात् कृष्ण जी।

(विशेष)—बैन=वेणु (चित्रालंकारों में ऐसा मानना दोष नहीं है)। छत=(क्षत) घाव। द्विजातियों के लिये 'सन' बोना (जूट वा पटुवा की खेती) धर्मशास्त्रानुसार मना है।

(व्यस्त समस्तोत्तर वर्णन)

मूल—मिलै आदि के बरण स्यों केशव करि उच्चार।
उत्तर व्यस्त समस्त सो सांकर के अनुहार॥ ५२॥

भावार्थ—व्यस्तसमस्तोत्तर अलंकार में जो अंतिम उत्तर होता है वह जंजीर की कड़ियों की तरह होता है अर्थात् आदि वर्ण में एक एक अक्षर जोड़ते जाते हैं और वह एक एक प्रश्न का उत्तर होता जाता है।

(यथा)

मूल—को शुभ अच्छर, कौन युवति योधन बश कीन्ही।
विजय सिद्धि संग्राम राम कहँ कौने दीन्हीं॥
कंसराज यदुबंश बसत कैसे केशव पुर।
बट सों कहिये कहा नाम जानो अपने उर॥
कहि कौन जननि सब जगत की कमल नयनि कंचन बरनि।
सुनि बेद पुरानन में कही सनकादिक 'शंकरतरुनि' ॥५२॥

भावार्थ—(१)—शुभ सूचक अक्षर कौन है (२)—योद्धों ने किस युवती को अपने बश में कर लिया है, (३)—राम को बिजय किसने दी, (४)—कंस के राज्य में यदुबंश कैसे बसता था, (५)—बटबृक्ष का अन्य नाम क्या है सो अपने उर में समझो, (६)—कमलनैनी, कंचनवरणी समस्त जगत की माता कौन है। इन छहों प्रश्नों का एक उत्तर (संक्षेप से) बेद पुराणों के अनुसार सनकादिक ने यह दिया कि 'शंकर तरुनि'। इसे यों समझिये।

(व्याख्या)—पहले प्रश्न का उत्तर है 'शं'। दूसरे का उत्तर है 'शंक'। तीसरे का है 'शंकर'। चौथे का है 'शंकरत'। पांचवें का उत्तर है 'शंकरतरु' और छठें का है 'शंकरतरुनि' (पार्वती)

(पुनः कबित्त)

मूल कोल काहि धरी धरि धीरज धरम हित,
मार्‍यो केहि सूत बलदेव जोर जव सों ।
जांचै कहा जग जगदीश सों केशवदास,
गायो कौने रामायण गीत शुभ रव सों ।
जब अंग अवदात जात बन तातन स्यों,
कही कौन कुंती मात बात नेह नव सों ।
बाम ग्राम दूरि करि देवकाम पूरि करि,
मोहे राम कौन सों संग्राम 'कुश लव सों' ॥५४॥

शब्दार्थ—कोल = बाराह भगवान । सूत = सूत पौराणिक । जव = वेग । अङ्ग अवदात = शुद्ध अङ्ग वाले । तातन स्यों = भाइयों सहित । बाम = स्त्री (अर्थात् सीताजी) । ग्राम = अयोध्या ।

भावार्थ—(१) धीरज धर कर बाराह भगवान ने धर्मरक्षा हेत किसको धारण किया ? (२) श्रीबलदेव जी ने बड़े बेग से सूत पौराणिक को (कुरुक्षेत्र में) किस अस्त्र से मारा ? (३) सारा संसार ईश्वर से क्या मांगता है ? (४) रामायण गीत किसने अच्छे राग से गाये थे ? (५) जब शुद्ध अङ्गवाले युधिष्ठिर भाइयों सहित बन को जाते थे तब कुंती माता ने नेह सहित कौन बात कही थी और, (६) जब अपनी स्त्री (सीता) को अयोध्या से निकाल कर देवकार्य पूर्ण किया था, तब संग्राम में श्रीराम जी किसके द्वारा मोहित (मूर्च्छित) किये गये थे ? सबका उत्तर है "कुश लव सों" ।

(व्याख्या)—पहले प्रश्न का उत्तर है 'कु' अर्थात् पृथ्वी। दूसरे का उत्तर है 'कुश' (कुरुक्षेत्र में बलदेव जी ने क्रुद्ध होकर सूत पौराणिक को 'कुश' फेंककर मार डाला था) तीसरे प्रश्न का उत्तर हुआ 'कुशल', चौथे का उत्तर हुआ 'कुशलव'। पाचवें का उत्तर हुआ 'कुशल बसो' (कुशल से रहो)—यहाँ ब को व समझो और अनुस्वार का कोई विचार न करो—(चित्रालंकार में यह दोष न माना जायगा) और अन्तिम प्रश्न का उत्तर हुआ 'कुश लव सों'।

(व्यस्तगतागत उत्तर वर्णन)

मूल- एक एक तजि बरण को युगयुग बरण विचारि।
उत्तर व्यस्त गतागतनि एक समस्त निहारि ॥ ५५ ॥

भावार्थ—इसमें सबसे अंत में तो एक समस्त उत्तर होता है, और उसके पहले के प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार निकलते हैं कि पहले दो अक्षर लिये, वह पहले प्रश्न का उत्तर होगा. फिर इनमें से पहले अक्षर को छोड़ा और दूसरे अक्षर में आगे का एक अक्षर और मिलाया, वह दूसरे प्रश्न का उत्तर होगा। इसी प्रकार क्रमशः एक छोड़ते एक मिलाते अन्त तक चले गये। ये व्यस्तगत उत्तर हुए। फिर अन्त से उलट कर इसी प्रकार करते गये। जो उत्तर निकले वे व्यस्त आगत उत्तर होंगे। और अन्त में एक समस्त (सब मिलाकर एक) उत्तर होगा। यह बड़ा कठिन अलंकार है।

(यथा)

मूल- के हे रस, कैसे लई लंक, काहे पीत पट,
होत, केशोदास कौन शोभिये सभा में मद।

भोगनि को भोगवत, कौने गनैं भागवत,
जीते का यतीन, कौन हैं प्रनाम के बरन।
कौन करी सभा, कौन युवती अजीत जग,
गावै कहा गुणी, कहा भरे हैं भुजंग गन।
का पै मोहैं पशु, कहां करैं तपी तप, इन्द्-
जीत जी बसत कहां, "नवरँगराय मन" ॥ ५६ ॥

(व्याख्या)—इसमें सब से अंतिम प्रश्न यह है कि 'इन्द्रजीत जी कहां बसते हैं,' इसका एक समस्त उत्तर है "नवरँगराय मन"। अब पहले प्रश्न को देखिये।

(प्रश्न)	(उत्तर)
१–रस के है ?	१–नव।
२–लंका कैसे ली ?	२–वर (बलसे)-अनुस्वार छोड़ दी, 'व' को 'ब' माना।
३–काहे पट पीत होत ?	३–रँग (रंग) से
४–कौन जन सभामें शोभता है ?	४–गरा (गरू गंभीर,हलका नहीं)
५–भोग कौन भोगता है ?	५–राय (सरदार लोग)
६–भागवतों में गणना किसकी है	६–यम (यमराज की गणना भक्तों में है)
७–यतियों ने किसे जीता है ?	७–मन।

यहां तक 'व्यस्तगत उत्तर हुए। अब उलट कर चलिये (अंतसे)

१–प्रणाम करने के अक्षर कौन हैं।	१–नमः।
२–सभा किसने बनाई (युधिष्ठिर का सभाभवन किसने बनाया था)	२–मयः (दानव विश्वकर्मा का पुत्र)

३—कौन स्त्री अजीत है ? ३—यरा (जरावस्था-'व' को 'ज' मानो)

४—गुणी क्या गाते हैं ? ४—राग ।

५—सापों में क्या भरा है ? ५—मार (ज़हर)

६—पशु(हिरन)किसपर मोहता है?६—रव (शब्द-अनुस्वार छोड़दो)

७—तपी जन तप कहां करते हैं ? ७—बन (जंगल) में

और अंत में प्रश्न है कि "इन्द्रजीत कहां बसते हैं", जिसका एक समस्त उत्तर है कि "नवरँग राय के मन में" ।

(नोट)—'इन्द्रजीत' उस राजा का नाम है जिसके दरबार में 'केशव' रहते थे, और उसके दरबार की एक वेश्या का नाम है 'नवरँगराय' । (देखिये प्रभाव १ छंद ४७, ४८)

मूल—उत्तर व्यस्त गतागतनि कछु समस्त के जानि ।
केशवदास विचारि कै भिन्न पदारथ आनि ॥ ५७ ॥

भावार्थ—इस चित्रालंकार में कुछ तो व्यस्त उत्तर होते हैं और कुछ समस्त । व्यस्त उत्तर गतागत (सीधे उलटे) होते हैं, और समस्त उत्तर सीधे ही लगाये जाते हैं, पर पदों के अर्थ भिन्न हो जाते हैं ।

(यथा)

मूल—दासनि सों, परसों, परमान की बात सों, बात कहा कहिये नय ।
भूपनि सों उपदेश कहा, कह रूप भले, केहि नीति तजे भय ॥
आपु बिषैनि सों क्यों कहिये, बिनु काह भये छितिपालन की छय ।
न्याउ कै बोल्यो कहा जम 'केशव' कैं अहिमेध कर्यो 'जनमेजय' ।५८

(नोट)—इसमें १० प्रश्न हैं। जिनमें से ८ के उत्तर तो व्यस्त गतागत ढंग से निकलते हैं और अंतिम दो प्रश्नों के उत्तर पदों के भिन्नार्थ करने से निकलते हैं।

शब्दार्थ—पर=शत्रु। आपु विषैनि=(आप विषयिन) अपने संबंधी अर्थात् स्त्री पुत्रादि। कैं=कौन। अहिमेध=सर्पयज्ञ।

(व्याख्या)—इसमें उत्तर के अक्षर हैं—"जनमेजय" (स्मरण रखो कि चित्रालंकारों में 'ज' और 'य' एक सम मान लिये जाते हैं। अब प्रश्नोत्तर यों समझिये :—

प्रश्न	उत्तर
१-दास को क्या कहते हैं ?	१-जन।
२-शत्रु से नीति पूर्वक क्या कहना चाहिये ?	२-नमे (नम्र हुए, पराजित हुए)
३-प्रमाण की बात को न्याय पूर्वक क्या कहना चाहिये ?	३-मेय (तौली हुई—ठीक)
४-राजाओं को क्या उपदेश देना चाहिये ?	४-जय (जय करो)

(अब उलट कर)

प्रश्न	उत्तर
५-नृप काहे से भला लगता है ?	५-यज (दान वा यज्ञ से)
६-नीति तजने से किसका भय है ?	६-जमैं (यमराज का)
७-अपने संबंधी से बातें कैसे कहना चाहिये ?	७-मैन (मोम सी मुलायम)
८-क्या न होने से राज्यों की क्षय होती है ?	८-नय (नीति)

(अब समस्तोत्तर भिन्न पदार्थ से)

९—पापी का न्याय करके यमराज क्या कहते हैं ?	९—जनमें जय (अनेक बार जन्म धारन करने से जय होगी)
१०—सर्पयज्ञ किसने किया ?	१०—जनमेजय (परीक्षितपुत्र ने)

(बिपरीत व्यस्त समस्त प्रश्नोत्तर)

मूल—कै ग्रह, क्यों मधु हन्यो, प्रेम केहि पलुहत प्रभु मन।
कहा कमल को गेह, सुनत कह मोहत मृग गन॥
कहां बसत सुख सिद्धि, कबिन कौतुक केहि बरनन।
केहि सेये पितु मातु, कह्यौ कबि केशव 'सरवन' ॥५६॥

(व्याख्या)—प्रश्नों के उत्तर 'सरवन' शब्द से निकलते हैं। अंत की ओर से चलिये।

प्रश्न	उत्तर
१—ग्रह कितने हैं ?	१—नव (९)
२—मधु को विष्णु ने कैसे मारा ?	२—वर (बल से)
३—प्रभुके मनमें प्रेम कैसे पल्लुचित होता है ?	३—रस (प्रेम से)

(अब सीधे चलो)

४—कमल का घर कौन है ?	४—सर (तालाब)
५—क्या सुनकर मृगगन मोहित होता है ?	५—रव (शब्द, गान)
६—सुखपूर्वक सिद्धगण कहाँ बसते हैं ?	६—वन (बन में)
७—कबिगण कौतुकसे क्या वर्णन करतेहैं ?	७—नव रस
८—माता पिता की सेवा किसने की ?	८—सरवन (ने)

(पुनः)

मूल—कंठ बसत को सात, कोक कहा बहु बिधि कहै।
को कहिये सुरतात, को कामी हित 'सुरत रसु' ॥ ६० ॥

व्याख्या—इस में खूबी यह है कि इसके उत्तर में ऐसे शब्द रखे हैं कि चाहे सीधे पढ़ो चाहे उलटे पढ़ो, बात एकही होगी। यथाः—

प्रश्न	उत्तर
१—कंठ में कौन सात बसते हैं ?	१-सुर (सात स्वर)
२—कोक शास्त्र क्या कहता है ?	२-सुरत
३—देवताओं का प्यारा कौन है ?	३-सुरतर (कल्प वृक्ष)
४—कामियों का हितू क्या है ?	४-सुरत रसु (संभोग)

(शासनोत्तर)

मूल—दोय तीनि शासननि को एकहि उत्तर जानि।
शासन उत्तर कहत है बुध जन ताहि बखानि। ६१।

भावार्थ—दो तीन बातों का जवाब एकही बात में दिया जाय, इसी को शासनोत्तर अलंकार कहते हैं।

(नोट)—इसको उर्दू वाले 'दो सखुना' या 'सेह सखुना' कहते हैं। अमीर खुसरो ने इस अलंकार में अच्छी कविता की है। उसे देखिये। नीचे लिखा हुआ उदाहरण 'सेह सखुना' है अर्थात तीन तीन बातों का जवाब एकही बात में दिया गया है। इसी प्रकार दो बातों या चार बातों का जवाब भी एक बात में कहा जा सकता है। कबि की बुद्धि पर निर्भर है।

(छप्पय)

मूल-चौक चारु करु, कूप ढारु, घरियार बाँधु घर।
मुक्त मोल करु, खड्ग खोलु, सिंचहि निचोल बर॥
हय कुदाउ, दै सुरकुदाव, गुण गाउ रंक को।
बानु भाव, सब बाम धाउ धन ल्याउ लंक को॥
यह कहत मधूकरशाह के रह्यौ सकल दीवान दबि।
तब उत्तर केशवदास दिय घरी न, पानी, जान, कवि॥६२॥

(नोट)—इस छप्पय के प्रथम चार चरणों में तीन तीन बातें हैं, जिनके उत्तर अंतिम चरण के अंत में है। ये सेह सखुने मधुकर शाह ने अपने दर्बार में कहे, तब केशव ने उत्तर दिये।

शब्दार्थ—सकल दीवान दबि रह्यो=सब सभा चुप रही अर्थात् उत्तर नहीं दे सकी।

	प्रश्न	उत्तर	अर्थ
(१)	सुन्दर चौक पूरो कुएं से पानी खींचो घड़ियाल बांधो	घरी नहीं है	शुभ मुहूर्त नहीं है। घड़ा नहीं है। घड़ी नहीं है।
(२)	मोती का मोल करो तलवार निकालो कपड़ा धोओ	पानी नहीं है	मोती आबदार नहीं है। पानीदार नहीं है। पानी नहीं है।
(३)	घोड़ा कुदाओ शब्द से धोखा दो रंक का गुण गाओ	जान नहीं है	घोड़े की जानु नहीं है (लंगड़ा है) जान (ज्ञान) नहीं है (मैं प्रवीण नहीं) मैं जानता नहीं(रंकमें कोई गुण नहीं होता)
(४)	भावों को जानो सबके घर आओ लंका का धन लाओ	मैं कवि नहीं	मैं कवि नहीं हूं कि भावों को समझूं मैं कवि नहीं कि सबको प्रसन्न कर सकूं मैं शुक्राचार्य नहीं कि रावण से दक्षिणा मागं।

(प्रश्नोत्तर)

मूल–जोई आखर प्रश्न के तेई उत्तर जानु।
यहि विधि प्रश्नोत्तर सदा कहैं सुबुद्धि विधानु ॥६३॥

भावार्थ—इसमें प्रश्न के अक्षर ही उत्तर होते हैं।

(यथा)

मूल–को दंड ग्राही सुभट? को कुमार रतिवंत?।
को कहिये ससि तें दुखी? कोमल मन को? संत। ॥६४॥

भावार्थ—(प्रश्न)–कौन सुभट दंड ग्राही होता है अर्थात् सब से दंड (कर) वसूल कर सकता है? (उत्तर)—को दंड ग्राही सुभट अर्थात् वह सुभट जो धनुषधारी होता है। (प्रश्न) को कुमार रतिवंत = कौन कुमार (युवा) प्रेमी होता है? (उत्तर) कोकु मार रतिवंत = जो कोकु (कोक शास्त्र) और मार (कामदेव) से प्रेम रखता है। (प्रश्न) चंद्रमा से दुखी किसको कहना चाहिये? (उत्तर) कोक हिये ससितें दुखी = कोक (चकवा) का हृदय चंद्रमा से दुखी रहता है। (प्रश्न) हे संत (सज्जन) कोमल मन का कौन होता है? (उत्तर) कोमल मन का संत होता है अर्थात् संत कोमल मन होता है।

नोट—खूब गौर से देखो कि जो अक्षर प्रश्न के हैं, वही अक्षर कुछ हेर फेर से उत्तर हो जाते हैं।

(पुनः)

मूल–कालि काहि पूजे अली, को किल कंठहि नीक।
को कहिये कामी सदा, काली का है लीक ॥ ६५ ॥

भावार्थ—(प्रश्न) हे अली ! कल्ह किसकी पूजा की थी ?

(उत्तर)—हे अली ! कालिका को पूजा था।

(प्रश्न)—(किल) निश्चय करके कौन जीव कंठ का अच्छा होता है ?

(उत्तर) कोकिल ही कंठ की अच्छी होती है। (अर्थात् रूप की तो अच्छी नहीं होती, पर कंठ की अच्छी होती है— (मधुर स्वर से बोलती है)

(प्रश्न) सदा कामी किसको कहना चाहिये ?

(उत्तर)—कोक (चकवा) का हृदय सदा कामी होता है (अर्थात् सदाही संयोग चाहता है वियोग से दुखी होता है)

(प्रश्न)—(लीक = सत्य करके, वास्तव में) काली कौन वस्तु है ? क्योंकि 'अलीक' का अर्थ होता है 'असत्य' अतः 'लीक' का अर्थ होगा 'सत्य' (वास्तव में)

(उत्तर)—का = खराब। बहुत खराब और काली वस्तु है लीक (काजल की रेखा अर्थात् कलंक की रेखा)

(व्यस्त गतागत वर्णन)

मूल-सूधो उलटो बांचिये औरहि औरहि अर्थ।
एक सवैया में सुकवि प्रगटित होय समर्थ ॥ ६६ ॥

भावार्थ—व्यस्त गतागत अलंकार उसे कहते हैं जिसमें सीधे पढ़ने से और अर्थ निकले, और उलट कर पढ़ने से कुछ और अर्थ निकले। यदि कोई कवि ऐसा एक सवैया भी कह सकै तो उसका सामर्थ्य (कवित्व शक्ति) प्रगट हो जाता है।

(यथा)

मूल-सैन न माधव, ज्यों सर 'केसव' रेस सुदेस सुबेस सबै।
नै नब की ताचि जी तरुनी रुचि चीर सबै निमि काल फलै।

तैं न सुनी जस भीर भरी, धर धीर ऽब रीति सु कौन बहै।
मैन मनी गुरु चाल चलै सुभ, सो बन में सर सीव लसै ॥६७॥

शब्दार्थ—सैन = सोना निद्रालेना। सर = (शर) बाण। रेख = तुच्छ। सुदेस = सुंदर। सुबेस = सुन्दर भेस। नै = (नय) नीति। की = करी, करली है, ग्रहण की है। तचि जी = जी में जल कर। तरुनी रुचि = स्त्री की छबि। चीर = वस्त्र। निमि = नीब। कालफल = इंद्रायन। जस = जैसी। भीर भरी = भीड़ एकत्र हुई थी। रीति = कुलकानि। बहै = बहन करै, निवाहै। मैनमनी = (मयन मणि) काममणि, चिंता मणि समान (कामना प्रद)। गुरु चाल चलै = गुरु जनों की चाल पर चलता है (भलेमानसों की चाल चलने वाला है)। सर = ताल। सीव = (सीम = हद) तट। सरसीव = ताल के तट पर। लसै = शोभा दे रहा है (बैठा है)

(नोट)—नायिका रूठ गई है, सखी उसका मान मोचन करके कृष्ण से मिलने का अनुरोध करती है और मिलने का स्थान बताती है।

भावार्थ—(तेरे वियोग में) माधव को निद्रा नहीं आती, और अन्य सब सुन्दरी तथा अच्छे भेस वाली स्त्रियाँ उसे तुच्छ जँचती हैं और बाण सम लगती हैं। तेरे वियोग से जी में जल कर उन्होंने नवीन नीति ग्रहण की है कि अन्य स्त्रियों की छबि और वस्त्र उनको नींब और इंद्रायन समान कटु लगते हैं। अन्य स्त्रियों की जैसी भीड़ उनके पास एकत्र रहती है वह बात (खबर) क्या तू ने नहीं सुनी। ऐसी सुन्दर स्त्रियाँ उनके पास एकत्र रहती हैं कि कौन नायक ऐसा होगा कि धीर धर कर कुल कानि का निर्वाह कर सके

पर वह मयनमणि (सुन्दर नायक अर्थात् कृष्ण) किसी की ओर ध्यान नहीं देता, क्यों कि वह भले मानसों की शुभचाल पर चलने वाला है (एक तुझ पर ही अनुरक्त है) अतः मैं तुझे सूचित करती हूं कि वह नायक इस समय ताल के तट पर बैठा तेरी प्रतीक्षा कर रहा है (एकान्त स्थल है, तू वहाँ चल कर उस से मिल)

(विशेष)—'माधव' शब्द में विशेषता है अर्थात् वह (मा= लक्ष्मी, धव=पति) लक्ष्मी समान सुन्दरी स्त्रियों का पति है, तू अपने सौन्दर्य और वैभव का अहंकार छोड़ कर उससे मिल।

(सूचना)

अब इसी ऊपर लिखे हुए छंद नं० ६७ के प्रत्येक चरण को उलट कर पढ़ें तो नीचे लिखा रूप होगा और इसका अर्थ कुछ और ही होगा।

मूल–बैस सबेसु सदेसु खरे बस कै रस ज्यों बध मान नसै।
लैफल कामिनि बैस रची चिरु नीरुत जी चितकी बनने॥
है बन कोसु, ति, री, बर धीर धरी भर भी सजनी सुन तैं।
सैल बसी रस मैं नव सोभ सु ले चल चारु गुनी मन मैं।६८।

शब्दार्थ—बैस=युवा अवस्था। सबेसु=(सवेश) अच्छे भेस वाला। सदेसु=(सदेश) एक देश में रहने वाला (एक गांव का निवासी)। खरे बसकै=अच्छी तरह से अपने वश में करले। ज्यों बध मान=जी को बध करने वाला मान। बैस रची=युवावस्था से अनुरक्त (पूर्ण युवती)। नीरुत जी=जीव गण (पशु पक्षी इत्यादि) खामोश हैं। चित की बन ने= चित में सोची बात बन पड़ैगी।

(नोट)—कोई दूती नायिका को अभिसार कराकर नायक के पास ले जाना चाहती है। नायक रूठ कर पर्वत पर जा बैठा है, वहां ले जाना चाहती है।

भावार्थ—वह नायक युवा है, भेस सहित है (वस्त्र भूषणादि से सजा है) और तेराही स्वदेशी है (तेरेही गांव का रहने वाला है), सो उसको अपने रस से (प्रेम से) ऐसा बश करले कि उसका प्राण घातक मान (रूठना) नाश हो जाय। हे युवती कामिनी ! तू अपनी युवती बैस का फल (पुरुष संग) वहां चिरकाल तक ले, क्योंकि वहां पशु पक्षी शब्द नहीं करते (अर्थात् निर्जन स्थान है) वहीं तो चित चाही बात बन पड़ैगी। हे स्त्री ! यह बन एक कोस के घेरे में है और भय से भरा है (भयंकर है) अतः वहां कोई आता जाता नहीं, पर तू धीरज धरे रहना। पर्वत पर बैठी हुई, प्रेम मय नवीन शोभा से शोभित होना, सो ले अब चल, यही सुअवसर मैंने अच्छा समझा है।

(नोट)—इसके और भी अनेक अर्थ अपनी अपनी विद्या बुद्धि के अनुसार किये जा सकते हैं।

(पुनः)

मूल—सूधो उलटो बांचिये एकहि अर्थ प्रमान।

कहत गतागत ताहि कबि केशवदास सुजान॥ ६९ ॥

भावार्थ—किसी छंद के एक एक चरण को चाहे सीधा पढ़ै चाहे उलटा पढ़ै, अर्थ एकही रहै, उसे भी 'गतागत' कहते हैं।

(यथा)

मूल -मासम सोह, सजै बन, बीन नबीन बजै, सहसोम समा।

मारलतानि बनावति सारि रिसाति बनावनि ताल रमा ॥

मानव हीरहि मोरद मोद दमोदर मोहि रही बन मा ।
मालबनी बलि केसवदास सदा बस केलि बनी बलमा ॥७०॥

(नोट)—इस छंद के प्रत्येक चरण को चाहे सीधा पढ़िये चाहे उलटा, पाठ वही रहैगा, अतः अर्थ भी एकही होगा। ऐसे छंदों के अर्थ अनेक प्रकार के होते हैं। लोग अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार लगा लेते हैं। हम यह अर्थ करते हैं।

(कोई दूती नायिका से कहती है, अभिसार कराना चाहती है)

अन्वयार्थ—सह सोम समा बन सजै = चंद्रमा की चांदनी समेत वन शोभायमान हो रहा है। बीन नबीन बजै = नवीन स्वरों और रागों से बीणा बज रही है। अतः मारलतानि बनावति सारि = कामलता समान सुंदरी स्त्रियों को (जो उस गान मंडली में हैं) बीणा की घोरिया बनाते हुए (जड़वत् बनाकर) और रिसाति बनाघनि तालरमा = श्री ताल की बनावट पर रिसाती हुई (कि तुमसे अच्छी नहीं बनती) मा सम सोह = तू लक्ष्मी समान शोभित हो। मानव हीरहि मोर द मोद दमोदर = मनुष्य के हृदयरूपी मोर को आनन्द देने वाले (घनश्याम) दामोदर भी वहां है।

मोहि रही बन-मा = (जिनके रूप पर) वन श्री मोहित होरही है।

बलि = मैं बलिहारी जाऊं।

माल बनी = तेरे गले में माला शोभित है (अधिक आभूषणों कीज़रूरत नहीं)

केशवदास = केशव (कृष्ण) तो तेरे दास ही हैं (तुझ पर मोहित ही हैं)

सदा बस = वह तो सदा ही तुम्हारा बशवर्ती है।

केलि बनी बलमा = वहीं केलि बनी (केलि का स्थान) है और वहीं बालम है, अतः तू चल और उनसे मिल।

(विशेष)—कृष्ण ने चांदनी रात में गान मंडली एकत्र की है। गाने बजाने वाली अनेक गोपियां एकत्र हैं। उसी मंडली में दूती राधिका को ले जाना चाहती है। अतः प्रशंसा करते हुए कहती है कि :—

भावार्थ—चांदनी का समां खिला हुआ है, बन शोभित हो रहा है, अनेक गोपियां बीणा में नवीन राग बजा रही हैं। तू लक्ष्मी के समान है अतः अन्य सुन्दरियों को बीणा की खोरियों के तुल्य जड़ वा तुच्छ बनाते हुए, और श्री ताल की बनावट पर अपनी अप्रसन्नता प्रगट करते हुए (श्री नामक ताल अठारह तालों से मिलकर बनती है, इसका बनाना सहज नहीं, बड़ी प्रवीणा ही बीणा में श्रीताल बजा सकती है) लक्ष्मी के समान वहां शोभित हो। सबको आनन्द दायक कृष्ण भी वहां हैं, उनके सौन्दर्य पर बन श्री मोहित हो रही, मैं बलि जाऊं, अधिक शृंगार करने की ज़रूरत नहीं, माला तो पहने ही हो, कृष्ण तुम्हारे दास ही हैं, वे तो सदा तुम्हारे बस में हैं, अतः चलो केलि बन में कृष्ण से मिलो।

(नोट)—अब आगे केशव जी कुछ ऐसे छन्द लिखते हैं, जिनसे विविध प्रकार के चित्र बन सकते हैं। चित्र के अनुसार ही उनके नाम होते हैं, यथा:—

मूल—इंद्रजीत संगीत लै किये राम रस लीन।
छुद्रगीत संगीत लै भये काम बस दीन ॥ ७१ ॥

भावार्थ—संगीत की लैने (संगीत के शौक ने) राजा इंद्रजीत को राम रस (रामभक्ति) में निमग्न कर दिया, मगर क्षुद्र-गीत जन (कमीना लोग) संगीत में लै होकर (डूबकर) कामवश होकर दीन होगये।

(सूचना)—इस दोहे से नीचे लिखे ४ प्रकार के चित्र बन सकते हैं।

(१)—गोमूत्रिका चक्र।

इं	द्र	जी	त	सं	गी	त	लै	कि	ये	रा	म	र	स	ली	न
क्षु	द्र	गी	त	सं	गी	त	लै	भ	ये	का	म	ब	स	दी	न

(नोट)—इसे गोमूत्रिका इस लिये कहते हैं कि बैल (गो) जब मूतता हुआ चलता है तब उसके मूत्र से जैसी टेढ़ी मेढ़ी रेखा बनती है, उसी प्रकार की इसके अक्षरों की गति भी हो सकती है। अर्थात् नीचे खींची हुई टेढ़ी रेखा के समान भी इसके अक्षरों की गति हो सकती है।

(२)—कपाटबद्ध (किवाड़े की शकल)

इं	द्र		द्र	छु
जी	त		त	गी
सं	गी		गी	सं
त	लै		लै	त
कि	ये		ये	भ
रा	म		म	का
र	स		स	ब
ली	न		न	दी

(३)—अश्वगति चक्र ।

(जो शतरंज के घोड़े की चाल के अनुसार भी पढ़ा जा सकै)

इं	द्र	जी	त	सं	गी	त	लै
कि	ये	रा	म	र	स	ली	न
छु	द्र	गी	त	सं	गी	त	लै
भ	ये	का	म	ब	स	दी	न

(४)—चरणगुप्त चक्र ।

(जिसमें एक चरण लुप्त सा हो जाय)

ई	जी	सं	त	कि	रा	र	ली
इं	त	गी	लै	ये	म	स	न
छु	गी	सं	त	भ	का	ब	दी

(नोट)—इस चक्र से पता चलता है कि इस दोहे की रचना में दोहे के प्रत्येक दल में सोलह सोलह अक्षर होने चाहिये, और दोनों दलों में सम अक्षर अर्थात् दूसरा, चौथा, छठां, आठवां, दसवां, बारहवां, चौदहवां और सोलहवां अक्षर एकही होने चाहिये। इस कायदे को समझ कर कोई भी कवि नवीन रचना कर सकता है।

(गतागत चतुर्पदी)

मूल–राकाराज जराकारा, मास मास समा समा।
राधा मीत तमी धारा, साल सीसु सुसील सा ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ—राकाराज = पूर्णमासी का चंद्रमा। जराकारा = (जर + आकार) ज्वर के समान। समा = वर्ष। तमी = रात्रि। धारा = (तलवार की) धार। साल = शालती है। सीसु = सिर पर। सुसील = शीलवती। सा = वह।

भावार्थ—(कृष्ण का वचन) हमारी मीत जो राधा है (उसको हमारे वियोग में) पूर्णिमा का चंद्रमा मास मास और वर्ष वर्ष ज्वरवत् गर्मी देता है। रात्रि उसके सिर पर तलवार की

धार सी शालती है (दुःख देती है) तो भी वह बड़ी ही सुशील है (किसी से अपना दुःख कहती नहीं)

नोट—इसका चित्र इस प्रकार का होगा। पहले सीधा पढ़ो फिर उलटा पढ़ो।

रा	का	रा	ज
मा	स	मा	स
रा	धा	मी	त
सा	ल	सी	सु

(त्रिपदी)

मूल–रामदेव नरदेव गति परशुधरन मद धारि !
बामदेव गुरदेव गति पर कुधरन हद धारि ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ—देव = पर ब्रह्म। नरदेव = राजा। परशुधर = परशुराम। बामदेव = शिव। गति पर = जिनकी गति विधि सब से परे है (जिनकी गति कोई समझ नहीं सकता)। कु-धरन = पृथ्वी को धारण करने वाले। हदधारि = मर्यादा को धारण करने वाले हैं।

भावार्थ—राम जी हैं तो परब्रह्म, पर उनकी गति (करणी वा रूप) राजाओं की सी है, और ऐसे प्रतापी हैं कि परशुराम भी उनके सामने अपना मद (अहंकार) धारण किये न रह सके। वे ही राम जी शिव हैं, वे ही गरु हैं, उनकी गति विधि सब से परे है, वे ही पृथ्वी को धारण किये हुए हैं (पृथ्वी

की स्थिति को यथावत् रखते हैं) और वे ही मर्यादा के रक्षक हैं।

नोट—इस दोहे को तीन प्रकार से चित्र में भर सकते हैं।

(१)

रा	दे	न	दे	ग	प	शु	र	म	धा
म	व	र	व	ति	र	ध	न	द	रि
बा	दे	गु	दे	ग	प	कु	र	ह	धा

(२)

राम	वन	देव	तिप	शुध	न म	धा
दे	र	ग	र	र	द	रि
बाम	वगु	देव	तिप	कुध	न ह	धा

(३)

राम	नर	गति	शुध	मद
देव	देव	पर	रन	धारि
बाम	गुरु	गति	कुध	हद

(चरण गुप्त)

मूल—राजत अँग रस बिरस अति सरस सरस रस भेव।
पग पग प्रति दुति बढ़ति अति बय नव मन मति देव ॥७४॥

सुबरन बरन सु सुबरननि रचित रुचिर रुचि लीन।
तन मन प्रगट प्रवीन मति, नवरँग राय प्रवीन ॥ ७५ ॥

नोट—इस रचना को चरण गुप्त इस लिये कहा गया है कि आगे लिखे चित्र में देखने से इसका अंतिम चरण "नवरँग राय प्रवीन" गुप्त हो जाता है पर १, २, ३, आदि अंकों से सूचित अक्षरों को जोड़ कर पढ़ने से प्रगट हो जाता है। पहले दोहे में नवरंग राय की प्रशंसा है, दूसरे में प्रवीनराय की प्रशंसा है।

शब्दार्थ—रस = प्रेम प्रीति। विरस = मान। सरस = बढ़ कर। सरस = रसीली। भेव = भेद। बय = बैस। सु = सुन्दर। सुबरणनि रचित = सोने से बने आभूषण। रुचि = कांति।

भावार्थ = नवरंग राय का अंग प्रेम और मान दोनों समयों में शोभित ही रहता है। रसीले रस भेदों में (काम क्रीड़ा में) अति रसीली है। नाचने में पग पग पर चमक दमक बढ़ती है, नवीन बैस है और मन तथा मति देवता में लगी रहती है। (प्रवीन राय कैसी है कि) सोने का सा सुन्दर रंग है, सोने के बने हुए सुन्दर आभूषण उसकी कांति में लुप्त हो जाते हैं। उसके तन से और मन से मति की प्रवीणता प्रगट होती है।

(चरण गुप्त चित्र)

	५				४				३	
	रा	ज	त	औं	ग	र	स	बि	र	
	स	अ	ति	स	र	स	स	र	स	
	र	स	भे	व ॥	प	ग	ष	ग	प्र	
	ति	दु	ति	ब	ढ़	ति	अ	ति	ब	
६	य	न	व	म	न	म	ति	दे	व ॥	२
	सु	ब	र	न	ब	र	न	सु	सु	
	ब	र	न	नि	र	चि	त	रु	चि	
	र	रु	चि	ली	न ।	त	न	म	न	
७	प्र	ग	र	प्र	वी	न	म	ति	न	१
					८				९	

(सूचना)—अंक १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, के अक्षर जोड़ने से "नव रंग राय प्रवीन" जो साधारणतः गुप्त है प्रगट हो जाता है ।

(सर्वतो भद्र)

मूल-सीता सीन नसी तासी । तार मार रमा रता ।
सीमा कली लीक मासी । नर लीन नली रन ॥७६॥

(सूचना)—इस छंद का अर्थ तो हम से नहीं हो सका। इसका चित्र यों है:—

सी	ता	सी	न	न	सी	ता	सी
ता	र	मा	र	र	मा	र	ता
सी	मा	क	लो	ली	क	मा	सी
न	र	ली	न	न	ली	र	न
न	र	ली	न	न	ली	र	न
सी	मा	क	ली	ली	क	मा	सी
ता	र	मा	र	र	मा	र	ता
सी	ता	सी	न	न	सी	ता	सी

(दूसरा सर्वतो भद्र)

मूल—काम देव चित्त दाहि। बाम देव मित्त दाहि।
राम देव चित्त चाहि। धाम देव नित्त माहि।७७।

भावार्थ—काम देव चित्त को जलाता है, अतः शिव को अपना मित्र बनाकर उसे जला दो। तब चित्त से राम जी को देखो (मन लगा कर राम भजन करो) तो तुम्हारा धाम देवताओं के नित्य धाम में होगा।

(धनुषबंध)

मूल—परम धरम हरि हेरहीं केशव सुनै पुरान ।
मन मन जानै नार द्वै जिय यश सुनत न आन ॥ ८० ॥

(पर्वतबंध)

मूल—या मय रागे सुतौ हित चोरटी काम मनोहर है अभया ।
मीत अमीतानि को दुख देत दयाल कहावत हीन दया ॥
सत्य कहौ कहा झूंठ में पावत देखो वेई जिन रेखी कया ।
या मय जे तुम मीत सबै स सबै सतभी मत गेय मया ।८१।

(नोट)—इसी सवैया से छत्रबंध भी बन सकता है ।

(सर्वतोमुख)

मूल—काम अरै तन लाज मरै कब मानि लिये रति गान गहै रुख ।
बाम बरै गन साज करै अब कानि किये पति आन दहै दुख ॥
धाम धरै धन राज हरै तब बानि बिये मति दान लहै दुख ।
राम ररै मन काज सरै सब हानि हिये अति आन कहै मुख।८२।

(हारबंध)

मूल—हरि हरि हरि ररि दौरि दुरि फिरि फिरि करि करि आरि ।
मरि मरि जरि जरि हारि परि परिहरि अरि तरि तारि ॥८३॥

(नोट)—इससे कमलबंध भी बन सकता है ।

(डमरू बंध)

मूल—नर सरब श्री सदा तन मन सरस सुर बासि करन ।
नर फसि बर सु सकल सुख दुख हीनव जनि मरन ॥

नर मन जीवन हीन रदय सदय मति मत हरन ।
नर हत मति मय जगत केशवदास श्रीवर सरन ॥ ८४ ॥

(नोट)—इससे चौकीबंध भी बन सकता है ।

(मंत्री गतिबंध)

मूल-राम कहौ नर जानि हिये मृत लाज सबै धरि मौन जनावत ।
नाम गहौ उर मानि किये कृत काज तबै करि तौन बतावत ॥
काम दहौ हर आनि हिये बृत राज जबै भरि भौन अनावत ।
याम बहौ बर पानि पिये धृत आज अबै हरि क्यौं न मनावत ॥८५॥

(उपसंहार)

मूल- यहि विधि केशव जानिये चित्र कवित्त अपार ।
बरणन पंथ बताय मैं दीन्हों बुधि अनुसार । ८६ ।
केशव सोरह भाव शुभ सुबरन मय सुकुमार ।
कबि प्रिया के जानिये ये सोरह शृंगार । ८७ ।
सुबरन जटित पदारथनि भूषन भूषित मान ।
कबि प्रिया है कबि प्रिया कबि की जीवन प्रान । ८८ ।
पल पल प्रति अवलोकिबो पढ़िबो गुनिबो चित्त ।
कबि प्रिया को रक्षियो कबि प्रिया ज्यों मित्त । ८९ ।
अनल अनिल जल मलिन तें विकट खलन तें नित्त ।
कबि प्रिया को रक्षियो कबि प्रिया ज्यों मित्त । ९० ।

(समाप्त)
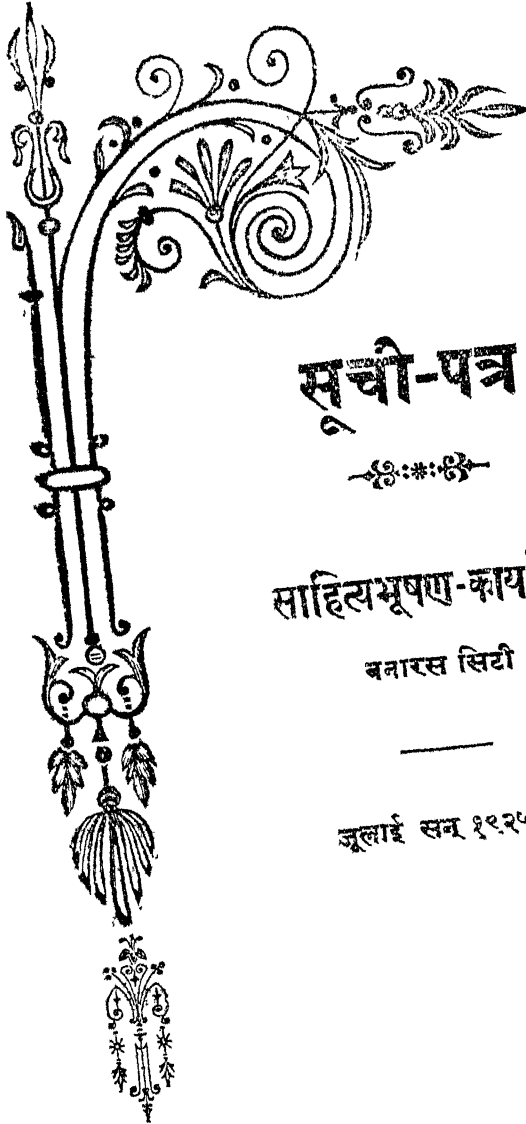
सूची-पत्र

साहित्यभूषण-कार्यालय

बनारस सिटी

जुलाई सन् १९२५ ई०

कार्य्यालय के नियम

(१) जो सज्जन स्थायी ग्राहक होंगे उनको इस कार्य्यालय की सभी पुस्तकें पौने दाम पर दी जावेंगी। स्थायी ग्राहकों का प्रवेश शुल्क १) है।

(२) जो लोग एक साथ कम से कम १००) का माल मँगावेंगे उनको २५) कमीशन दिया जावेगा। और जो कम से कम ५०) का माल मँगावेंगे उनको २०) सैकड़ा कमीशन दिया जावेगा। और इससे कम माल मँगाने वाले को ‑) रुपया कमीशन दिया जावेगा।

(३) एजेन्टों की आवश्यकता है। कमीशन भरपूर दिया जावेगा। जो महाशय एजेन्ट होना चाहते हों कार्यालय से पत्र व्यवहार करें।

(४) स्थायी ग्राहकों को जो पुस्तकें अब छपेंगी वे भी २५) सैकड़ा कमीशन के साथ दी जावेंगी। पुस्तक प्रकाशित होते ही पत्र द्वारा सूचना दी जावेगी। जिसको जो पुस्तक न लेना हो फौरन पत्र पाते ही सूचना दे दें। क्योंकि अगर उनका पत्र न आवेगा और उनके पास से वी० पी० वापस आवेगी तो उनका नाम स्थायी ग्राहकों के रजिस्टर से काट दिया जावेगा।

(५) दस रूपये से अधिक की पुस्तकें मँगाने वालों को चौथाई दाम आर्डर के साथही पेशगी भेजना होगा।

(सूचना)

(१) इस कार्यालय से अभी बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित होंगी।

(२) तुलसीदास कृत रामायण और बिनय की भी टीका छप रही हैं।

(३) नीचे लिखी हुई पुस्तकों के अलावा और भी काशी में मिलने वाली पुस्तकें फरमाइश आने पर इस कार्य्यालय द्वारा भेजी जा सकती हैं। पर उन पुस्तकों पर कमीशन नहीं दिया जावेगा।

(४) मनोरंजन पुस्तमाला की सब ही पुस्तकें और वीर-पंचरत्न भी हमारे यहां से मिलती है।

कविता की उत्कृष्ट कला को देखना और काव्य-रस का आस्वादन करना चाहते हों तो सैकड़ों काव्य-ग्रन्थ न पढ़ कर "सूक्ति-सरोवर" को पढ़िए। इसमें सूरदास और केशव, तुलसीदास और बिहारी, मतिराम और भूषण, पद्माकर और देव, महावीर प्रसाद द्विवेदी और नाथूराम इत्यादि की ऐसी रसीली और चमत्कार-पूर्ण उक्तियों का संग्रह है कि कोई भी काव्य-प्रेमी प्रसन्न हुए बिना नहीं रह सकता। एक एक उक्ति अमूल्य है और कई ऐसी हैं जिन पर लाखों रुपये न्यौछावर किये जा चुके हैं। काव्यरसिकोंके लिए यह नई पुस्तक है। २॥)

इसमें 'देव-घाट,' 'प्रकृति-घाट,' 'ऋतु-घाट,' 'शृंगार-घाट' और 'मानव-घाट' नामक ५ घाट हैं, और प्रत्येक घाट में भिन्न भिन्न विषयों की एक से एक बढ़ कर उक्तियाँ, व्याख्या पूर्वक दी गई हैं कि हिन्दी का साधारण ज्ञाता भी उक्ति के भाव और चमत्कार को सरलता से समझ सकता है। संग्रह कर्ता और व्याख्याता हैं हिन्दी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लाला भगवानदीन जी जो हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान् तथा सुकवि हैं। पुस्तक अच्छे मोटे एंटीक कागज़ पर छपी है। पृष्ठ-संख्या लगभग ५०० है। मूल्य केवल २॥)

३—प्रिया-प्रकाश—यह केशवदासकृत 'कविप्रिया' नामक ग्रंथ की टीका है। यदि आप अलंकार शास्त्र का अच्छा ज्ञान संपादन करना चाहते हों, तो बिना इस ग्रंथ को पढ़े निस्तार नहीं। कई एक ऊंची परीक्षाओं में यह पुस्तक पाठ्य ग्रंथ है। " अवशि देखिये देखन जोगू "। मूल्य २।), २)

४—बिहारीबोधिनी बड़ी (अर्थात् बिहारी सतसई की पूरी टीका) यह वही पुस्तक है जिसकी लोग पपीहा की तरह याद

जोह रहे थे, कारण यह कि बिहारी-सतसई एक अनमोल रत्न है। पर कठिन इतनी है कि बड़े २ लोग तक भी इसके अर्थ करने में धोखा खा जाते हैं, और अर्थ ही नहीं समझते। इसी कठिनाई को दूर करने के लिए यह पुस्तक बनाई गई है। इसके टीकाकार ला० भगवानदीन जी हैं। ये महाशय कितने अच्छे कवि हैं इसके कहने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि साहित्यसेवी लोग अच्छी प्रकार जानते हैं। इस लिये इस बिहारी-बोधिनी की तारीफ़ करने की आवश्यकता नहीं। पर इतना अवश्य कहे बिना रहा नहीं जाता कि आज तक इसकी समानता की कोई टीका नहीं है। काग़ज और छपाई इत्यादि बहुत सुन्दर, लगभग ४०० पृष्ठ की पुस्तक है। मूल्य सजिल्द १।॥) अजिल्द १॥)

५—अलंकार-मंजूषा (अलंकार का सुबोध ग्रंथ) आजतक साहित्य संसार में इसकी बराबरी का और कोई अलंकार ग्रंथ नहीं है। अलंकार की जिस पुस्तक से चाहिये मुक़ाबिला कर लीजिये। यह पुस्तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में और बिहार की सरकारी परीक्षाओं में रक्खी गई है। इसलिये इस पुस्तक की बिक्री दनादन हो रही है। जिस मनुष्य को अलंकार की जानकारी करना हो वह अवश्य इस ग्रंथ को देखे, क्योंकि इस पुस्तक से बढ़ कर अलंकार का ज्ञान और किसी दूसरे ग्रंथ से नहीं हो सकता है। काग़ज और छपाई इत्यादि बहुत सुन्दर, पृष्ठ संख्या २५० मूल्य केवल १।) लेखक ला० भगवानदीन जी।

६—आलमकेलि-(आलम और सेख कृत प्राचीन काव्य)-यह वही काव्य है जिसको पढ़ने के लिये लोग उनकी पुस्तक

खोजने लगते हैं। बड़े परिश्रम के बाद यह पुस्तक हाथ लगी है। शृंगार रस का इसमें अच्छा वर्णन है। इस पुस्तक का सम्पादन कविवर ला० भगवान दीन जी ने किया है। कठिन २ शब्दों का अर्थ भी नोट में दिया हुआ है। कागज़ और छपाई इत्यादि बहुत सुन्दर है, पृष्ठ संख्या पौने दो सौ के लगभग है। इतना होते हुए भी मूल्य केवल १) है। इस पुस्तक को प्रत्येक साहित्य जानने वाले को पढ़ना चाहिये।

७—सनेह सागर (बिलक्षण कृष्ण चरित्र) इस पुस्तक में कृष्ण जी की लीलायें भरी हैं, जिनको आजकल के बहुत कम लोग जानते हैं। भाषा अत्यन्त सरल। कृष्ण-भक्तों के लिये अमूल्य बस्तु २०० वर्ष का प्राचीन ग्रन्थ बकसी हंसराज द्वारा रचित। इस पुस्तकके पढ़नेसे कृष्ण-भक्तिका मर्म अच्छी प्रकार ज्ञात हो सकता है। कागज और छपाई इत्यादि अत्यन्त सुन्दर है। सम्पादक ला० भगवानदीन जी। पृष्ठ संख्या १६० मूल्य केवल ॥।) और ॥≈) है। अब बहुत थोड़ी प्रतियाँ रह गई हैं। माँग धड़ाधड़ आ रही है। जिन महाशयों को मंगाना हो जल्दी करें वरना दूसरे संस्करण की बाट जोहनी पड़ेगी।

८-विहारी-बोधिनी छोटी (सप्तम शतक) बिहारी सतसई का सातवां शतक जो एडवांस परीक्षा में सरकारने रखा है, उसीकी टीका ला० भगवान दीन जी ने बनाई है। अत्यन्त सरल पानी के समान बिहारी के दोहों को कर दिया है। शब्दार्थ, भावार्थ, अलंकार इत्यादि से भर दिया है। अब उसमें कुछभी कठिनाइयाँ नहीं रह गई हैं। जिन लोगों को बिहारी के केवल १०० दोहों का ज्ञान करना हो वे इस पुस्तक को, और जिन लोगों को ७०० दोहों का ज्ञान करना हो वे बड़ी बिहारी-बोधिनी को पढ़ें। मूल्य ॥)